ग्रामीण तथा नागरिक मिश्रित पृष्ठभूमि पर रचित श्री यज्ञदत्त शर्मा का नवीनतम उपन्यास 'मंगलू की माँ' रचना शैली के विचार से हिन्दी साहित्य को एक नई देन है। विवाह के पश्चात् बेटा माँ का रहता है—बहू का हो जाता है—इस समस्या का सुन्दरतम चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

मंगलू की माँ

[सामाजिक उपन्यास]

•

यज्ञदत्त शर्मा

•

रामप्रसाद एंड संस
प्रकाशक एवं विक्रेता
अस्पताल रोड, आगरा

मूल्य
चार रुपया

प्रकाशक
राम प्रसाद एंड संस
अस्पताल रोड, आगरा

मुद्रक
सुरेंद्र प्रिंटर्स प्रा० लि०
सदर बाजार, दिल्ली

मंगलू की माँ

मुझे अपने गाँव गये एक लम्बा अर्सा हो गया था। जाना चाहने की इच्छा रहते हुए भी कुछ ऐसे कामों में फँसा रहा कि जाना सम्भव ही न हो सका।

परसों माता जी का पत्र मिला। उसमें लिखा था कि मेरा तुरन्त गाँव आना नितान्त आवश्यक है। मैं समझ गया कि मुकदमे का कोई काम होगा। उसी मुकदमे का जिसे चलते-चलते लगभग बीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। पुरानी बाप-दादो के जमाने की जमीन का मुकदमा, जिसे प्रारम्भ करने वाले हमारे सब पूर्वज अनंत निद्रा की गोद में सो चुके हैं।

वे सब नहीं रहे, परन्तु मुकदमा अभी चल रहा है।

कितनी बड़ी शक्ति का अपव्यय हुआ है इस मुकदमे में, जब मैं इस बात को कभी सोचने लगता हूं तो गाँव की ओर जाने के लिए दिल गवाही नहीं देता। परन्तु इतनी शक्ति लग जाने के पश्चात उसे यूं ही छोड़ बैठने को भी मेरा मस्तिष्क मेरी मूर्खता कह उठता है।

उसे छोड़ बैठना, कायर बनकर अपने अधिकार को खो देना नहीं तो और क्या है? आखिर क्यों नहीं मेरे भाई मुझे गाँव में आबाद होने देना चाहते? मैं किसी को कोई हानि नहीं पहुंचाना चाहता। जो अपना है, उसे ही उनसे माँगता हूँ और वह भी वे देने को तय्यार नहीं।

इसीलिए इच्छा न रहने पर भी मैं मुकदमे को नहीं छोड़ पा रहा हूँ।

पिताजी की मृत्यु के पश्चात जब-जब भी मैंने इस मुकदमे की ओर पैर बढ़ाया है तो पिताजी का अंतिम दस वर्ष का जीवन मेरे सामने आकर खड़ा हो गया है। वह मुझसे कहता है, "तुम भी पागल बन गये हो। सबक सीखो मुझसे। मैं तुम्हारे पिताजी के अंतिम जीवन की कहानी हूं। अपने काम पर लगो तुम। व्यर्थ इसमें फँसकर अपने जीवन का मूल्यवान समय और दिमाग खराब न करो। तुम्हारे सामने बहुत से काम करने

को पड़े हैं। काम के आदमी हो तुम। अपने पूरे परिवार की ज़िम्मेदारी है तुम पर। इस व्यर्थ की मुकदमेबाजी में फँसकर तुमने देखा नहीं क्या कि तुम्हारे पिताजी ने अपना शांत और सुखमय जीवन कितना अशांत और दुःखमय बना लिया था ?

अपने जीवन के अन्त तक वह इस अशांति से मुक्ति नहीं पा सके।"

मैं घर से चलकर मोटर-स्टेंड पर पहुंच गया और टिकट लेकर मोटर में भी बैठ गया। मोटर समय पर छूट गई और दौड़ने लगी मेरे गाँव की ओर जाने वाली सड़क पर। परन्तु मेरा मस्तिष्क अभी तक उसी समस्या में उलझा हुआ था। मैं यही सोच रहा था कि मुझे मुकदमे में उलझना चाहिए अथवा नहीं।

आज आसमान बादलों से घिरा था। हवा में भी नमी थी। मोटर चली और दौड़ी खुली सड़क पर, तो उसकी खिड़कियों से प्यारी-प्यारी ठंडी हवा अन्दर आई। एक तेज झोंके ने आकर मेरे माथे पर टक्कर दी। मुझे लगा कि जैसे मैं नींद से जाग उठा। स्वप्न सा देख रहा था मैं, उसे हवा के झोंके ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

मैंने मोटर की खिड़की से इधर-उधर झाँका तो बहुत सी चीजें दिखाई दीं। जमना के पुल पर मोटर पहुंची। पुल के दोनों ओर जमना की धारा थी और उसके बीच की रेती में खरबूज़े और तरबूज़ों की खेती लहरा रही थी। मोटे-मोटे तरबूज़ और पीले-पीले खरबूज़े बेलों के आँचल से झाँक रहे थे।

मोटर में मेरे बराबर की सीट पर एक स्त्री बैठी थी। उसके साथ एक छोटा बच्चा था, जिसे उसने अपने और मेरे बीच में बिठला लिया था। उसके पास ही मेरा थैला रखा था, जिसमें मैंने माताजी के लिए एक दर्जन संतरे खरीद कर रख लिये थे।

बच्चे ने चुपके से वह थैला उठा लिया और उसमें रखी गोल-गोल लड्डू जैसी चीज़ देखकर वह अपनी प्यारी-प्यारी दँतुली चमकाने लगा।

बच्चे की माँ ने यह देखा तो चाहा कि वह झपट कर मेरा थैला उसके हाथ से छीन ले और उसे उसी जगह पर रख दे जहाँ मैंने उसे रखा था।

परन्तु बच्चा थैला नहीं छोड़ रहा था।

बच्चे और उसकी माँ की यह झपट देखकर मुझे हँसी आ गई। मेरे मस्तिष्क की रही-सही उलझन भी साफ़ हो गई।

मैंने थैले से एक संतरा निकालकर बच्चे के हाथ में देते हुए कहा, "लो बेटा! तुम इसे खाओ और लाओ यह थैला मुझे दे-दो।"

बच्चे ने खुश होकर संतरा अपने दोनों हाथों में सँभाल लिया और थैला मुझे दे दिया।

मैं हँसकर बच्चे की माँ से बोला, "देखा बेटी! बच्चे से थैला लेने का यह तरीका था। वह नहीं है जो तुम अपना रही थीं।"

मेरी बात सुनकर बच्चे की माँ के चेहरे पर मुस्कराहट की रेखा खिंच गई। बोली वह एक शब्द भी नहीं।

: २ :

लगभग ग्यारह बजे मैं अपने गाँव की तहसील हापुड़ पहुचा। वहाँ जाकर अपने मुकदमे के मुखत्यार साहब से मिला।

मुखत्यार साहब बोले, "लो. मुकदमा ठीक करा दिया है आपका। आप तो छोड़कर ही बैठे जा रहे थे एक तरफ़।"

मैं हँसकर बोला, "यह तो आपकी बात बिलकुल सच है कि यदि आप पिताजी की मृत्यु के पश्चात मेरे पास न आते तो मैं इस मुकदमे को हरगिज़ आगे नहीं बढ़ाता।

मैंने तो जिस दिन पिताजी का दाह-कर्म-संस्कार किया था उसी दिन अपने गाँव के सब मामलों को उनकी चिता पर रख दिया था। मैंने भुला ही दिया था कि गाँव से मेरा कोई सम्बन्ध है और वहाँ मेरा भी कुछ है।"

मुखत्यार साहब के मुंशी बोले, "अब मिठाई खिलाइये। आपका नाम जिस-जिस ज़मीन के नम्बर से आपके भाई साहब ने पटवारी से मिल-कर कटवा दिया था, वह सब जगह लिखा गया। चलिये पटवारी जी

से भी मिला दूँ आपको।"

मुंशीजी को साथ लेकर मैं तहसील में अपने गाँव के पटवारी से मिला। बड़े ही प्रेम से मिले पटवारी जी मुझसे।

मैं बोला, "अब तो सब ठीक हो गया पटवारी जी !"

पटवारी जी हाथ जोड़कर मेरी नमस्ते का जवाब देते हुए बोले, "आप कोई चिन्ता न करें अब। मैंने अपने कागजों में सब जगह आपका नाम सही-सही चढ़ा दिया है।"

मैं बोला, "मुझे आप पर बहुत भरोसा है पटवारी जी ! आपके ही विश्वास दिलाने पर मैंने अपील की थी।"

पटवारी जी फूलकर कुप्पा हो गये मेरे ये शब्द सुनकर। खुश होकर बोले, "मुझे विश्वास था कि आपका मुकदमा अवश्य सही हो जायगा क्योंकि उसमें पहले पटवारी ने बेईमानी की थी। रिश्वत लेकर उसने गलत तरीके से आपका नाम उन जमीन के नम्बरों से काट दिया था। आप अब चाहें तो उस पटवारी पर फ़ौजदारी दावा भी चला सकते हैं।"

: ३ :

पटवारी और मुख्त्यार साहब से बातें करके मैं अपने गाँव को जाने वाली सवारी के अड्डे पर गया। यहाँ से मोटर भी जाती है गाँव के अड्डे परन्तु मैं रिक्शा में ही सवार हुआ क्योंकि मोटर गाँव से दो मील की दूरी पर छोड़ देती है और रिक्शा ठीक मेरे घर के सामने तक चली जाती है। फिर आज मौसम भी इतना सुहावना था कि दोपहर का समय होने पर भी गर्मी कतन नहीं थी। पुरवा हवा चल रही थी। आकाश बादलों से घिरा था। सूर्य देवता पूरा प्रयास करने पर भी अपनी तेज किरणों को जमीन तक पहुँचाने में असमर्थ थे।

मेरा गाँव यहाँ से पश्चिम की ओर है। इसलिए रिक्शा चली तो पुरवा हवा उसका साथ दिया। मस्ती में गाकर रिक्शावाले ने रिक्शा

के पैडिल पर पैर रखा और बीड़ी का कश खींचकर गद्दी पर बैठते हुए पैडिल को पैर के तलवे से दबाया।

रिक्शा उसके ज़रासे इशारे पर हवा होगई।

नई सड़क बनी थी यह हमारे गाँव को जाने के लिए। पिछले वर्ष की बरसात में उसके दोनों किनारों पर कुछ दरख्त भी लगाये गये थे। उनमें से कुछ तो गर्मी के मौसम में जल-भुनकर सूख गये और कुछ गर्मी की टक्कर सहने पर भी हरे-भरे खड़े रहे। ठंडी हवा के झोंको में उनकी डालियाँ और पत्ते लहरा रहे थे।

सड़क पर रिक्शा फ़र्राटे के साथ दौड़ रही थी और रिक्शावाला मौज में सिनेमा का गाना गा रहा था।

मैंने उससे पूछा, "क्यों भाई क्या हालचाल है गाँव का?"

रिक्शावाला बोला, "सब ठीक है बाबूजी! यह सड़क भले को बना दी है सरकार ने। इसपर रिक्शा चलाकर पेट भर लेते हैं अपना।"

मैंने पूछा, "कितनी रिक्शा है अब हमारे गाँव में?"

रिक्शावाला बोला, "दस-बारह रिक्शा होंगी बाबूजी! पर जबसे सरकार ने इस सड़क पर मोटर छोड़ दी है तब से हम लोगों का काम कुछ ठंडा पड़ गया है।"

मैंने पूछा, "अड्डे से गाँव तक की सड़क भी बनी या नहीं अभी?"

मेरा प्रश्न सुनकर रिक्शावाला मन मार कर बोला, "वह बन जाती तो भाग ही न खुल जाते हमारे। शहर से अड्डे तक रिक्शा चलाने में इतना जोर नहीं पड़ता जितना अड्डे से गाँव तक चलाने में पड़ता है। कई बार सुन चुके हैं कि वह बनने वाली है लेकिन फिर रुक जाती है बनती-बनती।"

मैंने पूछा, "क्यों रुक जाती है?"

रिक्शावाला बोला, "पता नहीं बाबूजी! हमारे गाँव वाले ही नहीं बनने देते। परधान बिचारे के सिर रहते हैं सब। वह कोई काम गाँव की भलाई का करना भी चाहता है तो लोग अड़चनें खड़ी कर देते हैं।"

मैंने पूछा, "प्रधान तो ठीक-ठाक है न अपना। वह तो गाँव का भला चाहता है?"

रिक्शावाला इसपर हँसकर बोला, "अजी बाबूजी ! सब ऐसे ही हैं। कई बार चंदे इकट्ठे हो चुके हैं पर जाने कहाँ चले जाते हैं। अड्डे से गाँव तक की सड़क ठीक हो जाय तो हम जानें कि परधान जी ठीक-ठाक हैं। वरना सब अपना-अपना ही दाल-दलिया करने में मस्त हैं।"

मैं हँसकर बोला, "अकेले प्रधान जी सड़क नहीं बनवा सकते भय्या ! सड़क तभी बनेगी जब सारा गाँव चाहेगा। या किसी सरकारी योजना में इसका नम्बर आगया तो बिना गाँव वालों के चाहे भी बन जायेगी यह। हमारे गाँव में एका नहीं है। आपाधापी है सबके मन में।"

मेरी बात सुनकर रिक्शावाला बोला, "यह बात सच कही आपने बाबूजी ! बड़े-बड़े लोग गरीबों को फूटी आंखों भी नहीं देख सकते।"

मैंने कहा, "यह क्यों ?"

रिक्शावाला हँसकर मस्ती से बोला, "यह यों बाबूजी ! कि हम लोगों पर अब उनकी धौंस-पट्टी वैसी नहीं चलती जैसी पहले चलती थी। अब हम उनकी बेगार नहीं करते। हमारी रिक्शा में चाहे कोई भी क्यों न बैठे, हम रिक्शा से उतरते ही उससे अपने पैसे गिनवा लेते हैं।"

रिक्शा आधे घंटे में गाँव के अड्डे पर पहुँच गई। वहाँ रिक्शा रोककर रिक्शावाला बोला, "पानी पीना हो तो पी लीजिये बाबूजी ! मैं दो रोटी खालूं।"

मैंने कहा, "तुम रोटी खालो, मैं तब तक यहीं खड़ा हूं। मुझे पानी-वानी नहीं पीना।"

सड़क के किनारे अड्डे पर मैंने देखा कि अब दो-तीन छोटी-छोटी दूकानें भी लग गई थीं। एक पकौड़ी वाले की दूकान पर कढ़ाई चढ़ रही थी और वह तेल की गर्मागर्म पकौड़ी उतार रहा था। उसके पास ही एक चने-मुरमुरे, गुड़ और खाँड के सेव, सिग्रेट, बीड़ी इत्यादि लिये बैठा था। एक आदमी के पास साइकिल का पम्प और उसके ट्यूब में पंचर लगाने का सामान रखा था। एक छबड़ी वाला कुछ खरबूजे और ककड़ी लिये बैठा था।

रिक्शावाला अपनी दो मोटी रोटी लेकर, जिनपर आम की फाँक और मिर्च की चटनी रखी हुई थी, पकौड़ी वाले के पास जाकर बैठ गया।

एक पैसे की पकौड़ी भी ली उसने और ज़मीन पर ही बैठकर खालीं वे दोनों रोटियाँ। फिर पास में कुए पर बैठी प्याऊ लगाने वाली बूढ़ी औरत के पास जाकर पानी पिया।

पानी पीकर फिर उसने अपनी रिक्शा सँभाली। रिक्शा के पहियों की हवा देखी और फिर मुझसे बोला, "चलिये बाबूजी ! अभी लौटना भी है मुझे।"

मैं हँसकर बोला, "मैंने तो तुम्हें देर नहीं की। तुम स्वयं ही खाना खाने लगे थे।"

इतना कहकर मैं रिक्शा में आ बैठा और उसने नयी ताज़गी के साथ उसे चलाना प्रारम्भ कर दिया।

अड्डे से गाँव तक का रास्ता सचमुच ही बहुत खराब था। सारा-का-सारा कच्चा रास्ता बैलगाड़ियों के चलने से फूटा पड़ा था। कहीं रेत था और कहीं गहरे-गहरे गढ़े हो गये थे। परन्तु रिक्शा वाला उस रेत और उन गढ़ों को काटता हुआ बड़ी खूबी से रिक्शा चला रहा था। जहाँ वह देखता था कि रिक्शा चढ़कर नहीं चलाई जा सकती, वहाँ उतर जाता था और धीरे से रिक्शा को हाथ से सहारा देकर आगे बढ़ा देता था।

: ४ :

रिक्शा दोपहर बाद तीन बजे जाकर मेरे घर के द्वार पर रुकी। मैंने उसमें से उतरकर एक रुपया रिक्शावाले को दिया और फिर अपने घर के चबूतरे पर चढ़ गया।

घर के बन्द दरवाज़े पर हाथ से दस्तक दी तो माताजी ने किवाड़ खोले।

मैंने कहा, "माताजी नमस्ते।" और माताजी ने मुझे प्यार से अपनी बूढ़ी बाहुओं में भर लिया। मैंने भी माताजी की कौली भर ली।

मुझे देखकर माताजी का मन हरा हो गया। उनकी आंखों की

रोशनी बढ़ गई। उन्हें विश्वास हो गया कि उनका बेटा उनकी आज्ञा को टालने वाला नहीं है। अभी परसों ही तो खत लिखा था और यह आ भी गया।

हवा में आज अजीब सी मस्ती थी। हल्की-हल्की फुआरें हवा के झोंकों में नाँच रही थीं। कभी-कभी आकाश के बादल में बिजली चम-चमा उठती थी। आकाश में बादल गौधूली में गाय-भैंसों के झुंड-के-झुंड की तरह दौड़-दौड़ कर एक दूसरे से आगे बढ़ रहे थे।

मैंने माताजी के साथ घर में प्रवेश किया और दुवारी से होकर सीधा बैठक में चला आया।

बैठक खाली पड़ी थी और सामने रखी थी वह कुर्सी जिसपर पिताजी बैठा करते थे। कुर्सी को देखकर मुझे पिताजी की याद हो आई। मेरा दिल जरा भारी हो गया। मैंने कमरे की दीवारों पर लगे पिताजी के कई चित्रो पर दृष्टि डाली। सब अपनी-अपनी जगह लगे थे। केवल पिताजी नहीं थे अपनी जगह पर।

माताजी की नजर मेरी नजर पर गई तो वह समझ गई कि बेटे को अपने बाप की याद आ रही है।

माताजी मुझे प्यार से दुलार कर बोलीं, "क्या देख रहे हो बेटा ! दुनिया में आने वाला एक दिन अवश्य जाता है।" कहते-कहते माताजी का गला रुँध गया। वह जो कुछ आगे कहना चाहती थीं, वह किसी भार में दब गया। उनका स्वर हल्का पड़ गया। उनके शब्दों में वह गति नहीं रही जिससे उन्होंने कहना प्रारम्भ किया था। वह बोलीं "दुनिया में आकर जाते सभी हैं बेटा ! परन्तु तेरे पिताजी ने जाने में ज़रा जल्दी की। ऐसे उड़ गये जैसे हवा।"

माताजी के हृदय में इस समय असीम पीड़ा थी। पिताजी की स्मृति के भार से उनका कलेजा दवा जा रहा था। उनका स्वर दब गया था। उनकी आँखों के सामने अंधकार छा गया था।

यह सब देखकर मैं अपने दिल के दर्द को दिल में ही दबा कर आगे बढ़ गया। मैं जाकर उसी कुर्सी पर बैठा जिसपर पिताजी बैठा करते थे और मुस्कराकर बोला, "पिताजी की कुर्सी खाली नहीं है माताजी !

उसपर उनका लड़का बैठा है।"

माताजी का मन मुग्ध हो गया मेरी बात सुनकर। मेरे एक ही वाक्य ने उन्हें स्मृति के गहरे सागर से खींचकर बाहर निकाल लिया। वह प्रसन्न मुद्रा में बोलीं, "खाली क्यों रहती यह कुर्सी ? जब तू है। तू क्या जाने, कितनी-कितनी आशाएँ रखते थे वह तुझ से ?"

मैं कुर्सी पर बैठ गया और माताजी मेरे पास पड़े पलंग पर बैठ गई। माताजी ने पूछा, "बच्चे सब ठीक-ठाक हैं ?"

मैंने कहा, "सब ठीक हैं ! छोटा मन्नू आपको बहुत याद करता है। उस दिन आप दोपहर को चली आई तो बहुत रोया वह। एक घंटे में कहीं मना पाई उसकी माँ।"

मुन्ना के रोने की बात सुनकर माताजी का मन भी भारी हो गया। वह बोलीं, "उस दिन मुझे भी मुन्नू रात भर याद आता रहा। कई बार आखों में आँसू भर आये। रात भर यही सोचती रही मैं कि तेरे पिता-जी आखिर क्यों यह जमीन का मुकदमा मेरे गले में इलझा छोड़कर चले गये ? इसे निपटा जाते तो मैं कम-से-कम अपने इस बुढ़ापे में बाल-बच्चों के बीच में तो रह पाती। गाँव के इस घर और जमीन के इस मुकदमे के लिए क्यों बार-बार अकेली इधर भागती ?"

माताजी ने यह बात इतनी मार्मिकता से कही कि मैं एक शब्द भी न कह सका।

मौत से लड़ाई नहीं की जा सकती। वह जब आती है तो अपने शिकार को दबोच कर ले जाती है। जानेवाला फड़फड़ाता चला जाता है और उसका परिवार रोता रह जाता है।

मैं बातों का रुख बदलकर बोला, "तहसील में मुखत्यार साहब से मिलकर आरहा हूं और आज पटवारी से भी वहीं भेंट हो गई थी। दोनों का कहना है कि अब हमारे मामले में कहीं पर भी कोई परेशानी की बात नहीं रही है। पूरी जमीन पर मेरा नाम चढ़ गया है। अब मैं हर प्रकार से हाई हिस्से का हकदार हूं।"

माताजी बोलीं, "लेकिन मैंने सुना है तुम्हारे भाई ने अपील करदी है।"

मैं बोला, "करदी है तो कर देने दीजिये। उससे क्या बनता है ?

पहली ही पेशी पर खारिज हो जायेगी उनकी अपील। उसमें रखा ही कुछ नहीं है। और अब यह मामला पटवारी, तहसीलदार और थानेदार की हद से बाहर निकल चुका है। वहाँ रिश्वत देने का कलेजा भाई साहब में नहीं है।"

मैंने काफी जोश से यह बात माताजी से कही परन्तु उन्हें जोश नहीं आया। वह बोलीं, "चलते चलो बेटा! जो होना होगा वह हो ही जायेगा।"

: ५ :

संध्या समय मैं बैठक से बाहर निकलकर अपने चबूतरे पर आगया। माताजी घर के अन्दर चली गईं।

चबूतरे पर खड़ा हुआ, तो सबसे पहले ताऊ परमाल सिंह से भेंट हुई। वह जा रहे थे, एक उपले पर आग की अँगारी रखे, अपने घेर की ओर।

मैं बोला, "ताऊजी नमस्ते!"

ताऊजी मुझे देखकर खड़े हो गये और नीचे दगड़े में खड़े-ही-खड़े बोले, "नमस्ते भय्या भारद्वाज! कब आये शहर से?"

"अभी दो घंटे पहले ही आया हूं ताऊजी!" मैंने कहा।

"तुमने तो गाँव में आना-जाना बिल्कुल ही छोड़ दिया! कम-से कम महीने में एक बार तो आ ही जाया करो।"

मैंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "अवश्य आया करुंगा ताऊजी। आऊंगा क्यों नहीं? जरा फंसा रहता हूं काम में, इसीलिए आना नहीं होता। वरना आने को किसका मन नहीं करता।" ताऊजी के बाद और कई चचा, कई ताऊ, कई भाई, कई चाची, कई ताई, कई भाबी उस रास्ते से गुजरीं और सभी ने बड़े प्यार से मुझसे बातें कीं। सब दो चार मिनट ठहरे। मेरे बाल-बच्चों का हाल-चाल पूछा और अपनी शुभ कामनाएँ प्रदर्शित कीं। मैंने भी उनसे उनके हाल-चाल पूछे।

अन्धकार बढ़ रहा था। सूर्य की किरणों का प्रकाश, जो किसी प्रकार बादलों को भेदकर जमीन पर फैला हुआ था, अब सूर्य के छिप जाने के कारण धीरे-धीरे रात्रि के अन्धकार के नीचे दबता चला गया। अंधकार, चारों ओर अंधकार; क्योंकि यहाँ सड़क पर जलने वाली बत्तियों का शहर-जैसा प्रकाश नहीं था। कस्बे की पंचायत ने कुछ मिट्टी के तेल की लालटेनें अवश्य लगा रखी थीं जहाँ-तहाँ खगड़े में और उनमें से एक मेरी बैठक के सामने भी थी; परन्तु वे जल नहीं रही थीं। शायद जलती भी नहीं थीं वे कभी।

इसी अन्धकार में मैंने एक धुंधली सी छाया अपने चबूतरे के सामने बड़ के पेड़ के नीचे इधर-उधर हिलती हुई देखी। एक स्त्री थी वह जो कभी इधर और कभी उधर घूम रही थी। कभी खड़ी होकर हमारे चबूतरे की ओर देखने लगती थी।

मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया उसपर। अपनी बैठक से होता हुआ, बैठक की कुण्डी अन्दर से बन्द करके, मैं पीछे के दरवाजे से घर के सहन में चला गया।

: ६ :

मैं घर में पहुंचा तो माताजी खाना बना चुकी थीं। घर के सहन के बीचों-बीच दो चारपाइयाँ पड़ी थीं, उन्हीं पर मैं और माताजी बैठ गये। बातें करने लगे कुछ इधर-उधर की।

अभी बैठे अधिक समय नहीं हुआ था कि तभी दुलारी भाभी आ पहुँचीं।

भाभी को देखकर माताजी पीढ़े की ओर संकेत करके बोलीं, "आजा दुलारी! बैठ जा पीढ़े पर।"

दुलारी भाभी मुस्कराती हुई पीढ़े पर बैठ गईं, और उसी प्रसन्न मुद्रा में मेरी ओर आँखें घुमाकर बोलीं, "लालाजी, शहर में जाकर ऐसे रम

गये कि अपनी जनम् भूमी को भी भूल गये। ईद के चाँद हो गये तुम तो।"

दुलारी भाभी की इस स्नेहभरी बात ने मेरे दिल को गुदगुदा दिया। मैं हँसकर बोला, "ईद का चाँद तो आपने बना दिया हूँ भाभी ! आप बुलाती ही नहीं मुझे। आप बुलायें और मैं न आऊँ, यह कभी हो सकता है ?"

दुलारी भाभी जरा लजाकर बोलीं, "महीने में कम-से-काम एकबार तो आ ही जाया करो। तुम गाँव में नहीं आते, तो लोग-बाग समझने लगते हैं कि तुम गाँव में बसना ही नही चाहते।"

दुलारी भाभी ने यह बात माताजी की मन लगती कही। वह दुलारी भाभी की ओर देखकर बोलीं, "यही तो इससे मैं भी कहती हूँ दुलारी ! लेकिन अकेला है यह भी और इतने कामों में फँसा रहता है कि आ ही नहीं पाता। इतने बड़े परिवार का भार इस अकेले के ही सिर पर तो है। यह रोज-रोज गाँव में बैठा रहे तो वहाँ का काम कौन देखे ?"

तभी मैंने देखा कि हमारे घर का दरवाजा खुला और एक मोटी सी स्त्री अन्दर आती दिखाई दी।

मैंने ध्यान से उसकी ओर देखा, तो समझने में देर नहीं लगी, कि यह वही स्त्री थी, जो चबूतरे के सामने बड़ के पेड़ के नीचे इधर-उधर घूम रही थी।

वह स्त्री पास आई, तो माता जी ने दूसरे पीढ़े की ओर संकेत करके कहा, "बैठ जा मंगलू की माँ !"

मंगलू की माँ दुलारी भाभी के सामने वाले पीढ़े पर बैठ गई। बड़े ध्यान से वह मेरे चेहरे को देख रही थी।

उसने माताजी से पूछा, "बेटा आया है शहर से !"

"हाँ।" मन में असीम आनन्द लेकर माताजी ने गर्व के साथ कहा।

"मेरा मंगलू नहीं आता कभी गाँव। लाख बुला-बुलाकर हार गई, कितने ही खत लिखवाये, पर उसने एक खत का भी जवाब नहीं दिया।"

यह कहकर मंगलू की माँ ने एक दर्द भरी लम्बी साँस ली और फिर धीरे-धीरे बोली, "एक डायन चिपट गई है उससे !"

मेरी समझ में मंगलू की माँ की बात नहीं आई। मैंने सरल स्वभाव

ने पूछा, "डायन कैसी मंगलू की माँ ?"

मेरी बात सुनकर मेरे भोलेपन पर दुलारी भाभो को हँसी आ गई। वह हँसती-हँसती बोलीं, "सुना तुमने कुछ लालाजी ! डायन यह मंगलू की वहू को कह रही है। वही डायन है जो इसके लाडले बेटे से चिपट गई है। पहले तो उन्हें टिकने नहीं दिया यहाँ और अब तड़प रही है उनके लिये। उनके लिये क्या, यह तड़प रही है अपने मंगलू के लिये।"

भाभी की बात सुनकर मुझे हँसी आ गई। माताजी भी मुस्कराती हुई मंगलू की माँ से बोलीं, "मंगलू की माँ ! तू बहू को डायन न कहा-कर।"

मंगलू की माँ ने दुलारी भाभी और माताजी की बातें एक कान से सुनी और दूसरे से निकाल दीं। मैंने ध्यान से देखा कि उसपर किसी की बात का कोई असर नहीं था। वह बराबर ध्यान से मेरी ओर देख रही थी।

मुझसे बोली, "क्यों भय्या ! जब तुम शहर में रहते हो और तुम्हारी माताजी यहाँ गाँव में रहती हैं तो क्या तुम्हें कभी इनकी याद नहीं आती ? जब तुम वहाँ अपने बाल-बच्चों के बीच में आनन्द से बैठते हो तो क्या तुम यह नहीं सोचते कि तुम्हारी माताजी अकेली इतने बड़े चौक में बैठी-बैठी तारे गिनती होंगी ?"

मैं मंगलू की माँ की बात को हँसी में न उड़ा सका। उसकी बातों में उसके दिल का मर्म छिपा हुआ था। मैं उसके मन की बात को भाँपता हुआ बोला, "माँ भुलाने की चीज़ नहीं होती है मंगलू की माँ ! जैसे माँ अपने बेटे को नहीं भूल सकती वैसे ही बेटे को भी हर समय अपनी माँ की याद रहती है। कौन बच्चा है जो अपनी माँ के पास न रहना चाहेगा और कौन माँ है जो अपने बच्चे के पास न रहना चाहेगी। परन्तु यह दुनिया के कारोबार और जिन्दगी को चलाने के कामों का ऐसा जंजाल है कि इनमें फँस कर सब जाने कहाँ-के-कहाँ पड़े रहते हैं।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "मेरा मंगलू मुझे कभी याद नहीं करता। याद करता तो क्या एक चिट्ठी भी नहीं लिख सकता था मुझे ?"

मैं बोला, "मैं ऐसा नहीं समझता मंगलू की माँ ! वह तुम्हें जरूर याद करता होगा। कुछ कारण होंगे ऐसे कि जिनकी वजह से वह नहीं आ पाता होगा।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ दर्द भरी साँस लेकर बोली, "कारण कुछ नहीं है बेटा ! कारण वही डायन है जो आने नहीं देती उसे। भगवान् जाने कैसा जादू कर दिया है उसने मेरे लाल पर कि उसे मेरी याद ही नहीं आती। मेरे लाल की छाती पर ऐश कर रही है वह डायन और मैं इस बुढ़ापे में मारी-मारी फिर रही हूं।

अच्छा तुम ही बताओ अब ! जब मंगलू ने मेरी आत्मा को ऐसे फड़फड़ा रखा है तो कैसे मेरे मुँह से उसके लिए बद्दुआ न निकले ? मैं तो कहती हूं कि उसके और उस डायन के सामने ही उनका पूत मर जाये और वे दोनों उसके लिए ऐसे ही फड़फड़ायें जैसे मैं मंगलू के लिए फड़फड़ाती हूं।"

दुलारी भाभी को, मैंने देखा, क्रोध आगया मंगलू की माँ की बात सुनकर। माताजी को भी उसकी बात अच्छी नहीं लगी।

दुलारी भाभी बोली, "सुना कुछ तुमने लालाजी ! अपने बच्चों को इतनी बेरहमी के साथ कोसती हुई भी तुमने कोई माँ देखी है क्या कहीं ? ऐसे कोस-कोस कर यह चाहती है कि इसका मंगलू इसे प्यार करने के लिए यहाँ आये। इसे छाती से लगाये और इसके दिल की जलन को दूर करे। . . .

इसका यह कोसना तो अपने फूल से पोते के लिए है और अगर तुम कभी इसकी उन गालियों को सुनो जो यह मंगलू की बहू को देती है तो तुम्हें अपने कानों में उँगलियाँ दे-लेनी पड़ें।"

मैं बराबर मंगलू की माँ की ओर देख रहा था। दुलारी भाभी ने अभी-अभी क्या कहा उससे मानो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

मैं दुलारी भाभी और माताजी की ओर मुंह करके बोला, "मंगलू की माँ के दिल को इसकी बहू और बेटे ने कोई गहरा आघात पहुँचाया है। इसीलिए इसके मस्तिष्क का संतुलन खराब हो गया है। वरना कौन औरत है जो अपने पोते को इस तरह कोसेगी ?"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "भय्या ! मेरा दिमाग खराब नहीं है। पर हो जायगा अगर मेरी यही दशा कुछ दिन और रही। कैसी-कैसी मुसीबत में और कैसी-कैसी उम्मीदों को लेकर मैंने मंगलू को पाला था, यह मेरा ही दिल जानता है। किसी दूसरे को क्या पता ?" कहती-कहती वह चुप हो गई।

मैं बहुत गम्भीरतापूर्वक बोला, "मंगलू की माँ ! तुम्हारी उम्मीदें पूरी नहीं कीं तुम्हारे मंगलू ने, इसमें बहू का क्या दोष ? तुम्हारे पत्र का जवाब नहीं देता मंगलू, इसकी जिम्मेदारी बहू पर कैसे है ? मंगलू अपनी माँ के प्रति अपने फ़र्ज़ को पूरा नहीं करता, इसके लिए तुम बहू को बुराई क्यों देती हो ? तुम्हारा मंगलू किसी काबिल होता तो वह अपनी बहू और तुम्हें, दोनों को खुश रख सकता था।"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी बोलीं, "मंगलू दोनों को खुश नहीं रख सकता लालाजी ! इसे अपने धन का गरूर है। यह अपने धन के सामने किसी को बदती ही नहीं कुछ। यह मंगलू से कहती है कि वह अपनी बहू को छोड़ दे और अपने फूल से बेटे को जहर देकर मार डाले। फिर यह अपने धन के जोर से उसका दूसरा ब्याह रचाये जिससे ऐसी बहू आये इसके घर में जो अपने बाप के घर की सब सम्पत्ति लाकर इसकी गोद में भर दे।"

भाभी की बात सुनकर मैं दंग रह गया। मंगलू की माँ के इरादों का कच्चा चिट्ठा भाभी से सुनकर मेरे दिल में उसके लिए जो करुणा उत्पन्न हुई थी वह काफ़ूर होने लगी।

मैंने मंगलू की माँ से पूछा, "क्या यह सच है जो दुलारी भाभी कह रही हैं ?"

मंगलू की माँ गम्भीरतापूर्वक बोली, "बिलकुल सच है। बेटे को ही नहीं, मैं तो कहती हूं कि वह उस डायन को भी जहर देकर मार डाले।"

मैं देखता रह गया उसकी सूरत। अपने बेटे की बहू और पोते का खून करके यह स्त्री इस बुढ़ापे में अपनी खोई हुई शान्ति और लुटा हुआ आनन्द बटोरना चाहती है। धन की गठरी को सिर पर रख कर यह गाँव के घर-घर में जाकर नाचना चाहती है।

मंगलू की माँ और कुछ नहीं बोली। वह चुपचाप उठकर चली गई वहाँ से। उसने पीछे फिर कर भी नहीं देखा कि हम लोग क्या सोच रहे होंगे उसके विषय में। उसने यह सुनने का प्रयत्न ही नहीं किया कि हम क्या बातें करते रह गये उसके विषय में। मानो अपने मन की मालका थी वह, और अपनी बात कहकर चलती बनी वहाँ से।

: ७ :

दुलारी भाभी ने मंगलू की माँ के विषय में जो कुछ भी कहा वह सब उसके विपरीत पड़ता था। उसमें कहीं पर भी कोई प्रकाश की रेखा नहीं थी।

मंगलू की बहू के साथ उसने, जब तक वह यहाँ रही, कैसा दुर्व्यवहार किया, उसका खुलासा करके रखा मेरे सामने। वह बोली, "यह मंगलू की बहू को डायन कहती है पर सच पूछो तो यह खुद ही डायन है लालाजी! इसने उस बेचारी को इतना सताया है कि बस वही जानती है, या मैं जानती हूं कि जिसके पास कभी दो-चार मिनट के लिए बैठकर वह अपना दुखड़ा रो लिया करती थी।"

मैंने पूछा, "क्या कुछ गरीब घर की है मंगलू की बहू?"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी उभर कर बोलीं, "गरीब घर की तो नहीं है लालाजी! पर भाग्य की पोच निकली बेचारी। माँ नहीं रही उसकी। सौतेली माँ है और वह उसे कभी बुलाती भी नहीं। कुछ देना-लेना तो दूर की बात है।"

मैंने पूछा, "बाप तो है उसका?"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी को हँसी आगई। वह हसकर ही बोलीं, "नई बहू के चंगुल में फँसकर पहली की औलाद को कौन बाप याद करता है लालाजी? लड़की का पीहर तो उसकी माँ के साथ होता है। वह माँ का ही दिल होता है जो बेटी को याद करता है।"

भाभी ज़रा ठहर कर बोलीं, "जब मंगलू की माँ ने यह रिश्ता लिया था तो वह अकेली ही लड़की थी अपने बाप की। इसने सोचा था कि बहू के बाप का धन इसके मंगलू को मिल जायगा। लेकिन हुआ यह सब कुछ भी नहीं। शादी करके बहू के बाप ने अपना दूसरा ब्याह रचा लिया। और फिर कभी बेटी को बुलाने तक का नाम नहीं लिया।

पचास वर्ष की उम्र में अपनी शादी करली उस खूसट ने। पैसा बड़ी बुरी चीज़ है लालाजी! इसके चक्कर में आकर लोग अपनी औलाद को भी भूल जाते हैं।"

मैं हँसकर बोला, "तो शायद यही वह सबसे बड़ा दोष है मंगलू की बहू का जिसने मंगलू की माँ की नज़रों में उसे डायन बना दिया।"

दुलारी भाभी बोलीं, "बिल्कुल यही बात है लालाजी! यह सुनकर मंगलू की माँ ने अपनी बहू को नजरों से गिरा दिया। और उसी दिन से इसका व्यवहार उसके साथ एक नौकरानी जैसा होने लगा। यह गाँव में घूम कर काम इकट्ठा कर लाती थी और उस बेचारी के सिर पर लाकर लाद देती थी। उसे दिनरात सिर उठाने की फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। उसका बच्चा पड़ा-पड़ा रोता रहता था और वह काम पर जुटी रहती थी।

इतना करने पर भी यह डायन कभी उसे पेट भर रोटी नहीं देती थी। कपड़े भी उसके सदा फटे-पुराने ही रहते थे और वह फिर भी कभी कुछ नहीं कहती थी। कभी किसी गाँव की औरत के सामने उसने इसकी बुराई नहीं की।"

दुलारी भाभी की बात सुनकर माताजी हँसकर बोलीं, "चल दुलारी! तू मंगलू की माँ के पैर ही नहीं जमने देती कहीं। तेरी नजर से देखा जाय तो सब दोष मंगलू की माँ का ही है। लेकिन ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती।"

"बजती कैसे नहीं चाचीजी!" दुलारी भाभी आँखें मटका कर बोलीं। और फिर मेरी ओर को रुख करके कहा, "मंगलू की बहू जब अपना दुखड़ा रोती थी मेरे सामने लालाजी! तो सच जानो छाती फटती थी उसकी बातें सुनकर। गाँव भर में केवल मेरे ही पास बैठकर कभी-

कभी वह अपना जी हलका कर लेती थी, अपने जी की बात कहकर। वह तो भगवान् ही सीधा था उसका वरना जापे में ही यह डायन उसे सड़ा-सड़ा कर मार देती। इसका जोर चलता तो यह तभी पोते का गला घोंट देती।

वह तो मंगलू ही भला है जो उस बेचारी की जान बच गई। वह अपनी बहू और बेटे को दिल्ली ले गया।"

दुलारी भाभी की इस बात का माताजी पर भी असर हुआ। वह बोलीं, "दुलारी! यह बात मैंने बिरमा दाई से भी सुनी थी और हेता सुनार की बहू भी एक दिन यही कह रही थी। क्या यह सच है कि मंगलू की माँ अपने पोते को मारना चाहती थी?"

माताजी की बात सुनकर दुलारी भाभी अपना पीढ़ा पास को सरका कर धीरे से बोलीं, "बिलकुल सच है चाचीजी! जरा धीरे से बोलो। खड़ी होगी डायन यहीं कहीं किसी दीवार से लगी। आजकल दीवारों के भी कान हो गये हैं।"

मैं बोला, "तब तो यह बड़ी खराब औरत है। पैसे की बेहद लालची मालूम देती है।"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी बोलीं, "लालच की बात मत पूछो लालाजी! फूटी कोड़ी नाली में भी पड़ी हो तो यह दांतों से निकाल सकती है। साँपन है किसी जमाने की। मंगलू का बाप जो कुछ रुपया-पैसा छोड़कर मरा था उसपर काली नागन की तरह बैठी फुंकार रही है। कुछ और ही जोड़ लिया है उसमें, जाने नहीं दी एक कौड़ी भी।"

मैं हँसकर बोला, "यह तो बुरा नहीं किया इसने भाभी! घर को लुटाया नहीं इसने, बचाकर ही रखा है अपने पति के मरने के बाद।"

"इसमें कोई शक नहीं लालाजी! घर नहीं लुटाया इसने और अपने जवानी पहरे में सुना है मेहनत भी खूब की है। फिर अन्त में भाभी बोलीं, "चालचलन की भी यह बुरी नहीं है। क्या मजाल जो कभी कोई जेठ, देवर या गाँव का कोई लुच्चा-लफंगा इसकी ओर बदचलन निगाह से देख सका हो। शेरनी की तरह रही है यह हमेशा ही।"

मैं अभी पहले तक दुलारी भाभी को समझ रहा था कि वह मंगलू

की माँ से नाराज़ है। लेकिन उनके इन अंतिम शब्दों ने मेरी उस धारणा को बदल दिया। मैंने देखा कि वह मंगलू की माँ के गुणों का भी आदर करती हैं।

मुझे प्रसन्नता हुई यह देखकर कि भाभी सच को सच और झूठ को झूठ कहने में संकोच नहीं करतीं।

: ८ :

समय काफी हो चुका था। तभी रामकली चाची आ पहुँची। घेर से अपने पोतों को दूध पिला कर आ रही थीं। उनके लड़के ने उनसे मेरे आने के विषय में कहा था। इसीलिए वह घेर से घर जाते समय मार्ग में हमारे घर आई थीं।

किवाड़ खोले और दूर से ही हँसती हुई बोलीं, "भारद्वाज आया दिखता है आज तो! चलो याद तो आई तुझे अपनी बूढ़ी माँ की।"

मैंने खड़े होकर चाची को नमस्ते की।

वह बोलीं, "बैठ जा बेटा! मुझसे अभी कहा था तेरे भय्या ने कि तू आया है शहर से। तू तो ऐसा जाकर शहर में बसा कि यहाँ आने का नाम ही नहीं लेता। भय्या गाँव के घरबार की हमारी बिरादरी में बड़ी इज्जत होती है। इन्हें यूं ही नहीं छोड़ देना चाहिए। गाँव गाँव ही होता है और शहर शहर ही।"

मैं हँसकर बोला, "चाचीजी! छोड़ना कौन चाहता है अपना घर। लेकिन जिस घर को पाने के लिए अपने को फँसाना पड़े उस घर को मैं पसंद नहीं करता।

आप आई हैं मुझे देखने? क्यों? क्योंकि प्यार है मेरे लिए आपके दिल में। मेरे परिवार का एक भी आदमी मुझसे मिलने नहीं आया। क्यों? क्योंकि प्यार नहीं है उनके दिलों में।

जहाँ प्यार न हो मेरे लिए वहाँ आकर क्या करूं मैं? फिर यहाँ

कोई जरिया भी तो नहीं है, खाने-कमाने का। आया-जाया भी वहीं जाता है जहाँ किसी का कोई खाने-कमाने का जरिया होता है।"

मेरी बात सुनकर चाचीजी बोलीं, "जरिया सब बनेगा बेटा! बेई-मानी के पैर बहुत दिन नहीं जमते। आते-जाते रहोगे तो तुम्हारा तिहाई हिस्सा कहीं नहीं जा सकता।

अपने इस हिस्से की तुझे परवाह करनी चाहिए। अभी दस दिन हुए बीबी कह रही थीं कि तुम इसकी तरफ़ से ला-परवाह हो। ऐसा तुम्हें नहीं करना चाहिए। जिस काम को तुम्हारे पिताजी नहीं कर सके वह तुम्हें पूरा करना है। पिता इसीलिए तो पुत्र को पैदा करता है कि उसके अधूरे काम पूरे होते चलें, उसका परिवार आगे बढ़ता चले, उसका नाम आगे चलता चले।"

ताईजी की बात सुनकर दुलारी भाभी बोलीं, "मैं भी लालाजी से अभी-अभी यही कह रही थी चाचीजी!"

चाचीजी हँसकर बोलीं, "तुझे तो कहनी ही चाहिए ऐसी बातें। भार-द्वाज अपनी बहू और बच्चों को तेरे कहने से अगर यहा ले आये तो तेरा पड़ौस बस जाय। बच्चों की चहल-पहल दिखाई देने लगे यहाँ।"

दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "सचमुच लालाजी! अबकी बार आओ तो सब बच्चों को साथ लाना। मैंने तो कई को देखा भी नहीं है। बड़ा जी चाहता है देवरानीजी को देखने के लिए।"

भाभी की बातों में इतना रस और अपनापन था कि मैं मुग्ध हो उठता था उनकी हर बात पर। उनके किसी भी प्रस्ताव पर ना करना मेरे लिए असम्भव हो जाता था।

मैं बोला, "बच्चों को भी एक दिन अवश्य लाऊंगा भाभी! जिस घर की नींव में पिताजी ने चार ईंटें लगाई हैं उसे बर्बाद नहीं होने दूंगा।"

मेरी बात सुनकर ताईजी और भाभी दोनों को संतोष हुआ। माताजी चुपचाप बैठी-बैठी सुनती रहीं हमारी बातें। वह मौन रहकर ही हमारी बातों का रस ले रही थीं।

: ६ :

भाभीजी और ताईजी के चले जाने पर माताजी और मैंने साथ-साथ बैठकर खाना खाया।

खाना खिलाती-खिलाती माताजी बोलीं, "तेरी रामकली चाची और दुलारी भाभी भी बहुत अच्छी औरतें है बेटा! बेचारी बड़ा ध्यान रखती हैं मेरा। आधी रात को भी मैं इन्हें बुलाऊं तो बिना संकोच के चली आती हैं।"

मैं बोला, "दुलारी भाभी सचमुच ही बहुत नेक औरत हैं। पास-पड़ौस में मैंने कभी किसीको इनकी बुराई करते नहीं सुना। परन्तु रामकली चाची की आदत ज़रा तेज मालूम देती है। मैं जब कभी भी इनके घर जाता हूं तो भाभी कभी मुझे खुश दिखाई नहीं देतीं। कभी-कभी तो वह घंटों बैठकर मुझसे अपने दुख-दर्द की बातें करती हैं। गो बुराई कभी नहीं करतीं इनकी परन्तु फिर भी उनके चेहरे पर जो रौनक इस भरे-पूरे घर में रह कर होनी चाहिए वह नहीं दिखाई देती।"

मेरी बात सुनकर माताजी बोलीं, "पुराने जमाने की आदमन है बेचारी। उसी ढंग से चला रही है अपने परिवार को। ये जो बहुएँ ज़रा उड़कर चलना चाहती हैं वे तेरी ताई को अच्छी नहीं लगतीं। इसीलिये शायद वह कुछ उदास रहती होगी। लेकिन नेक बहुत है तेरी ताई की बहू भी।"

मैं बोला, "इसमें क्या संदेह है? देवी है बेचारी। जिस दिन से आई है लक्ष्मी बरस रही है। ये ही तब कमाने वाले थे जब यह नहीं थी और ये ही अब कमाने वाले हैं कि घर में घी, दूध, अनाज और कपड़ा किसी चीज़ की कमी नहीं है।"

"धी बहू के ये ही तो पहरे देखे जाते हैं बेटा! घर में नेक औरत हो तो घर स्वर्ग हो जाता है और बद औरत हो तो घर नर्क बन जाता है। तेरी दुलारी भाभी ने भी अपने घर को स्वर्ग बना रखा है। जब से आई है, घर में किसी चीज़ का अभाव नहीं रहा। दूध-दही, सब चीज़ की रेज रहती है।"

फिर गाँव के अन्य लोगों के विषय में बहुत देर तक बातें होती रहीं। गाँव वालों की बातें करते-करते अपने भाई लोगों का जिक्र छिड़ गया।

मैंने पूछा, "अब कैसे हाल-चाल हैं भाई साहब के ? किसी को कुछ देने की नीयत है या नहीं ?"

माताजी बोलीं, "नीयत साफ़ हो बेटा ! तो बरकत ही न होने लगे घर में। अपनी, तुम्हारी और तुम्हारे बड़े ताऊजी की पूरी जमीन दबाये बैठा है और फिर भी पूरा नहीं पड़ रहा उसका। रोज कोई-न-कोई कर्जदार बैठा ही रहता है घर पर।"

मैं हँसकर बोला, "अभी इनकी दशा और खराब होगी माताजी ! गाँव के गुण्डे लोगों की चोकड़ी में बैठकर इन्होंने अपनी और हमारे परिवार की इज्जत को खराब किया है। और जब तक यह अपनी संगति ठीक नहीं करेंगे तब तक इनकी दशा सुधरने वाली भी नहीं है।"

खाना खा-पी कर मैं और माताजी अपनी-अपनी खाटों पर लेट गये।

माताजी कुछ देर और बातें करके सो गई परन्तु मुझे नींद नहीं आई।

सब बातें दिमाग से उतर गई लेकिन मंगलू की माँ का चेहरा अभी तक मेरी पुतलियों में ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। उसके कण्ठ से निकला हुआ हर शब्द मेरे कानों में बज रहा था।

दिन भर बादल आकाश पर छाये रहे और ठंडी परवा हवा चलती रही। कहीं वर्षा भी अवश्य हुई होगी। इसीलिए मौसम बदला-बदला सा लग रहा था। वरना दिन गर्मी के ही थे। अभी परसों ऐसी लू ठंकार रही थीं कि जिसमें निकलते ही बदन जलने लगता था। चार कदम लुओं में चलने पर मुंह पिटा-पिटा सा हो जाता था।

परन्तु इस समय आकाश साफ था। तारे चांदी की बूंदों की तरह मेरी आँखों पर बिछे हुए थे।

हवा बहुत ही प्यारी थी, हल्की-हल्की और सुहावनी। पास में खड़े मेरी लड़की सुधा के लगाये हुए छोटे से नीम के वृक्ष की पत्तियाँ हवा से टकरा कर सन-सन करके मधुर राग अलाप रही थीं।

: १० :

आज प्रयास करने पर भी मुझे नींद नहीं आई। तभी मैंने देखा कि एक साँवली लेकिन सलोनी लड़की मेरे घर के आँगन में चली आ रही थी। मै खाट पर लेटा-लेटा देखता रहा उसे और वह एक टक मेरी ओर देखती रही। मैं बिलकुल नहीं बोला उसे देखकर वह मुस्करा रही थी और गुनगुना रही थी कुछ अपने मधुर कंठ से धीरे-धीरे।

और आगे बढ़कर वह मेरी खाट के बहुत निकट आगई। बड़े ही ठाठ-बाट में थी वह। उसका साँवला यौवन लहरा कर बल खा रहा था। उसके अंग-अंग का उभार मस्ती में लहरें मार रहा था। उसकी हर चीज चंचल थी। आँखों की पुतलियाँ ठहरने का नाम ही नहीं लेती थीं कहीं। होठों की मधुर मुस्कराहट ऐसा मालूम देता था कि बस अभी बरस पड़ेगी मुझपर।

रूप की देवी का यह सौंदर्य देखकर मैं आनन्द मुग्ध हो गया। मैं देखता रहा उसके रूप को और वह धीरे-धीरे संवारती रही अपने को। अपनी आँखों की पुतलियों को घुमाती रही और मुस्कराती रही मन्द-मन्द मुस्कान के साथ।

सोने के पीले आभूषण उसके साँवले रंग पर अद्भुत सौंदर्य का प्रदर्शन कर रहे थे। माथे का टीका तो बस गजब ही था। कलाइयों में भारी-भारी दस्तबन्द थे और गले में नौलड़ का भारी हार था। हार की लड़ियाँ उभरे हुए उन्नत उरोजों के बीच से होकर नाभि के समीप तक पहुँच रही थीं। सुडौल गले को दोनों ओर से आने वाली ये सोने की लड़ियाँ मानो हिमालय के शिखर से बहकर आने वाली दो धारायें थीं जिनका बहाव इधर-उधर के उन्नत उरोजों से टकरा कर नाभि की ओर हो गया था।

पोत के रेशमी लहँगे पर बनारसी कामदार दुपट्टा ओढ़े थी। मखमली कोटी में सोने की जंजीरों वाले बटन लगे थे। पैरों में नये चमकदार सिलीपर थे।

माँग में सिंदूर भरा था। सीने में उभार था और आँखों में जवानी का नशा। किसे बदती थी वह इस समय, अपने सामने ? जवानी के

सबसे ऊँचे शिखर पर खड़ी थी वह।

हँसकर बोली, "मुझे अभी-अभी पता चला कि आप गाँव में आये हैं। मैंने सुना है कि आपको किस्से कहानी सुनने और लिखने का शौक है।"

उसकी बात सुनकर मेरा दिल गुदगुदा उठा। मैं मुस्करा कर बोला "है तो अवश्य, परन्तु तुमसे यह किसने बतलाया?"

मेरी बात सुनकर वह लड़की अपने दोनों होठों पर अपने सीधे हाथ की अंगूठे के पास वाली उँगली खड़ी करके माताजी की ओर नेत्रों को घुमा कर बोली, "आपकी माताजी ने ही बतलाया था मुझे। परन्तु आप बोले नही जरा भी। आपके बोलने से आपकी माताजी जाग उठेंगी।" इतना कहकर वह बहुत ही कटीली हँसी से हँसी और कहा, "आप केवल सुनते रहें मेरा किस्सा। मुझे पूरा विश्वास है कि आपको बहुत आनंद आयेगा। आपने आज तक जितने भी किस्से कहानी लिखे, पढ़े या सुने हैं उन सबसे मेरा किस्सा कहीं अधिक रोचक होगा।"

मैं धीरे से बोला, "चलो तुम ही बोलो, मैं नहीं बोलूंगा परन्तु यदि माताजी तुम्हारी आवाज सुनकर जाग उठीं तो तब क्या होगा?"

वह मस्ती में इठलाकर बोली, "उसकी आप चिंता न करें। मेरी आवाज यह नहीं सुन सकतीं। मैं जो कुछ भी कहूंगी उसे केवल आप ही सुन सकते हैं।"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ उसकी बात सुनकर। समझ में कुछ न आने पर भी मैं मौन ही रहा और मुग्ध दृष्टि से उसके छबीले यौवन को निहारने लगा।

वह हँसकर बोली, "बड़ी ही ललचाई हुई दृष्टि से देख रहे हैं आप मेरी ओर। शायद मेरे ठाठ-बाट ने आपको आकर्षित कर लिया है अपनी ओर। परन्तु यह सब तो मुझे अभी चार पाँच वर्ष पूर्व ही प्राप्त हुआ है। इससे पहले तो मैं काली-कलूटी चार हड्डियों का ढांचा मात्र थी। मेरी ओर देखने को भी किसी का मन नहीं चाहता था।"

मैंने धीरे से पूछा, "फिर यह परिवर्त्तन तुम्हारे जीवन में कैसे आया?"

वह इतना सुनकर मुस्कराती हुई बोली, "प्यार के हाथों से संवारने

पर कुरूप-से-कुरूप वस्तु भी सुन्दर और सलौनी हो जाती है। पानी की कमी से सूखते हुए बिरवे को स्नेह-जल मिल जाने पर उसकी पंखुरियाँ खिल उठती हैं और उसकी कलियों में उभार आ जाता है। उसके फूल जो कुम्हलाकर सूखने ही वाले होते हैं उनमें नई ताजगी आ जाती है और वे महकने लगते हैं। वैसी ही मेरी भी जवानी है।"

मैंने फुसफुसाकर पूछा, "तुम्हारे कहने का अर्थ क्या यह है कि तुम्हें माँ-बाप का स्नेह प्राप्त नहीं हुआ कभी ?"

मेरी बात सुनकर वह हँसकर बोली, "ठीक समझा आपने।" कहकर वह अचानक ही खिलखिला कर हँस दी। मैंने देखा कि वह अपने हृदय से उभरने वाली हँसी को रोक नहीं पा रही थी। हँसी आप-से-आप उभर कर उसके होंठों से टकराकर बिखर जाती थी। उसके होंठों के बीच चांदी जैसे उसके दांत चमेली की कलियों की भाँति चमक उठते थे।

मैंने पूछा, "तब क्या तुम्हारे माता-पिता की बाल्यकाल में ही मृत्यु हो गई थी ?"

वह हँसकर बोली, "यही समझ लीजिये आप। मेरी माताजी का स्वर्गवास तब होगया जब मैं सात वर्ष की थी।"

"और पिताजी का ?" मैंने पूछा।

वह हँसकर बोली, "उनका भी तभी समझ लीजिये। मैं तो ऐसा ही समझती हूं कि मेरा पिता भी मेरी माँ की चिता पर ही जलकर राख हो गया।" इतना कहने के पश्चात मैंने देखा कि उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

उसने मुझसे प्रश्न किया, "पिता क्या होता है क्या आप जानते हैं ?"

मैंने सरल स्वभाव से उत्तर दिया, "पिता त्याग और तपस्या की मूर्ति होता है। पिता का पद प्राप्त करने के पश्चात उसका अपना जीवन अपने परिवार की सम्पत्ति हो जाता है।"

यह सुनकर वह कठोर शब्दावली में बोली, "बिलकुल गलत। पिता क्या होता है यह आप नहीं जानते। पिता के विषय में आपका ज्ञान सुनी-सुनाई और पढ़ी-पढ़ाई बातों पर आधारित है।"

मैं सहन नहीं कर सका उसकी यह बात। धीरे-धीरे ही मैंने कहा, "पढ़ी और सुनी बातों पर अपने दिल और दिमाग को बन्द करके विश्वास कर लेने वाला आदमी नहीं हूं मैं ? मैं हर चीज़ को काफ़ी गहराई के साथ सोचता हूं।

पिता ऐसी चीज़ नहीं जिसे मैंने देखा न हो, बरता न हो, परखा न हो, समझा न हो या वह मेरे जीवन में आया न हो।

मेरा भी पिता था, जिसे मैं देवता मानता हूं। वह पिता जिसने कभी जीवन में मुझसे कुछ चाहा ही नहीं, केवल दिया ही है मुझे, जो कुछ भी वह दे सका।

कितना प्यार दिया उसने मुझे, इसका वर्णन करना कठिन है।"

मेरी बात सुनकर वह ठगी सी रह गई। मैंने देखा कि उसके नेत्रों में आंसू भरे थे और उसका कठंस्वर रुक गया था।

वह धीरे-धीरे बोली, "सुना मैंने भी है कि पिता बहुत अच्छे-अच्छे होते हैं परन्तु मेरा इन सुनी हुई बातों में विश्वास नहीं है तनिक भी।" कहती-कहती वह रुक गई।

मेरे मन में उसके पिता का किस्सा सुननेकी उत्कंठा धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी।

वह बोली, "मैं आपको अपने पिता की बात सुनाती हूं। मैंने सुना है कि पिता अपना जीवन अपनी संतान की भलाई पर न्योछावर कर देते हैं। स्वयं रूखा-सूखा खाकर अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। स्वयं मोटा-झोटा पहन कर अपने बच्चों को सुन्दर वस्त्र पहनाते हैं।"

मैं बोला, "इसमें शक नहीं। पिता का पद त्याग की सबसे बड़ी कसौटी है। इस पद को प्राप्त करने के पश्चात मनुष्य की इच्छाएँ और उसका स्वार्थ उसके बच्चों में निहित हो जाता है। अपने बच्चों के भविष्य को ही वे अपना भविष्य समझने लगते हैं।"

"यह सब गलत है, जो कुछ आप कह रहे हैं।" मुंह चढ़ाकर मुझसे वह लड़की बोली। "पिता क्या है, यह आप नहीं जानते। मैं बतलाती हूं आपको पिता क्या होता है। पिता का असली रूप मैंने देखा है।" कहती-कहती वह चुप हो गई।

वह बहुत ही गम्भीरतापूर्वक बोली, "पिता ! पिता सौतेली माँ का गुलाम होता है। उसके इशारों पर नाचने वाला एक बन्दर होता है।" और इतना कहकर वह जोर से खिलखिला कर हँस पड़ी।

मैं देखता रह गया उसके मुंह को।

वह बोली, "पिता क्या होता है इसका आपको ज्ञान नहीं है। आपने पुस्तकों में राजा दशरथ की कहानी पढ़ ली होगी, जिसने अपने बच्चों के वियोग में प्राण दे दिये। परन्तु ऐसे पिता तो किताबों में ही लिखे जा सकते हैं। पिता असल में कैसे होते हैं यह मैं बतलाती हूँ आपको। अपने पिता का किस्सा सुनाती हूं आपको।"

मैं ध्यान से सुनने लगा उसका किस्सा। वह सामने रखा पीढ़ा उठा लाई और उसे मेरे पास ही डाल कर बैठ गई।

वह बोली, "मैं केवल सात वर्ष की थी जब मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया था। मैं रोती-रोती पगली जैसी हो गई अपनी माँ के विरह में परन्तु मैंने देखा कि पिताजी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी।

मिलने के लिए आने वालो से वह उसी प्रकार मुस्करा कर मिल रहे थे, जैसे पहले मिला करते थे। कोई अन्तर नहीं आया उनके जीवन में।

मैं रोई, खाना नहीं खाया दो दिन तक, परन्तु पिताजी ने एक बार भी मुझे गोद म लेकर आंसू नहीं पोंछे और यह नहीं कहा, 'बेटी ! धीरज धर। माँ नहीं रही तो पिता तो है तेरा। मेरे रहते तुझे क्या चिंता है ?'

"बड़े पत्थर-दिल आदमी थे तुम्हारे पिता।" मेरी ज़बान से अनायास ही निकल गया।

वह बोली, "पत्थर दिल ! फ़ौलाद-दिल कहिये उन्हें। बल्कि यों कहिये कि मेरे लिए दिल था ही नहीं उनके पास। और जो कुछ थोड़ा-बहुत था भी वह उस मेरी सौतेली माँ ने आकर चाट लिया था।"

"तुम्हारी माँ की मृत्यु के कितने दिन पश्चात दूसरा विवाह कर लिया था तुम्हारे पिता ने ?" मैंने पूछा।

"तुरन्त बाद ! मुझे तो ऐसे लगा कि मानों यह सब निश्चय मेरी माँ के जीवन-काल में ही हो चुका था। और मेरी माँ को पिताजी ने जान-बूझ कर ही अपने रास्ते से हटा दिया।"

उसकी बात सुनकर घबराहट में मेरी जबान से निकला, "तब क्या विष देकर मार दिया तुम्हारे पिता ने तुम्हारी माँ को ?"

मेरी बात सुनकर आंसू आ गये उसकी दोनों आंखों में। वह रोती-रोती ही बोली, "माँ का सारा शरीर नीलाकंच हो गया था मरने के बाद। वह मर रही थी और मेरे पिता मुस्करा रहे थे।"

मैं बेचैन हो उठा उसकी बात सुनकर और बोला, "नहीं-नहीं। ऐसा नहीं हुआ होगा। यदि हुआ है तो तुम्हारा पिता मनुष्य नहीं मनुष्यता के नाम पर एक कलंक है।"

वह फिर खिलखिला कर हँस पड़ी मेरी बात सुनकर और बोली, "जिसे आप कलंक कहते हैं वह आर्य समाज के प्रधान मंत्री रहे हैं अपने शहर के। कांग्रेस के प्रधान रहे हैं और जाने क्या-क्या हैं कितनी ही संस्थाओं के। तभी तो मेरी माँ को जहर देकर मार डालने पर भी उनका बाल तक बाँका न हो सका। थानेदार आया घर पर और हँसता हुआ पिताजी से हाथ मिलाकर चला गया। तब नहीं समझती थी मैं, लेकिन धीरे-धीरे सब समझने लगी थी। पास-पड़ौस की लड़कियों ने सब बतला दिया था मुझे।"

लड़की का किस्सा बहुत रोचक, गभीर और संगीन होता जा रहा था। मैं बड़े ध्यान से उसके हर शब्द को सुन रहा था।

वह बोली, "माँ मर गई और पिताजी ने दूसरा विवाह कर लिया।

नई माँ के आते ही मेरा स्कूल जाना बन्द हो गया। दर्जा तीन में पढ़ती थी मैं उस समय और कुछ पढ़ ही जाती अगर पढ़ती रहती।"

नई माँ पिताजी से बोलीं, "कहारिन का व्यर्थ खर्च क्यों बाँध रखा है आपने ? इतनी बड़ी लड़की क्या चौका-बर्तन भी नहीं कर सकती ? लड़की का पढ़-लिख कर क्या बनेगा ? कोई नौकरी तो करनी नहीं है हमें उससे।"

पिताजी उनके सामने चश्मा उतार कर आंखें मिचमिचाते हुए भीगी बिल्ली की तरह घिघियाकर बोले, "देवीजी ! जैसा आप उचित समझें करें। घरके मामलों में मैं कोई दखल नहीं देता।"

इतना कहना था उनका कि देवीजी कड़क कर मुझसे बोलीं, "सुन

लिया तुमने ? कल से स्कूल जाना बन्द। घर का काम काज सीखो।"

यह काम-काज बराबर बढ़ता ही गया। नई माताजी ने हर वर्ष एक बच्चा पैदा करना प्रारम्भ कर दिया। सात-आठ वर्ष में घर के अन्दर एक अच्छा खासा रेवड़-का-रेवड़ घूमने लगा।

इस पूरे रेवड़ को नहलाना, उनके कपड़े धोना, उनकी टट्टी साफ़ करना, घर की झाड़ू-बुहारू करना और चौका-बर्तन करने का काम मेरा था।

अपने जीवन के पूरे आठ वर्ष मैंने इस नर्क में कैसे काटे इसकी लम्बी कहानी कहाँ तक सुनेंगे आप ? केवल इतना ही जान लें कि कभी पेट भर खाना नहीं मिला मुझे, कभी नया कपड़ा नहीं पहना मैंने और कभी प्यार का कोई शब्द कानों में नहीं पड़ा मेरे।"

मैं सुनता रहा उसके पिता की बात और मेरा दिल भारी होता गया उसकी बचपन की करुण कहानी सुनकर।

वह हँसकर बोली, "तभी एक दिन मैंने माताजी और पिताजी को कुछ काना-फूंसी करते सुना। मै भी कमरे की दीवार से सटकर खड़ी होगई। मैंने उनकी एक-एक बात सुनी।

बात मेरी शादी के विषय में हो रही थी। अपनी शादी का नाम सुनकर मेरा शिथिल हड्डियों का ढाँचा न जाने कैसे अचानक ही रोमांचित हो उठा। मुझे लगा कि मेरी धमनियों में धीरे-धीरे बहने वाले रक्त का प्रवाह एक उमंग के साथ लहरा उठा।" कहती-कहती वह जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी और फिर बोली, "आप समझते होंगे कि यह सब शादी की खुशी में हुआ। परन्तु सच जानिये शादी से कोई सम्बन्ध नहीं था उस खुशी का। वह खुशी तो वह थी जिसे जेलखाने की काल-कोठरी में पड़ा आजन्म कैद का कैदी अपनी रिहाइ के रूप में सुनता है।"

मैं हँसकर बोला, "मिसालें खूब याद हैं तुम्हें। सचमुच तुम्हें अपने उस जीवन से मुक्ति पाने की सूचना पाकर उतनी ही खुशी हुई होगी जितनी आजन्म कैद के कैदी को अकस्मात रिहाई की सूचना पाकर होती है।"

वह प्रसन्न मुद्रा में बोली, "दिन बीतने में देर नहीं लगती। मेरी शादी का दिन आगया। बारात आगई और मेरे होने वाले पति ने चुपके

से पिताजी के हाथों में चार हजार रुपयों की थैली थमा दी।"

"वह कैसी ?" मैंने चौंक कर पूछा।

"मेरी शादी पिताजी ने मेरे पति के साथ चार हजार रुपये लेकर ही तै की थी।" वह बोली।

यह सुनकर मुझे और भी क्रोध आ गया। मैं बोला, "यह तो बड़ा ही भारी अनर्थ किया तुम्हारे पिता ने। जिस लड़की से सेवा ही कराई हो, उसके विवाह के समय तक, उसपर रुपया लेने का उसे क्या अधिकार है ? कैसे मंत्री और कैसे प्रधान थे वह आर्यसमाज और कांग्रेस के ? उनमें तो साधारण मनुष्य की मनुष्यता भी दिखाई नहीं देती मुझे।"

मेरी बात सुनकर मैंने देखा वह लड़की मजे-मजे में आँखें मटका कर हँस रही थी। वह बोली, "क्रोध न कीजिये आप। यह तो किस्सा है बीते दिनों का। आज तो घट नहीं रही है वह घटना।"

मैं अपनी भावुकता पर तनिक लजा सा गया।

उसने फिर किस्सा प्रारम्भ किया, "पिताजी चार हजार की थैली लेकर सीधे घर आये और अन्दर के कमरे में चले गये।

मैं दालान में बैठी थी। उनके हाथ की थैली मैंने भी देखी और फिर देखा कि वह उस थैली को माँ के हाथों में देकर वह बाहर चले गये।

शादी की दौड़-धूप चल रही थी। आने-जाने वालों का ताँता लगा हुआ था। सब अपने-अपने काम पर जुटे थे परन्तु आज मेरे पास कोई काम नहीं था। आने-जाने वाले मेहमानों के सामने माँ ने मुझसे कोई काम नहीं लिया। उनके बाल-बच्चों की खिदमत से आज मुझे छुट्टी मिल गई थी।

दालान के किवाड़ों में एक सूराख था। मैंने चुपके से उसपर अपनी एक आँख लगा कर देखा कि माँ ने वह रुपयों की थैली कमरे की सामने वाली आलमारी में कपड़ों के नीचे दबाकर इस तरह रख दी कि आम देखने वाले को पता ही न चले कि वहाँ कुछ रखा भी है।

उसे रखकर वह बाहर निकलीं तो मैं भीगी बिल्ली की तरह रूँआसी होकर बैठ गई। वह जरा मेरे पास खड़ी हुईं तो मैंने बनावटी आँसू आँखों से निकालकर कहा, "तो क्या माँ मुझे अब तुम भेज ही दोगी ?"

वह हँसकर बोलीं, "ससुराल तो सभी जाते हैं बेटी ! पर मैं तुझे बहुत जल्द बुला लूंगी। तू चिंता न कर ज़रा भी।"

कहकर वह बाहर को चली गईं और मैंने फिर उसी सूराख से कमरे के अन्दर झाँका।

आज दिन भर खूब रौनक रही घर में। भीड़ भी खूब रही। पिताजी मेहमानों में उलझे रहे और माताजी मेहमाननियों में। दिन भर की दौड़ धूप में सब थक कर चूर-चूर हो गये थे।

रात को सब ऐसे सोये जैसे व्यापारी अपने घोड़े बेचकर सोता है। मेरे माता-पिता ने भी आज अपनी कन्या को बेचा था।

सब सो गये, परन्तु मुझे नींद नहीं आई। सब खर्राटे भरने लगे। ठोर-ठोर कर सोने लगे। मैं पेशाब करने को गई तो कोई बोला नहीं मुझसे। मैं आकर फिर अपनी जगह लेट गई।

दिल मेरा धुकड़-पुकड़ कर रहा था। मन में घबराहट सी थी कुछ। फिर भी साहस करके दुबारा उठी और पीछे के कमरे में चुपके से घुस गई। अन्दर जाकर मैंने आलमारी खोली और कपड़ों के नीचे से वह रुपयों की थैली निकाल ली। मैंने वह थैली अपने कपड़ों के बक्स में सब कपड़ों के नीचे दबा कर रख दी और फिर आकर अपनी खटिया पर लेट गई।

वह रात मेरी कितनी बेचैनी से कटी इसका बयान नहीं कर सकती आपसे।

दूसरे दिन दोपहर को बारात बि..ा हुई। मुझे और मेरे उस बक्स को उठाकर रथ में रख दिया गया। मैं चुपचाप सिकुड़ कर रथ के एक कोने में बैठ गई।

चलते समय मेरे पिता और सौतेली माँ ने रोने का बहाना किया। शायद उन्हें वह आराम याद आया हो जो आठ वर्ष तक मैंने एक नौकरानी की तरह काम करके उन्हें पहुँचाया था, परन्तु मुझे रोना नहीं आया उस दिन। प्रयास करने पर भी मैं रो नहीं सकी।

रथवान न अपने बैलों को टिटकारी दी और बैलों के गले की टल्लियाँ एक बार ही झंकार उठीं। रथ के नीचे बँधा हुआ जंग भी उसके चलने

की घड़घड़ाहट के साथ बज उठा। जंग की आवाज ज्यों-ज्यों बढ़ती थी त्यों-त्यों मेरे दिल की धड़कन कम होती जाती थी। रथ आगे को चलता था तो मैं अपने को खतरे से बाहर समझती थी।

बारात नगर से बाहर आकर एकबार फिर रुकी तो मेरा दिल फिर धड़-धड़ करके धड़कने लगा। मैं डरी कि कहीं पिताजी और माँ ने वह अलमारी खोलकर तो नहीं देख ली जिसमें से मैं चार हज़ार रुपये चुरा कर लाई हूं। कहीं मेरी खानातलाशी तो नहीं ली जायेगी यहाँ पर। परन्तु हुआ यह सब कुछ नहीं। बारात रुकी और उसके सब पौहन एक लाइन में लग गये। सब इकट्ठे हो गये तो फिर बारात आगे बढ़ी और मेरा रथ सब पौहनों के बीच में कर लिया गया।

मैं चाहती थी कि किसी तरह मेरा रथ हवा होकर मुझे उस अपरिचित गाँव में जल्द-से-जल्द पहुँचा दे जहाँ मैं दुलहन बन कर जा रही थी।

रथ रुका तो मैंने उसके पर्दे को खिसकाकर एकबार फिर अपने जन्मस्थान की ओर देखा। केवल इसलिए देखा कि मुझे वहाँ फिर कभी आने की आशा नहीं थी। जिन माँ-बाप के घर में मैं चोरी करके भागी जा रही थी भला वे फिर मुझे क्यों बुलाने का नाम लेंगे ? उस नगर से मेरा सम्बन्ध हमेशा के लिए विच्छेद हो रहा था।"

लड़की की बात सुनकर मैंने संतोष की साँस ली और उसकी दिलेरी की दाद देता हुआ बोला, "तुमने बहुत अच्छा किया। ऐसे माँ-बाप को ऐसा ही सबक देना चाहिए था।"

वह हँसकर बोली, "अभी सुनते जाइये आप कि अपनी इस बहादुरी का मुझे क्या जुर्माना अदा करना पड़ा ?"

"जुर्माना कैसा ?" मैंने पूछा।

वह बोली, "धीरे-धीरे सब सुनाऊंगी। बीच में प्रश्न करके किस्से का मज़ा खराब न कीजिये। बारात मेरी ससुराल में पहुँची। मेरे रथ को गाँव की औरतों ने घेर लिया। उन सब के बीच मैं रथ से उतरी और मेरी ओढ़नी का कोना मेरे पति के गले में पड़े दुपट्टे से बाँधकर मुझे घर के अन्दर ले जाया गया।

मेरा घूंघट खोल-खोल कर औरतों ने मेरा मुंह देखा। एक ने कहा—

वह काली है, दूसरी ने कहा—काली नहीं है जरा साँवली है, तीसरी ने कहा—सहन-सिक्के की तो अच्छी है, अपनी-अपनी बात सब कहते गये और मैं सुनती गई। मुझपर कोई असर नहीं हुआ उन सब की बातों का। मैं बहुत प्रसन्न थी आज।

एक-दो-तीन-चार-पाँच दिन-पर-दिन बीतते चले और मैंने देखा कि मैं उस घर की अकेली मालकिन थी। एक बहन थी उनकी, वह भी दस दिन बाद अपनी ससुराल को चली गई।

अब रह गये केवल मैं और वह ....

प्रथम दिन की भेंट में ही मैंने वे चार हज़ार रुपये अपने बक्स में से निकाल कर उनके चरणों में रख दिये।

वह आश्चर्य चकित होकर बोले, "यह क्या है?"

मैंने कहा, "ये आपके वही चार हज़ार रुपये हैं जो आपने मेरे पिता को दिये थे। जिनसे खरीद कर आप मुझे लाये हैं।"

वह सहमे से रह गये मेरी बात सुनकर। एक टक देखते रहे मेरे चेहरे की ओर। मैंने देखा कि थोड़ी ही देर में उनकी आँखें पसीज आईं और उनमें दो मोटे-मोटे आँसू छलक आये।

वह धीरे-धीरे बोले, "क्या सचमुच तुम वे चार हज़ार रुपये ले आईं?"

मैं हँसकर बोली, "दे तो रही हूं आपको। अब इसमें संदेह की क्या बात है? खोल कर देख लीजिये, गिन लीजिये। मिट्टी के घड़ कर नहीं लाई हूं मैं।"

आप सच जानिये वह न्यौछावर हो गये मुझपर। उन्होंने मुझे प्यार से अपनी बाहुओं में भर लिया और मुझे मालूम नहीं कितने प्यार से और कितनी बार मेरे सूखे गालों पर प्यार के चुम्बन चिपकाये।

बचपन में इतने प्यार से मेरी माँ मेरे गालों को चूमा करती थी। मैं लिपट जाती थी अपनी मां के सीने से और पाँच-छः वर्ष की होने पर भी मेरा जी चाहने लगता था माँ की दूद्धियाँ पीने को।

मेरा तमाम बदन रोमांचित हो उठा। गत आठ वर्ष के सूखे जीवन के पश्चात यह सरस जीवन मुझे आज ही मिला था। मेरे नेत्र बन्द हो गये और मैं भगवान् का लाख-लाख शुक्रिया अदा कर रही थी कि जिसने

मुझे आठ वर्ष की सख्त कैद से मुक्ति दिलाई थी।

वह कृतज्ञता के भाव से बोले, "ये रुपये बड़ी ही कठिनाई से जुटा पाया था मैं विवाह से पाँच दिन पूर्व तक। इनमें से दो हज़ार रुपये तो मेरी कमाई के हैं और शेष दो हज़ार रुपये मैंने अपनी ज़मीन पर कर्ज़ लिये थे।"

उनकी बात सुनकर मैं हँसती हुई बोली, "तो कल आप साहुकार को दो हज़ार रुपये देकर अपनी ज़मीन छुड़ा लें और शेष दो हज़ार अपने संभाल कर रखें।"

वह बोले, "अब मैं क्या सँभाल कर रखूंगा ये रुपये ? यह काम तो अब तुम ही करोगी। हाँ कल दो हज़ार रुपये साहूकार को देकर मैं ज़मीन अवश्य छुड़ा लूंगा।"

इतना कहकर मैंने देखा कि उस लड़की का मन एक दम उदास हो गया। वह कुछ कहती-कहती रुक गई।

मैंने पूछा, "तुम कह रही थीं कुछ।"

एक लम्बा साँस खींचकर वह बोली, "मैं कह रही थी आपसे कि मेरे जीवन में सुख नहीं बदा था।"

मैंने आश्चर्य चकित होकर पूछा, "क्यों ?"

"क्यों ? क्योंकि वह बहुत सीधे थे, इसलिए।" वह बोली।

"मैं समझा नहीं" मैंने कहा।

"आप समझ नहीं सकते।" एक लम्बा साँस खींचकर वह बोली। "आप पिता को नहीं समझते न अभी, इसलिए आप कुछ नहीं समझ सकेंगे।"

मैंने कहा, "तुम्हारे पिता को समझना सचमुच ही मेरे लिये कठिन है। वह साधारण दुनिया में जैसे पिता होते हैं उनसे भिन्न हैं। उनमें मानवता की कमी है।"

वह हँस दी मेरी बात सुनकर और हँसती हुई ही बोली, "मानवता की बात आपने खूब कही। मानवता किस चिड़िया का नाम है यह मैं आज तक नहीं समझ पाई। जो लोग जितने बड़े मानव हैं वे लोग मैं देख चुकी हूँ कि उतने ही बड़े नर पिशाच हैं।" कहती-कहती वह रुक गई।

मैं बोला, "तुम्हारी बातों से पता चलता है कि तुम्हें सचमुच ही जीवन

में कोई ऐसा आदमी नहीं मिला जिस पर तुम विश्वास कर सको।"

मेरी बात सुनकर वह फिर जोर से हँसदी। मैं तनिक डर सा गया उसकी हँसी को सुनकर। कितना व्यंग्य था उसकी हँसी में और कितना तीखे अट्टहास था उसका।

वह बोली, "अब छोड़ो इधर-उधर की बातों को। पहले मेरे पिता का किस्सा सुन लो आप। रात छोटी है और किस्सा लम्बा है अभी सुनाने के लिए। किस्सा अधूरा रह गया तो तुम्हारा आनंद किरकिरा हो जायेगा और मुझे भी बुरा लगेगा।"

उसने कहना प्रारम्भ किया और मैं ध्यान से उसका किस्सा सुनने लगा।

"जीवन के कुछ दिन खूब मस्ती से कटे। वह दिन भर काम करके आते थे और मैं उन्हें प्रेम से भोजन कराती थी। उनके पास बैठकर स्वयं भी खाना खाती थी।

चार वर्ष के हमारे इस जीवन में परमात्मा ने हमें दो संतानें भी दीं, एक बेटा और एक बेटी।

घर, ज़मीन और दुकान थी; वह कमाने वाले थे। दो बच्चों के घर में और आ जाने से घर स्वर्ग बन गया था हमारा। चार पैसे भी थे अपने पास। कर्ज़ नहीं था किसी का एक कौड़ी भी। कुछ दिन खूब चैन की बंसी बजी। मेरे सूखे हड्डियों के ढाँचे पर गोश्त चढ़ गया। मेरा साँवला रंग भी निखर आया। मैं जवान सी मालूम देने लगी। पास-पड़ौस की औरतें भी मेरी जवानी और मेरे सुख को देखकर डाह करने लगीं।

मेरा यही बाँका रूप था। गाँव में निकलती थी तो बड़े ठसके के साथ निकलती थी। मेरी जवानी को देखकर दिल मचल जाते थे अच्छे अच्छों के।"

"औरत की जवानी चीज़ ही है दिल मचल जाने की।" मैंने मुस्करा कर कहा।

वह हँसकर बोली, "आपका मजाक सहन किये लेती हूं। लेकिन यह सच जान लीजिये कि मुझसे मजाक करने का आज तक साहस नहीं किया किसी ने। ललचाये कोई भले ही परन्तु जबान से एक शब्द नहीं निकाल

सका।"

मैं मुस्करा दिया उसकी बात सुनकर।

वह बोली, "आप उलझा देते हैं मुझे इधर-उधर की बातों में। परन्तु अब मैं उलझूंगी नहीं।

मैं कह रही थी कि जीवन आनंद की लहरों में वह रहा था हमारा। सात वर्ष से सोलह वर्ष तक के जीवन की काली छाया का अब कहीं पता नहीं था।"

मने हँसकर पूछा, "अच्छा यह तो बतलाओ कि जब तुम्हारे पिताजी को यह पता चला कि तुम वे चार हजार रुपये उनके घर से चुरा लाई हो तो उन्होंने क्या किया?"

मेरी बात सुनकर वह लड़की खिलखिला कर हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली, "मुझे क्या पता क्या किया उन्होंने। खूब हाथ मलकर पछ-ताये होंगे और अपना माथा पीटा होगा उन्होंने अपने दुर्भाग्य पर। और यह भी हो सकता है कि माँ और पिताजी की आपस में गर्मा-गर्म झड़पें भी हुई हों।"

मैं बोला, "यह सब तो तुम अपने अंदाज से कह रही हो। इसका मतलब है कि तुम्हें सही-सही कुछ पता नहीं।"

वह बोली, "मेरा संबंध ही उस घर से कुछ नहीं रहा तो सही-सही मुझे पता भी क्या होता? हाँ इतना अवश्य है कि मैं शादी के बाद वहाँ फिर गई नहीं इससे अंदाज उन्होंने यह अवश्य लगा लिया था कि यह सब कारस्तानी मेरी ही है।"

मैंने हँसकर पूछा, "तो क्या फिर तुम्हारा अपने पिता के घर से कोई संबंध ही नहीं रहा?"

"रहा क्यों नहीं?" वह बोली। "पिताजी स्वयं यहाँ आये और मुझसे बड़े प्यार के साथ बातें कीं। इतने प्यार के साथ कि जितना प्यार उन्होंने मेरी माताजी के मरने के पश्चात मेरे विवाह तक कभी प्रदर्शित नहीं किया था।

मुझसे बोले कि मेरी मौजूदा माँ मुझे बहुत याद करती है। कहती है कि लड़की देखो शादी करके कैसी परायी हो गई। अपने माँ-बाप से

मिलने का नाम ही नहीं लेती। अच्छा घर वर मिल जाने का यह मतलब तो नहीं होता कि बेटी माँ-बाप को बिलकुल ही भुला दे।"

"तब तुमने क्या उत्तर दिया था उनकी बात का?" मैंने पूछा।

वह हँसदी मेरी बात सुनकर। और फिर जरा गम्भीर होकर बोली, "मैंने सब बात सुनीं उनकी और जब वह यह बातें कह रहे थे तो मेरी आँखों के सामने मेरी माताजी आकर खड़ी हो गई थीं।

ठीक इसी तरह जैसे मैं बैठी हूं आपके सामने।"

वह बोली, "माताजी कुछ बोलीं नहीं उनके सामने। परन्तु खड़ी रहीं मेरी पुतलियों में जमकर और जब पिताजी चले गये तो बोलीं,—बेटी विश्वास न करना इस नरपिशाच का। इस आदमी का दिल काले साँप से भी अधिक काला है। इसके धोखे में आकर तू अपना सर्वनाश न कर लेना। अपनी खिलती और मुस्कराती हुई फुलवारी को न उजाड़ बठना। बस इतना कहकर वह चली गई।"

पिताजी ने मेरे पति से भी बड़ी मीठी-मीठी बातें कीं। उन चार हज़ार रुपयों का नाम तक भी नहीं लिया और इस बात पर राजी कर लिया कि वह एकबार मुझे और बच्चों को लेकर मिलने के लिए अवश्य जायेंगे।"

"तब क्या गये थे तुम लोग मिलने के लिए?" मैंने पूछा।

वह हँस पड़ी मेरी बात सुनकर और फिर इठलाकर बोली, "आप भी क्या बच्चों जैसी बात पूछते हैं। जिस काम के लिए माताजी मना कर गई थीं, उसे मैं क्या कभी स्वप्न में भी कर सकती थी? माँ ही वास्तव में सबसे बड़ी शुभचिंतक होती है अपनी औलाद की।"

मैंने कोई आपत्ति नहीं की उसकी इस बात पर। माँ का पद वास्तव में पिता से किसी भी प्रकार कम नहीं होता। बच्चे माँ के ही तो रक्त-मांस से बने खिलौने होते हैं। वही अपना रक्त-मांस और दूध देकर उन्हें बनाती है।

वह बोली, "परन्तु यह सिलसिला बन्द नहीं हुआ यहीं पर। मेरे विरोध पर मेरे पति ने वहाँ जाने का विचार स्थगित कर दिया। उन्हें कोई विशेष दिलचस्पी भी नहीं थी वहाँ जाने में। वह नर्म दिल आदमी थे इसलिए पिताजी के आग्रह पर ना नहीं कर सके उनके सामने।"

कहती-कहती वह रुक गई और फिर हँसकर बोली, "सुनी आपने मेरे पिता की कहानी। अभी समाप्त नहीं हुई है यह परन्तु बीच में ही मुझे अपनी ननद जी की बात याद आगई। आप भी सोच रहे होंगे कि मैं अपने पिताजी के ही पीछे हाथ धोकर पड़ गई हूं।"

मैं हँसकर बोला, "यह तो नहीं सोच रहा मैं परन्तु हां इतना अवश्य सोच रहा हूं तुम्हारे पिता के विषय में कि कैसा आदमी है वह जो अपनी सन्तान का भी स्नेह प्राप्त नहीं कर सका। उसके मन में भी सद्भावना उत्पन्न नहीं कर सका। उसका पिता होना भी निरर्थक ही रहा।"

वह हँसदी मेरी बात सुनकर और खूब हँसी इसबार। फिर बोली, "पिता की ही क्या बात करते हैं आप ? पिता पुत्री से कुछ कम घनिष्ट सम्बन्ध भाई बहन का भी नहीं होता। उनमें भी काफ़ी स्नेह होता है।

मेरी ननदजी भी ऐसा ही प्रदर्शित करती थीं। कहती थीं कि मेरे पति को उन्होंने बच्चे की तरह पाला था। वह केवल दस वर्ष के थे जब उनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया था। उस समय यदि वह घर को न संभालतीं तो यह घर खाक में मिल जाता।"

मैं उसकी बात सुनकर सहानुभूतिपूर्ण स्वर में बोला, "इसमें कोई संदेह नहीं कि घर स्त्री का ही होता है। बिला स्त्री के घर में भूत का बासा हो जाता है।"

वह फिर खिलखिला कर हँसदी मेरी बात सुनकर और बड़े ही व्यंग्य के साथ बोली, "कोई किसी का घर बसाने के लिए नहीं आती है, पहले यह समझ लीजिय आप। और फिर मेरी ननदजी ! वह क्या बसा सकती थीं इस घर को ? वह तो अपना घर बसाने के लिए आई थीं यहाँ।"

मैंने आश्चर्य चकित होकर पूछा, "वह कैसे ?"

"वह कैसे" ज़रा मटक कर आँखें तरेरती हुई वह लड़की बोली, "वह ऐसे कि यहाँ से जो कुछ भी टंडीरा उनके हाथ लगे उसे वह अपनी सुसराल पहुँचा दें और फिर ठाठ के साथ पति-पत्नी मिलकर आनंद उड़ायें। उन्हें क्या पड़ी थी इस घर को बसाने की ?"

इतना कहकर वह धीरे से बोली, "आप बड़े भोले-भाले आदमी मालूम देते हैं। दुनिया की बात कुछ भी नहीं जानते। वह तो अवसर ही नहीं मिला

हमारी ननदजी को वरना तो वह अपने भय्या को कभी का ठिकाने लगा देतीं। फिर न रहता बाँस और न बजती बाँसुरी।"

मैं घबराकर बोला, "नहीं-नहीं, यह क्या कह रही हो तुम? सब लोग दुनिया में एक से नहीं होते। तुम्हारे मन पर अपने पिता के दुर्व्यवहार की जो काली छाया पड़ी है उससे तुम्हारा मन हर चीज़ के प्रति सशंकित हो उठा है। बहन अपने भाई के साथ ऐसा कभी नहीं कर सकती।"

वह मेरी बात सुनकर पीढ़े पर जरा सुधर कर बैठ गई और बोली, "एक दिन मैं सुबह-ही-सुबह दूध बिलो रही थी। दोनों बच्चे अभी खटिया पर ही सो रहे थे और वह मेरे पास खड़े हुए जाने क्या माँग रहे थे कि तभी घर के बाहर किसी ने आवाज़ दी।

वह बोले, "कौन आगया है आज सवेरे-ही-सवेरे?"

मैंने आवाज़ पहचान कर कहा, "आवाज़ तो ननदोईजी की सी मालूम देती है। देख लीजिये बाहर जाकर।"

वह बाहर गये तो सचमुच ननदोईजी ही खड़े थे दरवाज़े पर।

राम-राम शाम-शाम हुई और वह उन्हें आदर के साथ घर में लिवा लाये।

मैं दही की दुहावनी एक ओर सरकाकर खड़ी हो गई।

ननदोईजी और वह खाट पर बैठ गये।

उन्होंने पूछा, "आज सुबह-ही-सुबह किधर से आना हुआ?"

ननदोईजी मुस्करा कर बोले, "भाई इस बार तो हम तुम्हारी ससुराल गये थे एक शादी में और ठहरे भी तुम्हारे ससुर के ही यहाँ।

ऐसी खातिरदारी की बेचारों ने, उनका पीठ पीछा है, कि क्या कहूं बस?"

वह हँसकर बोले, "तो क्या इस समय सीधे वहीं से आरहे हैं आप?"

ननदोईजी बोले, "सीधा तो नहीं, पर आ वहीं से रहा हूं। रास्ते में एक दिन के लिए शहर में उतर गया था। तुम्हारी बहन ने कुछ चीजें मंगाई थीं शहर से, उन्हें खरीदने के लिए।"

तभी मैंने दूध का गिलास लेजाकर ननदोईजी को दिया तो वह मेरी ओर मुखातिब होकर बोले, "बड़ी ही बावली हो तुम तो बहू! माँ-

बाप के यहाँ जाना-आना इस तरह बन्द करने की भला क्या बात है ? वह बेचारे तुम्हें लेने को स्वयं यहाँ आये और तुमने जाने से इंकार कर दिया।

ऐसा भी कहीं होता है भला। माना माँ तुम्हारी सौतेली हैं लेकिन पिता तो तुम्हारे ही हैं।" कहकर उन्होंने दूध का गिलास मेरे हाथ से ले लिया।

दो घूंट दूध पीकर बोले, "उन्होंने कह दिया है कि तुम एक बार बाल-बच्चों को लेकर उनसे अवश्य मिल आओ। तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे वहाँ न जाने से उनकी कितनी बदनामी है।"

मैंने ननदोईजी की बात एक कान से सुनी और दूसरे कान से निकाल दी। मुझपर कोई असर नहीं हुआ उसका, परन्तु वह अवश्य कुछ पसीजे-पसीजे हो गये।

इस बार ननदोईजी दो दिन ठहरे और उनकी खूब आवभगत हुई वहाँ। खूब बढ़िया-बढ़िया माल खिलाये उन्हें और उन्होंने भी उनकी सेवा में अपने दो दिन लगा दिये। अपना सब काम-काज उठाकर ताक में रख दिया।

तीसरे दिन जब चलने को हुए तो उन्होंने फिर हम दोनों को वही बात समझाई जिसे कहते हुए उन्होंने घर में प्रवेश किया था। वह बोले, "जाना अवश्य तुम लोग। बड़े ही आग्रह से बुलाया है उन्होंने। माँ-बाप चाहे जितनी भी गलती करें परन्तु वे मां बाप ही होते हैं।"

ननदोईजी की बात सुनकर मैं नीची गर्दन किये खड़ी रही। हाँ-ना में मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

उनके चले जाने पर मेरे पति ने पूछा, "कहो चलोगी क्या आपने पिताजी से मिलने ?"

मैंने हँसकर उत्तर दिया, "नहीं।"

वह हँसकर बोले, "बहनोईजी क्या यह नहीं कहेंगे कि हमने उनका भी कहना नहीं माना ?"

मैं बोली, "कहने दीजिये ! कहने वाले कहते ही रहते हैं। करना

वही चाहिए जो अपने को ठीक जंचे।"

मेरे पति ने प्यार भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा।

मैं बोली, "पता नहां पिताजी के दिल में मेरे लिए अब कैसा प्यार लहरें मार रहा है जो मुझे बुलाये बिला उन्हें चैन ही नहीं पड़ रही। माता जी के मरने के पश्चात जिन पिताजी ने एक शब्द भी कभी मुझसे सहानुभूति का नहीं कहा वह आज मुझे बुलाने के लिए क्यों इतने उतावले हो उठे है ?"

वह बोले, "समय-समय की बात होती है। क्या पता है कि अब उन्हें अपनी पुरानी भूलों पर पश्चाताप हो रहा हो।"

मैं हँसकर बोली, "अपने पिता को मैं आपसे अधिक समझती हूं। पश्चाताप जैसी चीज उनके पास तक भी नहीं फटक सकती। अवश्य ही इसमें कोई गहरी चाल है उनकी।"

"कैसी चाल ?"उन्होंने पूछा।

मैं चुप होगई उनके सामने। इधर-उधर की बातें करके मैंने उस समय उस बात को टाल दिया।

वह भी दूसरी बातों में लग गये। उनके लिए उस बात में अधिक उलझने का कोई विशेष कारण नहीं था।"

मैंने पूछा, "तो क्या तुम अपन ननदोईजी को भी ठीक आदमी नहीं समझती थीं। उनकी बातें भी विश्वास के योग्य नहीं थीं।"

मेरी बात सुनकर वह हँसदी और हँसी में ही बोली, "विश्वास ! विश्वास का तो आप नाम ही न लीजिये इस जमाने में। किसी का कोई विश्वास नहीं। अपने पेट के जायों का विश्वास नहीं तो फिर ननदोईजी का क्या विश्वास ?

हमारी ननद जी का पेट तो आप ऐसे समझिये जैसे कोई गहरा कुंआ। मैं जरा होशियार न रहती तो वह मुझे, उन्हें और हमारे दोनों बच्चोंको भी साफ़ निगल जातीं।"

मुझे हँसी आगई उसकी बात सुनकर।

मुझे हँसता देखकर वह बोली, "आपको हँसी आगई मेरी बात सुनकर ? परन्तु यह बिलकुल सच है जो मैं कह रही हूं। कहानी अभी

अधूरी है, इसलिए आपको विचित्र सा लग रहा है।"

कहती-कहती वह कुछ ठहर गई और बड़े ध्यान से मेरी ओर देखने लगी। फिर धीरे-धीरे बोली, "मैं पूछती हूं आपसे कि मेरे पिता और ननदोई जी का क्या संबंध? ननदोई जी ने क्यों सिफ़ारिश की पिताजी के यहाँ जाने की? क्या आप समझते हैं कि इसमें कोई चाल नहीं थी ननदोईजी और मेरे पिता की?"

मेरी समझ में कुछ नहीं आई उसकी बात। मैं सरल स्वभाव में बोला, "होगी कोई चाल तुम्हारी दृष्टि में। मुझे तो कोई चाल दिखाई नहीं देती। बारात में जाकर तुम्हारे पिता के घर पर ठहर गये तुम्हारे ननदोईजी। वहाँ उनका अच्छा स्वागत हुआ तो उनके मन पर तुम्हारे पिताजी के भले होने की छाप पड़ी। इसीलिए तुमसे कह गये हैं कि माता पिता से इस प्रकार का वैर नहीं बाँधना चाहिए। पारस्परिक मनो-मालिन्य को भुला देना चाहिए।"

मेरी बात सुनकर वह लड़की खूब हँसी, खूब हँसी और फिर पीढ़े से उठकर मस्ती में घर के आंगन में घूमने लगी।

जरा घूम कर वह फिर मेरे सामने खड़ी होकर बोली, "आप सचमुच ही बहुत भोले मालूम पड़ते हैं मुझे। शायद मेरी जैसी कोई पेचीदगी कभी आपके जीवन में नहीं आई। मैं अभी-अभी घूमती हुई सोच रही थी कि यदि ऐसी कोई पेचीदगी आपके जीवन में आ जाती तो आपकी क्या दशा होती?" कहकर वह बड़ी सरल मुस्कराहट में हँसी।

मैंने उसकी आँखों में आँखें डाल कर देखा तो बहुत गहरी मालूम दीं मुझे उसकी आँखें। मैं बोला, "मैं व्यर्थ किसी चीज की बाल की खाल निकालना पसंद नहीं करता। जो कोई जैसा कहता है उसपर वैसे ही विश्वास कर लेता हूं। अपना दिमाग नहीं खराब करता दूसरों की बातों में।"

"परन्तु यह दूसरों की बातें नहीं है, जो मैं कह रही हूं।" वह जरा तुनककर बोली। "मैं अपने दिल के घाव दिखला रही हूं आपको। अपने मस्तिष्क को साफ़ करना चाहती हूं आपसे बातें करके।"

कुछ ठहर कर वह बोली, "शायद मैंने बतलाया नहीं पीछे कि हमारा

यह रिश्ता ननदोईजी ने ही कराया था। जो चार हज़ार रुपया पिताजी को मिला उसमें एक हज़ार ननदोईजी का था।"

कहती-कहती वह हँस दी। हँसी आप-से-आप फूट पड़ी और इस बार वह हँसती ही रही बहुत देर तक।

वह बोली, "वह चार हज़ार रुपये मैं चुरा लाई तो बस आनंद आगया सच जानिये। कुछ दिन पिताजी और ननदोईजी में खूब तनातनी रही, गाली-गुफ्तार भी हुई, परन्तु अलहदा में। ननदोई जी ने पिताजी की इस बात पर विश्वास नहीं किया कि वे चार हज़ार रुपये मैं चुरा लाई वहाँ से। वह यही समझते रहे कि मेरे पिताजी ही उन्हें उनका हिस्सा न देने का बहाना करके झूठ बोल रहे हैं।"

यह बात सुनकर मैंने पूछा, "तो क्या तुम्हारे ननदोईजी और पिताजी का कुछ पुराना परिचय था ?"

"होगा, या न होगा" वह लापरवाही से बोली। "इससे मुझे क्या ? मैं तो जो हुआ वह सुना रही हूं आपको। पिताजी और ननदोईजी की आपस में जो झपटें उन चार हज़ार रुपयों को लेकर हुईं उनका ज्यों-का-त्यों वर्णन जब मैंने अपने पति के सामने किया तो उन्होंने विश्वास नहीं किया मेरी बात पर।"

मैं हँसकर बोला, "तुम हो वास्तव में बहुत चतुर लड़की परन्तु ज़रा यह तो बतलाओ कि तुम्हें तुम्हारे ननदोई और पिताजी की झपटों की सूचना किसने दी ?"

वह मुस्कराकर बोली, "चल गया मुझे भी पता। और न भी चलता यदि चमेली की शादी मैंने अपने पड़ौस के लड़के रामदीन से न करा दी होती। चमेली मेरे पड़ौस की ही लड़की थी। उसके पिताजी उसके लिए वर खोजते-खोजते यहाँ आ पहुँचे और मैं उनके नगर की लड़की थी इसलिए कुछ जानकारी करने के लिए मेरे पास भी आये। रामदीन के विषय में उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कह दिया कि लड़का बहुत नेक है और घर भी अच्छा है उसका। पुराना खानदानी घर है। चमेली को सब तरह का आराम रहेगा यहाँ।

मेरे कहने पर ही चमेली के पिता ने उसका रिश्ता रामदीन से कर

दिया।"

मैं स्थिति को समझकर बोला, "तो चमेली ने बतलाई होंगी तुम्हें वे सब बातें।"

उसने स्वीकार किया, "हाँ चमेली ने ही बतलाई थीं मुझे ये सब बातें। उसने यह भी बतलाया कि अब मेरे पिताजी और ननदोईजी में बड़ा मेल हो गया है। महीने में एक बार ननदोईजी पिताजी से मिलने के लिए अवश्य जाते हैं और जब जाते हैं तो मेरे विषय में बातें भी खूब होती हैं उन दोनों की।

पिताजी कहते थे---"देखो चार दिन की छोकरी कैसा चकमा दे गई हमें। हमारी ही बिल्ली और हमारे ही कान काट लिए उसने।"

इसपर ननदोईजी को हँसी आजाती थी और वह आराम से तकिये का सहारा लेकर लेटते हुए कहते थे,—"अरे! मूरख बना गई आपको। आपकी सारी अक्लमन्दी को खाक में मिला दिया उसने। बिरादरी में बदनाम भी हुए कि चार हजार लिये लड़की पर और हाथ में एक छदाम भी न आया।

ये आजकल की लड़कियाँ बड़ी चलाक होने लगी हैं। बाप के घर को तो अपना घर ही नहीं समझतीं। ये नहीं जानतीं कि अगर कहीं रंडापे ने आ घेरी तो फिर बाप ही संभालने वाला होता है उनको।

ननदोई जी की यह बात सुनकर पिताजी ने लम्बा सांस खींचकर कहा,—अरे! इतनी लम्बी बात कौन सोचता है? लड़कियाँ तो आज-कल अपने पतियों को ही सब-कुछ समझती हैं।"

"तुम्हारी कहानी वास्तव में बड़ी विचित्र है।" मैं बोला, "तुम बैठ जाओ अब। थक गई होगी। बड़ी देर से खड़ी हो इसी तरह।"

वह बैठ गई, जरा पीढ़ा मेरे पास को खिसकाकर। फिर उसने भेद-पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा और उसी तरह देखती रही बहुत देर तक।

मैंने पूछा, "इस तरह क्या देख रही हो तुम मेरे चेहरे पर?"

वह बोली, "कुछ नहीं। यूंही देख रही थी जरा। आपकी आँखें मुझे भली लग रही हैं। मैं देख रही हूँ कि आपकी आँखों में मैं अपनी शक्ल को देख सकती हूं या नहीं?"

मैं बोला, "मेरी आँखों में तुम्हें अपनी शक्ल देखने को नहीं मिलेगी, हाँ मेरे विचारों में तुम्हारी शक्ल इस समय चक्कर अवश्य लगा रही है। जब से तुम आई हो, तुमने मेरे विचारों पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया है। मेरे हृदय की भावनाओं को भी तुमने छू दिया है।

तुम्हारा चित्र निर्मित कर रहा हूं मैं अपने मस्तिष्क में और दिखलाऊंगा तुम्हें जब वह बन जायगा। अभी अधूरा ही है वह।"

वह हँसकर बोली, "बिलकुल अधूरा। अभी तो केवल प्रारम्भ मात्र है उसका।"

"वह कैसे ?" मैंने पूछा, "जवानी तो प्रारम्भ नहीं होता जीवन का। और फिर अब तो तुम दो बच्चों की माँ बन चुकी हो। जवानी के पूरे विकास को भी पार कर चुकी हो।"

वह हँसकर बोली, "मैं प्रारम्भ ही मानती हूं इसे जीवन का। बचपन को मैं बच्चों का अपना जीवन नहीं मानती। यह उनके माता-पिता का जीवन होता है। जिधर को वे उन्हें नचाना चाहते हैं वे नाचते हैं। मनुष्य का अपना जीवन जवानी से ही प्रारम्भ होता है।"

मैं उसकी बात सुनकर मुस्कराते हुए बोला, "जीवन को खूब पढ़ा है तुमने। जीवन को नापने के अपने नये मापदण्ड भी जो तुमने बनाये हैं वे सही ही हैं क्योंकि निजी जीवन से काट-छांट कर निकाला है तुमने उन्हें। परन्तु तुम्हारे ये मापदण्ड हर जगह सही नहीं उतर सकते।"

मेरी इस बात पर वह गम्भीर होकर बोली, "हर जगह सही नहीं उतर सकते ? यह क्या कहा आपने ? ये हर जगह सही उतरेंगे। केवल कहीं-कहीं पर ही गलत हो सकते हैं।

मैंने अपनी जिन्दगी को अपने पास पड़ौस की सब औरतों की जिन्दगियों पर बिछा कर देखा है। मुझे कोई अन्तर नजर नहीं आया। कहीं कोई साधारण अन्तर हो-तो-हो। पहियों की धुरी सबकी एक सी होती है। किसी पहिये में कुछ कम डंडे होते हैं और किसी में कुछ अधिक। किसी पहिये की चाल कुछ मन्दी होती है और किसी की कुछ तेज।"

फिर वह बात बदलकर मुझसे बोली, "इसके पश्चात हमारे ननदोईजी ने हमारे यहाँ जल्दी-जल्दी आना-जाना आरम्भ कर दिया। मैं डरने लगी उनसे। मैं अपने पति का हर समय ध्यान रखने लगी कि कहीं वह पान में ही उन्हें कुछ न खिला दें।

उन्हें इस तरह आते-जाते भी छः महीने हो गये। उन्होंने मेरे पति को अपनी मुट्ठी में कर लिया।

इसी दौरान में एक दिन पिताजी भी आये। ननदोई जी पहले से मौजूद थे। तीनों की बातें होती रहीं तमाम दिन और मैं मन-ही-मन डरती रही कि भगवान् जाने अब क्या दुर्घटना घटने वाली है।"

कहते-कहते वह उदास हो गई। मैंने देखा कि उसके गालों की वह शोभा जो अभी-अभी बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही थी, जानें कहाँ चली गई।

वह रो रही थी।

मैं बोला, "तुम रो रही हो ?"

वह बोली, "बस रोना-ही-रोना रह गया है अब ज़िन्दगी में। मुझे भगवान् ने केवल चार वर्ष का ही अपना जीवन देकर भेजा था इस दुनिया में।"

मैंने पूछा, "वह कैसे ?"

"वह ऐसे, कि एक दिन उनकी बहन आई और उन्हें अपने साथ लिवा कर ले गई। मैंने लाख मना किया पर उन्होंने एक नहीं सुनी मेरी।" वह रोती-रोती ही बोली।

मैंने पूछा, "कहाँ लिवा कर ले गई ?"

वह बोली, "अपने साथ, अपनी सुसराल को और वहाँ से ननदोईजी के साथ मेरे पीहर भेज दिया उन्हें।"

"फिर क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

"फिर क्या होना था ? वही हुआ, जिससे मैं डर रही थी।"

बोलते-बोलते उसका गला रुँध गया। उसकी जबान बन्द हो गई। उसकी आँखों से आंसुओं की धारा बह रही थी।

मेरा दिल भी भारी हो उठा।

मैंने उतावलेपन में पूछा, "क्या ?"

"बस !" उसने कातर दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा, "बस वे ही आखरी दर्शन थे उनके। मेरी माँग का सिंदूर पुंछ गया। मेरा सुहाग लुट गया। मैं रानी से दर-दर की ठोकर खाने वाली एक मजदूरिन बन गई।"

"यह कैसे हुआ ?" मैंने पूछा ।

"यह ऐसे हुआ कि मेरे पिता ने और ननदोई जी ने आपस में ताल-मेल करके उन्हें खाने में जहर खिला दिया। दोनों ने सोचा कि उनके मरने के बाद तो मैं उनके हाथों में आ ही जाऊँगी।"

कहते-कहते मैंने देखा कि उसकी आँखें क्रोध से लाल अंगारों की तरह जलने लगीं। उसका तमाम बदन पसीना-पसीना हो गया और शरीर के हर अंग में कम्पन आ गई।

वह क्रोध में बोली, "जब मुझे खबर मिली तो उनका शव जला दिया गया था।"

क्रोध के पश्चात मैंने देखा कि वह लड़की फफक-फफक कर रो रही थी। उसकी माँग का सिंदूर सचमुच ही पुंछ चुका था। उसके माथे का टीका भी न जाने कहाँ चला गया था। उसका सब सिंगार समाप्त था और वह एक सादा धोती बांधे मेरे सामने बैठी थी।

मेरे देखते-देखते ही उसने अपने को संभाला और मैंने देखा कि अब वह कुछ शांत थी।

मैंने धीरे से पूछा, "तो क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारे पिता और ननदोई ने तुम्हारे पति को जान बूझ कर मरवा दिया ?"

मेरी बात सुनकर उसे फिर क्रोध आ गया और क्रोधपूर्ण वाणी में ही वह बोली, "मरवा नहीं दिया, मार दिया कहिये आप ! यदि अचानक ही उनकी मृत्यु हुई होती तो मुझे वहाँ बुलाने से पूर्व ही उनका शव क्यों जला दिया जाता ? क्या इससे भी बड़े प्रमाण की आवश्यकता है आपको ?"

मैं घबरा उठा उसकी बात सुनकर। मेरा सिर चकराने लगा। पिता के त्याग और उसकी तपस्या में से मेरी आस्था उठने लगी। मेरा

विश्वास डगमगा उठा ।

उसने मुस्कराकर कहा, "सुनी आपने मेरे पिता की कहानी । क्या यही वह पिता का पद है जिसे आप त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति कहते थे ? सगी बहन का प्यार भी आपने देख लिया । सगे बहनोई की करतूत भी आपने सुन ली ।"

मैं चुप था उस लड़की के सामने । उससे इस समय कुछ भी कहना व्यर्थ था । उसके सामने अपने पिता, बहनोई और ननद की साक्षात प्रतिमाएँ खड़ी थीं । उसकी आँखों की पुतलियों में उनकी काली करतूतें नाच रही थीं । उन्हें हटाकर आदर्श पिता, आदर्श बहन और आदर्श बहनोई के चित्र उपस्थित करना मेरे लिए असम्भव था ।

वह हँसकर बोली, "आप चुप हैं । मैंने सुना है कि आप बड़ी ही आदर्श पुस्तकें लिखते हैं । बड़े आदर्श चरित्रों को प्रस्तुत करते हैं । लेकिन उनसे लाभ क्या ? दुनिया तो ऐसी है जैसी मैं आपको बतला रही हूँ । यह मैंने अपना किस्सा आपको सुनाया । ऐसे किस्से गाँव के घर-घर में मौजूद हैं ।"

मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

वह हँसकर बोली, "फिर क्या होता ? फिर वही हुआ जो मैंने सोच रखा था । उनकी वह बहन अपने भाई को रोने के लिए आई । मैंने अन्दर से घर की कुंडी बन्द कर ली । कुंडी बन्द करके मैं कोठे की छत पर चढ़ गई और वह डायन मेरे दरवाजे पर खड़ी रही । गाँव के और आने-जाने वाले भी उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये ।"

मैंने पूछा, "फिर !"

वह हँसकर बोली, "मैंने उसे फटकार कर कहा,—खागई डायन अपने सगे भय्या को और अब आई है उसे रोने के लिए । रोना ही है तो वहाँ जा जहाँ तूने मरवाने के लिए अपने खसम के साथ उन्हें भेजा था ।

यहाँ किस लिए आई है तू ? उन्हें तो खा लिया तूने अब क्या उनके बच्चों को खाने आई है ?

वह माथा पकड़ कर बैठ गई मेरे दरवाजे पर ।"

मैंने पूछा, "फिर ।"

वह बोली, "उस दिन मैंने अपना घूंघट खोल कर कस्बे के सब लोगों के सामने कहा,—कस्बे के लोगों ! ज़रा थूको तो तुम सब मिलकर अपने गाँव की इस लड़की के जनम पर । और इसके खसम को भी देखो कैसा कुत्ते की तरह आया है जीभ लपलपाता हुआ ।

आज तुम सब लोगों को मैं अपना किस्सा सुनाती हूं । इसने मेरी शादी में मेरे बाप को चार हज़ार रुपये दिलवाये थे । उनमें से एक हज़ार रुपये इसने अपने तै किये थे ।

मुझे उसका पता चल गया और मैं वे चार हज़ार रुपये अपने बाप के घर से यहाँ चुरा लाई । इसलिए इसे एक कोड़ी भी नहीं मिली । इसी जलन में यह और उनकी यह डायन बहन उन्हें बहका-फुसला कर यहाँ से ले गये और मेरे बाप के घर ले जाकर ज़हर देकर मार दिया ।

अब यह आई है अपने भय्या को रोने के लिए ।"

इतना कहकर वह खिलखिलाकर जोर से हँस पड़ी । इतने जोर से हसी वह, इतने जोर से हँसी वह, कि पगली जैसी जचने लगी मुझे भी ।

मैंने तनिक भयभीत सा होकर देखा उसकी तरफ तो वह मुस्करा कर बोली, "पगली नहीं हूं मैं । और अभी पगली हूंगी भी नहीं । मेरे ऊपर दो बच्चों का भार है । अभी एक एक वर्ष का है और दूसरा तीन वर्ष का । उनकी अमानत हैं ये दोनों बच्चे । इनका पालन-पोषण करूंगी । मज़दूरी करूंगी और इन्हें बड़ा करूंगी । तब चाहे भले ही पागल हो जाऊं । परन्तु इस समय पागल नहीं हूं मैं ।"

मैं बोला, "फिर ?"

"फिर क्या उस डंकनी के लिए मेरे घर का द्वार हमेशा के लिए बन्द हो गया । अब वह घर मेरा था, उसके भाई का नहीं । यह घर उस औरत का था जिसके पति को उसने ज़हर दिलवा कर मरवा दिया था । फिर उसमें उसका क्या स्थान ?"

मैं ज़रा सोच कर बोला, "यह ठीक किया तुमने । तुम्हारा अन्दाज सही था । वे लोग झूठी सहानुभूति दिखाने के लिये आये थे । परन्तु गाँव के लोगों ने क्या कहा ?"

'गाँव के लोग क्या कहते ? कुछ ने कहा पागल हो गई हूँ मैं पति की मृत्यु के रंज में। कुछ ने कहा ठीक किया मैंने। कुछ ने समझाया मुझे कि मैं घर कीकुंडी खोलकर अपनी ननद को अन्दर आने दूं। कुछ चुप रहे, देखते रहे केवल जो कुछ हो रहा था उसे। कुछ ने केवल उपहास ही समझा इसे; परन्तु सच यह था कि मैंने उन सबने जो कुछ भी कहा, सुना या किया उसे कोई स्थान नहीं दिया अपने मन में। सब सुना, सब देखा, सब सहा परन्तु किया वही जो मैं अपने मन में निश्चय कर चुकी थी।

मैंने घर का द्वार नहीं खोला। वह लौट गई अपने पति के साथ और उन दोनों ने जो जाल रचा था उसपर पानी फिर गया। वे समझते थे कि उनके मरते ही मैं इनके काबू में आ जाऊंगी और मेरे घर को फिर वे बड़े आराम से लूट सकेंगे।

वह दिन है और आज का दिन है, मैंने उस डंकनी की कभी सूरत नहीं देखी।

कई बार बाद में भी उसने अपने को बुलवा भेजने का संदेशा भिजवाया पर मेरे मन ने गवाही नहीं दी। जिसने मुझे विधवा बनाया, जिसने मुझे दर-दर की ठोकरें खिलाईं, जिसने मेरा सुहाग लूटा उसे मैं अपने घर में बुला कर रखूं तो वह क्या कुछ गज़ब नहीं कर सकती थी? मेरे बच्चों को ही ज़हर दे देती तो मैं क्या कर लेती उसका?"

"बड़ी ही दर्दनाक कहानी सुनाई तुमने" मैं बोला। "तुम्हारा जीवन वास्तव में आपत्तियों से घिरा हुआ रहा है। तुम्हारे पति ने भूल की उनके साथ जाकर।"

मेरी यह बात सुनकर उसके नेत्र फिर पसीज आये। वह बोली, "गलती न कहो इसे। मेरे भाग्य में यही बदा था। वह बहुत ही सीधे और नर्मदिल आदमी थे। आदमी नहीं, देवता थे वह। छल कपट नाम की कोई चीज़ उनमें थी ही नहीं। इस डंकनी बहन को वह सचमुच ही अपनी माँ के समान समझते थे। इसके पति को वह अपने पिता का दर्जा देते थे। इसी का दण्ड मुझे भुगतना पड़ा, भुगता मैंने और भुगत रही हूं। भुगतती रहूंगी जब तक यह शरीर चलेगा और रोती रहूंगी इन्हें जिन्होंने मेरे सुहाग को लूटा है।"

कहती-कहती हँसदी वह और बोली, "लेकिन अब बात पुरानी हो गई है, इसलिए रोती भी हसकर ही हूं मैं। इधर-उधर की दुनिया को देखती हूं तो सब्र कर लेती हूं कि मुझसे भी न जाने कितनी अधिक दुखिया हैं कितनी ही औरतें।"

उसकी बात सुनकर मैंने अपने मन में कहा,—औरत बड़ी ही समझदार मालूम देती है। दिलेर भी बहुत है और अपने विचारों की भी बड़ी पक्की है। जो कुछ सोच लेती है उसे करने में भी इसे संकोच नहीं होता।

मैंने धीरे से पूछा, "फिर!"

वह हँसकर बोली, "मेरी ननद और ननदोईजी अपना काला मुंह करके लौट गये। किसी ने बात तक नहीं की उनसे। गाँव से बाहर निकलना कठिन हो गया उन्हें।

इसके दस-पंद्रह दिन पश्चात मेरे पिताजी आये। दूर से ही रोने लगे मेरी शक्ल देखकर।

मैंने रोका नहीं उन्हें घर में आने से।

वह सीधे आकर दालान में बिछी खाट पर बैठ गये और फिर माथे पर हाथ रखकर बोले, "बेटी तेरा सुहाग लुट गया।"

मैं मुस्कराकर संजीदगी के साथ उनसे बोली, "लुट गया क्यों कहते हो पिताजी! यों कहो कि आपने लूट लिया। जो चीज़ आपने दी थी मुझे वह आपने वापस ले ली।"

मेरी बात सुनकर चौंक उठे वह और तनिक घबराकर बोले, "यह क्या कह रही हो तुम बेटी! क्या कोई बाप भी कभी अपनी बेटी का सुहाग लूट सकता है?"

मैंने उसी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया,—"लूट क्यों नहीं सकता पिताजी? जो पिता अपनी लड़की को चार हज़ार रुपये में बेच सकता है, वह क्या नहीं कर सकता?

और फिर इस विषय में तो ननदोईजी सब कुछ बतला गये हैं मुझसे।"

मैंने ननदोईजी का नाम लिया तो पिताजी को पसीना आ गया। खाट पर बैठे-ही-बैठे उनका बदन काँपने लगा। उनकी गर्दन नीचे को झुक गई और ज़बान बन्द हो गई उनकी।

मैंने मुस्कराकर ही कहा,—"अब चुप क्यों हैं आप ? आपको पसीना क्यों आगया ? आप काँप क्यों रहे हैं ? आपकी गर्दन क्यों नहीं उठती ऊपर को ? वह चार हज़ार रुपये लेने आये हैं न आप जो मैं आपके घर से चुरा लाई थी ?

मैं और न जाने क्या-क्या कहती गई और वह पत्थर की मूर्ति के समान खाट पर बैठे सब कुछ सुनते रहे।

बस वह दिन है और आज का दिन है, मुझे पता नहीं फिर उनका क्या बना। न वह मुझसे बोले, न मैं उनसे बोली। न उन्होंने फिर मुझसे कुछ पूछा और न मैंने उनसे कुछ कहा। वह चुपके से उठे और घर से बाहर हो गये। मैं भी दरवाजे तक गई और दगड़े में दूर तक जाते उन्हें देखा। जब नज़रों से ओझल हो गये तो मैं किवाड़ बन्द करके घर के अन्दर चली आई।

आकर खाट पर लेट गई और रोती रही घंटों तक पड़ी-पड़ी। इसी प्रकार पड़े-पड़े जाने कैसे मुझे नींद आगई। और सोती ही रहती जाने कितनी देर तक यदि पड़ोस से आकर चमेली मुझे न जगा देती।

"आज बड़ी देर तक सोई बुआजी"—चमेली ने कहा। मैं बुआ लगती थी चमेली की अपने पीहर के रिश्ते से और गाँव के रिश्ते से ताई। वह पीहर का ही रिश्ता मानकर मुझे बुआ कहा करती थी।

मैं उठकर बैठ गई खाट पर।

मेरा उदास चेहरा देखकर चमेली बोली—"आप तो इस तरह रंज कर-करके अपने स्वास्थ्य को भी खराब कर लोगी। आपकी आँखें लाल हो रही हैं" और तभी उसने मेरे हाथ की कलाई छूकर देखी।

नब्ज़ देखना वह नहीं जानती थी परन्तु मेरा गर्म हाथ देखकर बोली, "अरे बुखार हो रहा है आपको तो। बड़ा तेज़ बुखार है। आप लेट जायें। मैं उन्हें बुलाकर लाती हूं। वह दवा लादेंगे वैद्यजी से।"

मैं हँसदी चमेली की बात सुनकर और उसका हाथ पकड़ कर उसे पास बिठलाती हुई बोली, "बुखार-बुखार नहीं है। यूंही बेचैनी से बदन गर्म हो गया है।"

चमेली बैठ गई और उसे मैंने पिताजी का सब किस्सा सुनाया।"

: ६ :

मैं बड़े ध्यान से उस लड़की का किस्सा सुन रहा था। मुझे बड़ा आनंद आ रहा था उसकी बातों में। मैं अब आगे जानना चाहता था कि वह दिलेर स्त्री देखता हूं जीवन का भार अपने कंधों पर कैसे संभालती है।

तभी मेरे कानों में माताजी की आवाज़ पड़ी, "आज कब तक सोता रहेगा लाला! देख तो सूरज निकल आया। और यह मंगलू की माँ बैठी है बेचारी कितनी देर की।"

मैंने जम्हाई लेकर आँखें खोलीं तो देखा कि मेरे पास पीढ़े पर मंगलू की माँ बैठी थी। ठीक उसी पीढ़े पर जिसपर वह लड़की बैठी थी।

मेरी आँखें फिर बन्द हो गईं। और देखा कि पीढ़े पर फिर वही लड़की बैठी थी। वह हँसकर बोली, "मैं ही तो हूं मंगलू की माँ।"

मैंने आँख बन्द किये-किये ही कहा, "बहुत बदल गईं इतने दिनों में।"

मैंने आँख खोलीं तो मंगलू की माँ ने कहा "मुसीबत में आदमी जल्दी ही बदल जाता है। फिर समय भी तो बीस वर्ष का हो गया। बीस वर्ष पहले जो बच्चे थे वे आज जवान हैं और जो जवान थे आज वे बूढ़े हैं। मंगलू जो जब खटिया में पड़ा-ही-पड़ा रेंगता था अब जवानी के नशे में किसी को कुछ समझता ही नहीं अपने सामने। वह, उसकी औरत और उसका लड़का, बस ये ही हैं उसकी नज़रों में।

बूढ़ी माँ को क्यों पूछे वह आज?"

मैं उठकर बैठ गया खाट पर और मंगलू की माँ से बोला, "तुम कितनी देर से बैठी हो यहाँ?"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "यहाँ तो अभी आई हूं कोई दस मिनट हुए लेकिन सच पूछो तो मैं आज रात भर सोई नहीं एक मिनट के लिये भी। न जाने कैसा सपना देखती रही। मैं देखती रही कि तुम खाट पर लेटे हो और मैं तुम्हारे सामने पीढ़े पर बैठी तुम्हें अपनी पुरानी कहानी सुना रही हूं। और न जाने कब तक सुनाती ही रहती अगर पड़ौस से आकर चमेली मुझे न जगा दे।

कभी-कभी सोचती हूं कि जाने कैसे अपने पराये और पराये अपने

हो जाते हैं ? मेरे पेट का जाया लड़का और लड़की कभी काम नहीं आये मेरे। क्या मजाल जो एक गिलास पानी भी कभी किसी ने लाकर पिलाया हो मुझे। और एक यह चमेली है कि मेरा कान भी गरम होजाने पर रात दिन मेरी खाट की पट्टी के सहारे बैठ कर काट देती है।" कहती-कहती वह चुप हो गई।

माताजी की चाय बन गई थी। मंगलू की माँ ने यह देखकर पास में रखा स्टूल मेरी खाट के पास लाकर रख दिया और माताजी ने उसपर चाय की प्याली रख दी।

मैं चाय पीने लगा। मंगलू की माँ पीढ़े पर बैठी-बैठी मेरी ओर देखती रही। माताजी ने एक प्याली चाय मंगलू की माँ को भी दी और बोलीं, "ले चाय पीले मंगलू की माँ !"

मंगलू की माँ हँसकर प्याली अपने हाथ में लेकर माताजी से बोली, "बेटे को सवेरे-ही-सवेरे चाय पिलाने में माँ को कितना आनन्द आता है यह बात बेटे नहीं जानते। और जानते भी हैं तो सिर्फ़ तभी तक जानते हैं जब तक उनकी बहुएँ नहीं आतीं।"

माताजी हँस दीं मंगलू की माँ की बात सुनकर और गर्व के साथ बोलीं, "मंगलू की माँ सब बेटे एक जैसे नहीं होते। माँ माँ की जगह होती है और बहुएँ बहुओं की जगह। तू अपने मंगलू को उसकी बहू से बिलकुल अलग-थलग करके देखना चाहती है, यही तो खराबी है तेरी।"

मंगलू की माँ का मुंह चढ़ गया माताजी की बात सुनकर। वह भंवें चढ़ा कर बोलीं, "यह बात नहीं है चाची ! कुछ बदल ही जाते हैं बेटे बहुओं के आने पर। माँ ने उनके लिये क्या-क्या मुसीबतें उठाई हैं, इनका उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। वे समझने लगते हैं कि वे हमेशा के इतने ही बड़े थे।"

मंगलू की माँ की बात सुनकर मैं हँसकर बोला, "यह सब जवानी का दोष है मंगलू की माँ ! जवानी चीज ही ऐसी है कि जब वह जीवन पर छाती है तो कम लोग अपने को इसके प्रभाव से बचा पाते हैं।"

मंगलू की मा हँसदी मेरी बात सुनकर और बोली, "तुम सच कह रहे हो। जवानी आदमी की आँखें बन्द कर देती है। बुढ़ापा उसने देखा

नहीं होता और बचपन की उसे याद नहीं रहती। जवानी के नशे में अपना बचपन भी नज़रों से खिसक जाता है।

मेरे मंगलू को क्या पता कि उसका बचपन मैंने किन-किन आफ़तों को सहकर संवारा है। यह केवल एक वर्ष का था जब उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था और उसकी बहन तीन वर्ष की।

आम लोग यह जानते हैं कि मंगलू की माँ के पास न जाने कितना धन गड़ा है और इसी लालच में ननदोई जी और पिताजी ने उन्हें विष देकर मार डाला था परन्तु असलियत मुझे पता थी या वह जानते थे। बच्चों को भी कभी पता नहीं होने दी मैंने यह असलियत।

मेरे पास केवल दो हज़ार रुपये थे। जो चार हज़ार रुपये में पिता जी के घर से चुरा कर लाई थी उनमें से दो हज़ार साहूकार को देकर उन्होंने अपने खेत छुड़ा लिये थे और शेष दो हज़ार मेरे हवाले कर दिये थे।

कमाने वाला रहता तो वे दो हज़ार आज चालीस हज़ार होते। उनके मरने पर उन दो हज़ार की कीमत केवल दो हज़ार ही रह गई।

मैंने सोचा कि अगर मैंने इन्हीं में से खाना आरम्भ कर दिया तो कितने दिन चलेंगे ये। आखिर एक दिन तो वह आयेगा ही जब ये दो हज़ार रुपये खाये जायेंगे। उसके बाद फिर मुझे सोचना होगा कि अब क्या करूं मैं? इससे पहले ही क्यों न सोच लूं?"

"तब क्या सोचा तुमने?" मैंने चाय पीते-पीते ही पूछा।

मंगलू की माँ बोली, "बतलाऊंगी सब तुम्हें। न सोचती तो आज तक जी कैसे पाती? अच्छे खासे आदमियों को दुनिया नहीं जीने देती। फिर मैं तो राँडी-रुहड़ी थी अब। जिसके सिर पर कोई नहीं था। उस औरत के, जिसके सिर पर कोई नहीं रहता, सब मालिक बनने की बात सोचते हैं।"

मंगलू की माँ की बात सुनकर माताजी सहानुभूतिपूर्ण स्वर में बोलीं, "यह तो तू सच कह रही है मंगलू की माँ! जमाना सचमुच बहुत बुरा आ गया है अब। पहले कोई बेवा औरत होती थी तो लोग-बाग उसकी मदद करने की बात सोचते थे। और आज यह जमाना है कि उसे लूटने-खसोटने की बात सोचते हैं। उसकी आबरु लेने की बात सोचते हैं।"

माताजी की सहानुभूतिपूर्ण बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "बस मैं ही जानती हूं कि मैंने उनके मरने के बाद कैसे अपनी आबरू बचाई और कैसे अपने बच्चों को पाला।

ननदोई जी और पिताजी से अपना पीछा छुड़ाया तो गाँव के न जाने कितने जेठ, देवर और सगे खानदानी बन गये मेरे। एक-से-एक मीठी-मीठी बातें करता हुआ मेरे पास आया। काम कोई भी नहीं आया समय पर। लेकिन मैं मुंह की भी बुरी नहीं बनी किसी की। कौड़ी मैंने किसी को एक नहीं दी।

मैंने अपना जेवर और वह दो हज़ार रुपये एक हंडली में रखकर जमीन में गाड़ दिये और अपने सब अच्छे-अच्छे कपड़े बक्स में बन्द करके मंगलू की बहू के लिए रख दिये।

मंगलू एक वर्ष का था तब।"

मैंने मुस्कराकर कहा, "जिस मंगलू की बहू के लिए तुमने इतना बड़ा त्याग किया, उसे जब वह आई तो तुम अपना न बना सकीं।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ ऐसे खेल उठी जैसे साँप का डंक लग जाने पर साँप काटा आदमी खेलने लगता है।

वह त्योरी चढ़ाकर बोली, "मैं अपनी नहीं बना सकी उसे। वह मेरे घर में आई थी, उसे मेरा बनना चाहिए था। वह डायन मेरी नहीं बनी। लटकन की तरह मंगलू की धोती की लाँग से बँधकर शहर जाते हुए शर्म नहीं आई उसे।"

मुझे मन-ही-मन हँसी आ गई मंगलू की माँ की बात सुनकर। अपने पक्ष को वह कितना प्रबल समझ रही थी। उसकी दृष्टि में हर गलती मंगलू की बहू की ही थी।

: १० :

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी हमारी दुलारी भाभी आँखें मटकाती

हुई आ पहुँचीं। उनकी बगल में चोकर की टोकरी लगी थी और वह अपनी भैंस की सानी करके उसका दूध दुहने जा रही थीं। उनकी लड़की उनके पीछे-पीछे दूध की दुहावनी लिये आ रही थी।

मंगलू की माँ को मेरी खाट के पास पीढ़े पर बैठी देखते ही बोलीं, "आ गई मंगलू की माँ! सुबह-ही-सुबह लालाजी का दिमाग चाटने के लिए। जिसे लिपटती है उसे ऐसी लिपटती है कि बस पिंड ही नहीं छोड़ती उसका।"

दुलारी भाभी को देखकर मंगलू की माँ चुप हो गई। मुझे लगा कि वह दुलारी भाभी से कुछ घबराती सी थी।

मैं हँसकर बोला, "आओ भाभी! मंगलू की माँ अपनी दर्दभरी कहानी सुनाकर जितना मेरे दिमाग को चाटेगी उतना ही तुम अपनी स्नेह भरी बातें सुना-सुनाकर उसे ठीक कर दोगी। इसीलिए तो मैं सब सुनता जा हा हूं। मुझे पता था कि तुम अब आने ही वाली हो।"

दुलारी भाभी कमरे में से दूसरा पीढ़ा उठा लाई और मंगलू की माँ के सामने बैठकर बोलीं, "देख मंगलू की माँ! तू मंगलू और मंगलू की बहू की किसी से बुराई न किया कर। मंगलू और उसकी बहू मेरे कुछ लगते नहीं हैं। बेटा बहू तेरे ही हैं और तेरे ही रहेंगे।"

"बस रह लिये मेरे।" मंगलू की माँ तैश खाकर बोली। "तू बेकार जबान न छेता कर मेरे सामने। आई है बड़ी मेरे बेटे-बहू की हिमायतिन बनकर। मेरे बेटे-बहू को क्या तू मुझसे भी अधिक पहचानती है?"

मंगलू की माँ की बात सुनकर दुलारो भाभी खिलखिलाकर हँस पड़ीं और ज़रा लहजे के साथ मटककर बोलीं, "तू अपने बेटे-बहू को सच पूछो तो ज़रा भी नहीं पहचानती। अगर तू पहचानती उन्हें तो वे दोनों तेरे पैर पूजते। तुझे पलंग पर बिठलाकर तेरी सेवा करते।"

"सेवा करते मेरी! अरी पगली हो गई है दुलारी! तेरी नजरों में तो सब दोष मेरा ही है बस।" कहते-कहते मंगलू की माँ को क्रोध आगया। उसका चेहरा मैंने देखा कि तमतमा उठा।

वह ज़रा गम्भीर होकर बोली, "मेरा दोष इतना ही है दुलारी! कि जब मंगलू का बाप मरा था तो मैंने उनके साथ ही मंगलू का गला नहीं

घोट दिया। इसका गला घोट देती तो आज यह दिन न देखना पड़ता मुझे। जी में सबर तो रहता कि मेरा कोई है ही नहीं। आज औरतें मेरे सामने बैठकर लपालप ज़बान चलाती हुई यह तो न कह पातीं कि सब दोष मेरा ही है।" कहकर उसने एक दर्दभरी सांस ली और चुप हो गई।

मंगलू की माँ की बात सुनकर मैंने दुलारी भाभी के चेहरे की तरफ़ देखा। उस पर कोई असर नहीं हुआ मंगलू की माँ के शब्दो का। वह हँसकर मुझसे बोली, "मंगलू की माँ की बातों का मैं बुरा नहीं मानती लालाजी! इनका मेरा रिश्ता ही ऐसा है और जो बातें यह इस समय कह रही हैं ये इसकी रोज की बातें हैं। मेरे तो सच जानिये कान पक गये हैं इन्हें सुनते-सुनते।"

दुलारी भाभी की बात पर मंगलू की माँ मेरी ओर देखती हुई बोली, "तुम्हारी यह दुलारी भाभी मन की इतनी बुरी नही है जितनी ज़बान की होती जा रही है। सच बात तो यह है कि यह मंगलू की बहू के यहाँ से जाने का सारा दोष मेरे ही सिर पर मढ़ देना चाहती है।"

"तेरा तो है ही सारा दोष। बच्चों का भी कहीं कोई दोष होता है? और माँ की नज़रों से देख ज़रा, माँ के दिल से सोच ज़रा, तू कहती क्या है अपने बच्चों के लिए?" गम्भीर मुद्रा में दुलारी भाभी बोलीं।

"मैं कहने से भी गई।" आग-बगूला होकर मंगलू की माँ बोली। "मैं यहाँ पड़ी-पड़ी तड़प रही हूं उनके लिए और वे शहर में गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। बूढ़ी माँ की खबर भी न लेने वाली औलाद कल मरती हो तो आज मर जाये मेरी बला से। मेरी फूटी आँखों में तो एक आँसू भी नहीं आयेगा उस मरे मंगलू के लिए।"

दुलारी भाभी खड़ी हो गईं अपनी चोकर की टोकरी लेकर और मुझसे बोलीं, "तुम अपना दिमाग खराब न करो लालाजी इससे बातें करके। यह पगली हो गई है और हो जायेगी यदि ऐसे ही इसके लक्षण रहे। कौन बेटा-बेटी है जो इससे अपने को इस तरह कुसवाने के लिये यहाँ आयेंगे? वे आदर और प्रेम के लिए यहाँ आयें और यह गालियाँ फटकारे उन्हें।"

इतना कहकर भाभी अपने घेर की ओर चली गईं। उनकी लड़की दुहावनी लेकर उनके पीछे-पीछे हो ली।

: ११ :

मंगलू की माँ बोली, "जाने दो इसे। इसने बीच में आकर मेरी बातों का सिलसिला खराब कर दिया।"

मैं हँसकर बोला, "दुलारी भाभी भी हैं खूब।"

मंगलू की माँ बोली, "खूब तो है ही। मेरा मंगलू अगर किसी लायक होता तो क्यों मुझे औरतों की ये बातें सुननी पड़तीं। क्यों मेरा जी जलता और क्यों मेरे मुंह से गालियाँ निकलतीं उसके लिए ? क्यों मुझे सब पगली समझते ओर क्यों मुझे मेरे पास-पड़ोस की औरतें अपने पास बिठालने में भी संकोच करतीं ?"

कहती-कहती रुक गई वह।

फिर ज़रा ठहरकर बोली, "मेरा वह भी ज़माना रहा है इसी गाँव में और इसी पास-पड़ोस में कि औरतें मुझे अपने पास से उठने नहीं देती थीं। चार काम भी करा देती थीं और मेरे हर दर्द में शरीक रहती थीं।

यह मेरा वह समय था जब मैंने मंगलू की शादी नहीं की थी।"

कहती-कहती वह फिर रुककर बोली, "मैं कह रही थी तुमसे कि मंगलू एक वर्ष का था तब।"

मैं हँसकर बोला, "तो कहानी का सिलसिला अभी याद है तुम्हें। मैं तो समझ रहा था कि दुलारी भाभी की बातों ने गड़बड़ में डाल दिया तुम्हें।"

वह हँसकर बोली, "यह कहानी मेरे जीवन की कहानी है। इसके एक-एक दिन में मुझपर क्या बीता है वह सब कलेजे पर लिखा है मेरे। तुम गाँव के आदमी होते तो मैं तुम्हारे सामने अपना दिल इस तरह

खोलकर न रखती। हो चाहे तुम कस्बे के ही, लेकिन रहते बाहर हो, इसीलिए तुम्हें अपने मन की बात सुनाकर अपना मन हल्का कर रही हूं।

यहाँ के लोग बहुत बुरे हैं। ये रोकर किसी के मन की बात पूछना और हँसकर उड़ाना जानते हैं।"

मैं संजीदगी के साथ बोला, "यह बात ठीक है तुम्हारी मंगलू की माँ! ज़माने से देख रहा हूं कि सहानुभूति नाम की चीज़ कम होती जा रही है। स्वार्थ ओर मक्कारी बढ़ती जा रही है।

और रहना इसी के बीच में है।"

वह हँसकर बोली, "रहते सब इसी के बीच में हैं लेकिन कुछ गर्दन झुकाकर रहते हैं और कुछ गर्दन उभारकर, कुछ कमर मोड़कर चलते हैं और कुछ सीना तानकर।

जब तक वह जिन्दा रहे मैं सीना तानकर चली गाँव में। मेरे सिर पर बैठे थे वह। मुझे चिंता नहीं थी किसी की।

परन्तु उनके मरते ही मैं फिर अपने पुराने जीवन में लौट गई।"

मैंने पूछा, "पुराने से तुम्हारा क्या मतलब ?"

वह हँसकर बोली, "अपने उसी जीवन में जिसमें मैंने अपनी माँ के मरने से लेकर अपनी शादी तक जीवन काटा था।"

मैं बोला, "वैसा समय कैसा था यह ? उस समय तुम परवश थीं और इस समय स्वतंत्र ! तब तुमपर कोई जिम्मेदारी नहीं थी और इस समय जिम्मेदारियों से दबी हुई थीं तुम। अपना और अपने बच्चों का भार था तुम पर।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ को संतोष हुआ कि मैं इतनी गहराई से उसकी कहानी सुन रहा था। उसके जीवन के विषय में सोच-समझ रहा था।

वह मुस्कराकर बोली, "मैं साधारण व्यवहार की बात कर रही हूं इस समय। मैंने अपनी ज़बान उसी तरह बन्द करली जैसे वह उस समय रहती थी जब मैं अपनी सौतेली माँ की कैद में थी।

कोई क्या कहता था, इसकी चिंता छोड़ दी मैंने। मेरे सामने अब यही एक विचार था कि मुझे अपना आगे का जीवन कैसे चलाना है और कमर

कसली मजबूती के साथ आगे बढ़ने के लिए।"

मैं देख रहा था मंगलू की माँ के चेहरे की ओर और माताजी दूसरी खाट पर लेट गई थीं चाय पीकर।

माताजी हँसकर बोलीं, "मंगलू की माँ का किस्सा तो कई दिन भी समाप्त नहीं होगा बेटा ! मैं थक गई इसका किस्सा सुनते-सुनते लेकिन यह सुनाते-सुनाते नहीं थकी। पर सुनाती बड़े जी से है इसलिए मना भी नहीं होती इसे।"

मैं मुस्कराकर बोला, "सुनाने दीजिये। मुझे भी तो और कोई काम नहीं है। बड़ा आनंद आरहा है इस समय। किस्से का असली भाग अभी आया है। मंगलू की माँ का अपना जीवन वास्तव में यहीं से प्रारम्भ होता है। इससे पहले तो यह एक कठपुतली की तरह नाच रही थी बेचारी।

सौतेली माँ ने पहले डाट-डपट कर नचाया और फिर पति ने प्यार-दुलार कर। अब इसके स्वयं नाचने का समय आगया था। देखता हूं अब कैसा नाच नाचती है मगलू की माँ।"

मगलू की माँ हँसकर बोली, "नाचने का जमाना मेरा खत्म हो चुका था मेरे पिता के घर ही। इस घर में मैं जिस दिन से आई हूं, कभी नाची नहीं, नचाया ही है मैंने औरों को, इतना समझ लो तुम।"

मैं हँसकर बोला, "किसे-किसे नचाया तुमने मंगलू की माँ ?"

"सबको नचाया। जो भी मेरे रास्ते में आया, उसे ही नचाया।

उन्होंने मेरी एक बात नहीं मानी। मैंने मना किया था उस डायन ननद के साथ जाने को और वह चले गये। बस यही उनका वह नाच था जो उन्होंने मेरे इस घर में आने के बाद अपनी इच्छा से नाचा था" कह-कर वह ज़रा गम्भीर होगई।

मैंने फिर पूछा, "और किस-किसको नचाया तुमने ?"

मंगलू की माँ बोली, "सुना तो चुकी हूं सब कुछ। फिर सुनना चाहते हो तो सुनो, अपनी नंनद को नचाया, ननदोई को नचाया और मेरी सौतेली माँ तो पिताजी से मेरा किस्सा सुनकर अपने घर में आप ही नाच कर बैठ गई होंगी।"

तभी माताजी हँसकर बोलीं, "और ताई को क्या कम नचाया है तूने ?"

ताई का नाम आते ही मंगलू की माँ बोली, "उसे नचाती नहीं तो क्या करती? ताई मुझपर ही हाथ साफ़ करना चाहती थी।"

"वह कैसे?" मैंने पूछा।

मंगलू की माँ ने हँसकर बात टाल दी और बोली, "ताई की कोई बात नहीं बतलाऊंगी मैं तुमसे। बूढ़ी आदमन है। लालच में आकर जो कुछ कर गई वह, उसका मेरे मनमें अब गिला नहीं रहा।"

फिर ज़रा ठहरकर बोली, "अपने पास पड़ौस के जेठ, देवर, जिठानी, देवरानी और जितने भी खान्दानी बने सबको नचाया मैंने। सब मेरे पास मुझे नचाने के लिए आये लेकिन अन्त में सब ने देखा कि वे स्वयं ही लट्टू की तरह घूम रहे थे।

तुम सच जानो इस गाँव में आकर मैंने आनंद कुछ कम नहीं लिये। मंगलू के पिता न मरते तो मैं दिखा देती कि सिठानी कैसी होती हैं।" कहते-कहते मैंने देखा कि उसका चेहरा उतर गया।

मंगलू की माँ की तमन्नायें उसके पति की मृत्यु ने पामाल कर दीं। उसकी उभरती हुई जवानी और विकसित होती हुई आशाओं पर तुषारा-पात हो गया। उसकी लहलहाती हुई खेतो पर ओले पड़ गये।

लेकिन वह खड़ी रही उन ओलों के बीच में। उसकी खेती के जो दो डाँठले रह गये थे, उसने उन्हीं को सींचा और उन्हीं में अपनी लुटी हुई जवानी का स्वप्न देखा, बर्बाद हुए जीवन की खिलती हुई फुलवारी के दर्शन किये।

वर्तमान के भविष्य को देखा और जोर से हँस पड़ी।

मैंने इस बार बड़ी गम्भीरता से मंगलू की माँ की हँसी को परखा। उसमें निश्चय ही पागलपन की रमक थी।

मैं गम्भीर होकर बोला, "मंगलू की माँ! तुम ज़रा कम हँसा करो। कभी-कभी इतनी बुरी तरह हँसती हो कि उसमें पागलपन की रमक आ जाती है।"

वह बोली, "चाहती मैं भी यही हूं कि फ़जूल न हँसा करूं लेकिन करुं क्या? हँसी रुकती ही नहीं मुझसे। जाने क्यों ऐसे उठती है यह मेरे दिल से।"

मैंने बात बदलकर पूछा, "तो फिर तुमने अपने पति के मरने के बाद अपने पारिवारिक खर्चे को चलाने के लिए क्या ज़रिया अपनाया ?"

मंगलू की माँ बोली, "ज़रिया मुझे कोई खास नहीं बनाना पड़ा। वेही दो खेत जो वह छोड़ गये थे मेरे लिए काफ़ी हुए। मैंने केवल इतना ही किया कि गाँव के देवर जेठ बनन वालों से उन्ह बचाये रखा।"

मैंने हँसकर पूछा, "तो तुम्हारी अपने जेठ देवरों से क्या शुरू में ही खटपट हो गई थीं ?"

वह मुस्करा कर बोली, "खट-पट क्या ? अब तुम पूछ ही रहे हो तो लो तुम्हें बतलाये देती हूं वरना गाँव के किसी आदमी के सामने मैंने कभी आज तक इस बात की चर्चा नहीं की।"

मैने ध्यान से अपने कान मंगलू की माँ की ओर लगाकर पूछा, "किस बात की ?"

वह हँसकर बोली, "आज तो वह हँसने की ही बात रह गई है लेकिन जब मुझपर बीती थी तो मेरे जीवन और मरण का प्रश्न बनकर आई थी।"

कहती-कहती रुक गई वह। मैंने बड़े ध्यान से उसकी ओर देखा। वह धीरे-धीरे बोली, "चाँदनी रात थी, तारा कोई-कोई ही था आसमान में। मेरी लड़की खटोले पर सो रही थी और मंगलू मेरे पास लेटा दूध पी रहा था।

अभी केवल तीन महीने ही गुज़रे थे मंगलू के पिता को मरे।

मैं चाँद को देख रही थी और मेरे बदन में सच जानो जलन सी पैदा हो रही थी। पूनों का चाँद था आज और यही चाँद उस दिन मुस्कराया था जिस दिन उनसे मेरी प्रथम भेंट हुई थी।

कितना शीतल था यह उस दिन और कितनी तपन थी इसमें आज।

मैं देखती रही उसी की ओर और मैंने देखा कि उसके अन्दर से मंगलू के पिता झाँक रहे थे।

मेरे बदन की जलन धीरे-धीरे कम होती जा रही थी।

तभी मेरे कानों में उनकी आवाज़ आई। वह मुस्कराकर बोले,—

"तेरा कहना नहीं माना मंगलू की माँ इसीलिए तेरा साथ छूट गया। लेकिन घबराना नहीं तू। मंगलू जवान होगा तो तेरे सब संकट काट देगा।"

मेरी आँखें आंसुओं से भर गईं और मैंने एक वर्ष के मंगलू को अपनी छाती से कसकर चिपका लिया।

तभी मुझे दुवारी की ओर से एक परछाँई अपनी खाट की ओर आती दिखाई दी।

लेकिन मैं घबराई नहीं उसे देखकर। धीरे से उठकर खाट पर बैठ गई।

दुवारी की ओर से आने वाला कोई और नहीं था, ताई का छोटा लड़का कनकू था।

मेरे पास आकर बोला, "भाभी राम-राम!"

मैं बोली, "राम-राम भय्या! आजा बैठ जा खाट पर। तू कहाँ से आ रहा है इस समय? बड़ी देर से लौटता है घर।"

वह बोला, "घर जल्दी जाकर क्या करूं भाभी? घर में तो कोई मेरी बात पूछने वाला ही नहीं है।"

मैंने पूछा, "क्यों, हैं क्यों नहीं रे! भरे-पूरे घर में रहकर तू ऐसी बात कर रहा है। माँ, बाप, भाई, बहन, कौन नहीं है तेरा?"

वह अलमस्त होकर बोला, "इन सबका तो होना-न-होना बराबर ही है भाभी! इन्हें तो अपनी-अपनी समेटने से ही छुट्टी नहीं मिलती। ये मेरी बात क्या पूछेंगे?"

मैं देखती ही रह गई उसके मुंह को। आज जैसी बातें उसने पहले कभी नहीं की थीं। बड़ा ही सीधा लड़का समझती थी उसे मैं।"

मैंने मुस्कराकर कहा, "फिर आज तिरछी बात क्या की उसने?

बेचारा अपने दुख-दर्द की बात ही तो तुमसे कर रहा था। भाभी थीं तुम उसकी, इसीलिए तुमसे कह रहा था। इस तरह की बातें सचमुच ही माँ, बाप, भाई, बहनों के बीच में नहीं की जा सकतीं।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "तुम सचमुच ही कहानी कहने और सुनने, दोनों में बहुत निपुण हो। जो बातें मैंने कभी किसी से नहीं कीं तुम धीरे-धीरे मेरे मुंह से उन्हें भी उगलवाते जा रहे हो। तुम मेरे

जीवन की एक भी बात छिपी नहीं रहने दोगे।"

इतना कहकर मंगलू की माँ माताजी की ओर मुंह करके हाथ जोड़ती हुई बोली, "कहीं इस दुलारी की बच्ची को न मालूम हो जायें ये बातें नहीं तो यह सारे गाँव में पूर देगी।"

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "तुम निश्चिन्त रहो मंगलू की माँ! मेरे और माताजी के सामने कही गई तुम्हारी कोई बात गाँव में कानों कान भी किसी के पास तक नहीं पहुँच सकती।"

मेरी बात पर विश्वास करके मंगलू की माँ बोली, "ताई का छोटा लड़का मेरी खाट की पांयत पर बैठ गया।

तभी मैंने दुवारी की ओर से एक दूसरी परछाई अपनी ओर आती देखी तो मेरे मन का संदेह बढ़ने लगा।

मैंने चंदा की चांदनी में ध्यान से देखा तो वह ताई का बड़ा बेटा था।

मैंने उससे पूछा, "तू कहाँ से आ रहा है? क्या दोनों भय्या हो इतनी-इतनी रात तक आवारों की तरह फिरते रहते हो?"

वह बोला नहीं जरा भी। उसका छोटा भाई उसे देखते ही वहाँ से उठ कर चला गया।

उसके चले जाने पर वह बोला, "भाभी घर में मन ही नहीं लगता। इसीलिए इतनी रात तक पनवाड़ी की दुकान पर बैठा रहता हूं। जरा चौकड़ी के लड़कों में गप्पें लगा कर थोड़ा समय काट देता हूं और फिर आ कर खटिया पर पड़ जाता हूं।

अकेले आदमी की भी कुछ जिन्दगी है?"

मैंने उससे कहा, "कैसी बेहूदा बातें कर रहा है तू। ताई के इतने बड़े परिवार में रहकर तू अपने को अकेला कहता है। शर्म नहीं आती तुझे।"

मेरी बात का जरा भी बुरा नहीं माना उसने। वह उसी जगह मेरी पांयत पर बैठ गया, जहाँ उसका छोटा भाई अभी-अभी बैठा हुआ गया था।

मेरे जरा निकट को होकर बोला, "घर में लाख आदमी हैं भाभी! पर मन की बात तो मैं किसी से नहीं कर सकता। तू क्या जानती नहीं

है कि मन की बातें किससे की जाती हैं।"

उसकी यह बात सुनकर मैं ज़रा सतर्कता के साथ बोली, "मैं सब कुछ जानती हूं और तुझे भी खूब समझती हूं। ताई का ज़रा सा लिहाज़ है नहीं तो तेरी चाँद पर वह जूतियाँ बरसाती कि तेरा हुलिया ठीक हो जाता। अभी यह मत समझना कि मंगलू की माँ अकेली है यहाँ और मर्द नहीं है कोई। कहे तो अभी चूड़ियाँ पहनाकर निकालूं तुझे अपने घर से।"

कहते-कहते मंगलू की माँ की त्योरी चढ़ गई। वह हाँफ़ रही थी इस समय।

अपने को ज़रा संभालकर बोली "मैंने अपने बिस्तर की बगल से वह कुल्हाड़ी निकाली जिसे अपने मरने से दो दिन पहले ही वह एक कीकर के पेड़ को झाँगने के लिए बनवाकर लाये थे।

मैंने रोजाना अपनी दरी के नीचे खाट की पट्टी के सहारे उसे रख कर सोती थी।

कुल्हाड़ी को देखकर पसीना आ गया उसे और वह घबराकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा।

फिर गिड़गिड़ाकर बोला—"इस बार माफ़ करदे भाभी! फिर जनम भर ऐसी हरकत नहीं करुंगा।"

मैंने उसे पैर से धक्का देकर दूर हटा दिया और कड़ककर कहा "अपने उस छोटे भाई को भी समझा देना ज़रा! कल से कभी इधर आने की हिम्मत की तो खोपड़ी इसी चौक में पड़ी पायेगी।"

मेरी लात खाकर वह चोट खाये साँप की तरह फुंकारता हुआ दुबारी की ओर चला गया।

मैंने बात को उस दिन यहीं तक नहीं छोड़ा। मैं आग-बगूला हुई ताई के पास पहुँची और उसे जाकर उसके पूतों की करतूतें सुनाईं।

ताई ने बड़े ही ठंडे दिल से मेरी बात सुनी और तभी ताऊ से जाकर कहा।

ताऊ यह सुनकर शर्म से ज़मीन में गड़ गए। उन्होंने तभी अपने दोनों बेटों को बुलाया और उन्हें लेकर मेरे पास आये और अपने बेटों से बोले—"पाजी कहीं के। इस बुढ़ापे में मेरी नाक काट कर रखदी तुमने।

पकड़ो अभी अपनी भाभी के पैर और माफ़ी माँग कर कहो कि फिर कभी ज़िन्दगी में ऐसी हरकत नहीं करोगे।"

दोनों ने मेरे पैर छूकर माफ़ी माँगी और मैंने उन्हें क्षमा कर दिया।

जीवन में इतनी बड़ी घटना आई और चली गई। एक तूफ़ान सा आया और अपना धुंधलापन दिमाग में बिखेरकर खत्म हो गया।

: १२ :

गांव में इसकी जरा भी चर्चा नहीं हुई। इसकी चर्चा से मेरी और ताऊ दोनो की बदनामी होती। इसीलिए हम दोनों ही मिलकर इस विष को पी गये।

यह विष दोनो के शरीर में फैला। ताऊ के पूरे परिवार के लोगों में फैला और मैं अपने परिवार में थी ही अकेली। मंगलू और मंगलू की बहन एक और तीन वर्ष के ही थे।"

मैंने गम्भीरता पूर्वक पूछा, "तुम्हारा मतलब है कि बात उस समय दबा दी गई परन्तु मन साफ़ नहीं हुए तुम लोगों के।"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "यही तो बात थी। चोर पकड़े जाने पर साधू बन गये ताऊ ताई। वैसे चाल ताई और ताऊ की ही थी।

अपने लड़कों के चक्कर में फँसाना चाहते थे मुझे।

मैं फंसी नहीं तो अपनी आबरु बचाने के लिए उनसे माफ़ी मंगवादी लेकिन इससे उनके दिल की जलन और बढ़ गई।

मैंने खूब ताड़-ताड़ कर देखा ताई और ताऊ को। एक दम ऐसे हो गये कि मानो मंगलू की माँ को पहचानते ही नहीं थे। मुझसे मानो उनका कोई सरोकार ही नहीं था।"

मंगलू की माँ हँसदी इतना कहकर और फिर बोली, "तुमने शायद दुनिया इतनी बदलती हुई नहीं देखी होगी जितनी मैंने देखी है। और किसी स्त्री का पति मर जाने पर उसकी दुनिया कैसे बदलती है इसका

तो तुम अन्दाज़ ही नहीं लगा सकते।"

मंगलू की माँ की बात सुनकर कुछ दूर बैठी माताजी भी प्रभावित हो उठीं। मैंने देखा कि उनकी आँखों में भी आंसू की बूंदें भरी थीं। वह भारी गले से बोलीं, "तू सच कह रही है मंगलू की माँ।"

मैं दोनों की सूरतें देखकर बोला, "दोनों ही बातें हैं इसमें। यह सच है कि मैं उस परिस्थिति को उतना अनुभव नहीं कर सकता जितना वह करता है जिस पर वह बीतती है परन्तु समझता मैं भी गलत नहीं हूं। दुनिया बदलती भी है और दुनिया बदली-बदली भी नज़र आने लगती है।"

मेरी बात की सचाई को अनुभव करके मैंने देखा माताजी और मंगलू की माँ के चेहरे ज़रा खिल उठे। मंगलू की माँ बोली, "तुम सच कह रहे हो। दुनिया दिखाई भी बदली-बदली ही देने लगती है।"

मैं मुस्कराकर बोला, "तो ताई और ताऊ ने तुमसे अपना सब सम्बन्ध तोड़ लिया?"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "बिलकुल तोड़ लिया। मेरे दोनों खेतों को ताऊ के दोनों लड़के ही जोता बोया करते थे। और सच पूछो तो उन्होंने ये दोनों खेत इन्हीं दोनों के लिए ताऊ के कहने पर खरीद कर दिये थे। वरना उन्हें क्या करना था इनका?

वह क्या कभी खेती करते थे?"

मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "फिर क्या करते थे वह?"

उसने मटक कर उत्तर दिया, "दुकान थी हमारी। बाप-दादों के ज़माने की। उसी पर बैठते थे। गद्दीदारी करते थे। मलमल का कुर्ता पहनते थे ठाठ से और सोने के बटन लगाते थे उसमें।

गांव में सेठ नाम पड़ गया था उनका।"

मैंने पूछा, "फिर क्या वह दुकान बन्द करदी तुमने अपने पति के मरने के पश्चात?"

वह हँसकर बोली, "बन्द क्यों कर देती उसे? उसपर मैं खुद जमकर बैठी। उसपर न बैठती तो दो खेतों से भला मेरा क्या बनता? और वह भी तब जब ताऊ के बेटे उसमें खेती करते थे। कसम लेलो जो कभी चौथाई का भी पूरा डाला हो उन्होंने।"

मंगलू की माँ फिर जरा झुककर कर बैठ गई पीढ़े पर।

तभी हमारे घर का पूरब का दरवाज़ा खुला और मैंने देखा कि दुलारी भाभी चली आ रही थीं जरा ठसके के साथ झूमती हुई। उनके आगे आगे उनकी लड़की थी और उसके सिरपर दूध की दुहावनी रखी हुई थी।

भाभी पास आकर अपनी लड़की से बोलीं, "तू चल इसे लेकर मैं अभी आती हूँ।"

लड़की चली गई तो मैं मुस्कराकर बोला, "बैठो आज तो बहुत सी बातें करनी हैं तुमसे। मंगलू की माँ तब से तुम्हारे ही इन्तजार में बैठी है कि कब तुम आओ और कब मंगलू को लेकर इसे दस-पाँच भली-बुरी सुनाओ।"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "तुम्हारी दुलारी भाभी का दिल बहुत साफ़ है। इसीलिए यह जो कुछ भी मुझे कहती है मैं सब सुन लेती हूं।"

इसपर दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "मंगलू की माँ! रहने दे बस! इसलिए नहीं सुनती तू। तुझे इसलिए सुननी पड़ती हैं मेरी बातें कि मैं जो कुछ कहती हूँ वह सच कहती हूं।"

मैं बोला, "बैठो भाभी! दूध तो तुम निकाल ही लाईं। अब जल्दी क्या है घर जाने की?"

दुलारी भाभी बोलीं, "अभी बहुत काम पड़ा है लालाजी! तुम्हारे भाई सुबह पेली फटे के हल लेकर गये हैं। उनकी रोटी भेजनी है खेत पर। रोटी-टुकड़े से निपटकर आऊँगी।" और फिर मंगलू की माँ की ओर मुंह करके बोलीं, "तब तक तुम मंगलू की माँ से इसकी कहानी सुन लो। फिर मैं सुनाऊंगी इसकी कहानी। तब देखना दोनों में कितना अन्तर है।"

मैं हँसकर बोला, "भाभी! तुम तो मंगलू की माँ के पीछे ही पड़ गईं हो। मंगलू की बहू की भी तो बातें सुनाना कुछ। आखिर सब दोष मंगलू की माँ का ही तो नहीं हो सकता।"

इसपर दुलारी भाभी गम्भीर होकर बोलीं, "दोष सब मंगलू की माँ का ही है। किसी चीज को उतना ही खींचना चाहिए जिससे टूटने की नौबत न आये। इस पगली ने अपने बेटे और बहू को इतना खींचा, इतना

खींचा कि दोनों ही टूट गये। वरना क्यों मंगलू अपनी घर की अच्छी भली चलती दुकान को छोड़कर चार टके की नोकरी करने के लिये पर-देस जाता ?"

मंगलू की माँ दुलारी भाभी की बात सुनकर तिलमिला उठी और कड़ककर बोली, "ऐसी जली-कटी बातें न किया कर दुलारी ! तेरी ज़बान बहुत खराब होती जा रही है। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू सब दोष मुझ को ही देती है ?"

मंगलू की माँ की बात सुनकर दुलारी भाभी आंखें मटकाकर बोलीं, "और तेरे मगलू और बहू ने तो मुझे घी गुड़ में पाग रखा है। शहर में जो कुछ भी कमाते हैं सब का मनिआर्डर करके दुलारी के पास भेज देते हैं। क्यों री मंगलू की माँ ! इसीलिए तो मैं उनकी बड़ाई करती हूं" कहकर दुलारी भाभी जमकर मंगलू की माँ के सामने पीढ़े पर बैठ गईं।

मंगलू की माँ ने करुण दृष्टि से दुलारी भाभी की ओर देखा।

दुलारी भाभी बोलीं, "बुढ़िया हो गई मंगलू की माँ लेकिन बड़प्पन नहीं आया तुझ मे। सीधे शहतीर पर ही चढ़ने की कोशिश करती है। पगली कहीं की। रस्सी जल गई लेकिन बल नहीं गये। अब तेरी यह उम्र इस तनतने के काबिल नहीं है जो तू दिखाना चाहती है। और फिर अपने बच्चों पर कैसा तनतना ? उनके ऊपर कैसा मिजाज ?

भगवान् तुझे अक्ल दे तो तू अब भी अपने बुढ़ापे को सुधार सकती है।"

यह बात दुलारी भाभी ने बिला किसी द्वेष या उपहास के कही थी। उसे स्वयं दया आती थी मंगलू की माँ पर।

दुलारी भाभी की बात सुनकर मंगलू की माँ ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसती ही रही बहुत देर तक।

दुलारी भाभी बोलीं, "देखा आपने लालाजी ! यह पगली नहीं है तो और क्या है ? अभी पूरी पगली नहीं है। होश आजाता है थोड़ी-थोड़ी देर में लेकिन यदि इसने अपने को ठीक नहीं किया तो यह पगली अवश्य हो जायेगी।"

मैं बोला, "यही अनुमान मेरा भी है परन्तु अब मैं इस नतीजे पर

पहुँचा हूं कि यह अपने को ठीक नहीं कर सकती शायद। इस दशा में मंगलू और उसकी बहू को ही अपने को ठीक करना चाहिए। बीमार से बार-बार यह कहना कि तू अपने को ठीक कर, कहां का न्याय है ? क्या तुम समझती हो कि बीमार ठीक नहीं होना चाहता ?"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी चुप होगईं। उन्होंने मेरी आँखों में झाँक कर देखा। मंगलू की माँ भी कातर दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी।

तभी माताजी ने दुलारी भाभी को अपने पास बुलाकर उनसे कुछ बातें कीं और उनसे बात करके वह सीधी अपने घर चली गईं।

: १३ :

दुलारी भाभी के चले जाने पर मंगलू की माँ को ज़रा होश आया। उसने अपने को संभाला। मैंने देखा कि दुलारी भाभी की तीखी बात सुनकर उसका दिल उखड़ जाता था। उसे लगता था कि उसने मंगलू के लिये जो कुछ किया, वह सब कुछ नहीं किया। उसके बदले में मंगलू को उसे वही सज़ा देनी चाहिए थी जो वह दे रहा था।

वह हल्के-हल्के बोली, "कहने दो दुलारी को जो कुछ भी वह कहती है। भगवान् देखता है जो कुछ मैंने किया है।

यह बार-बार बीच में आकर हमारी बातों का सिलसिला खराब कर देती है। न आती तो अब तक मैंने तुम्हें काफ़ी आगे तक की बातें सुना दी होतीं।"

मैं हँसकर बोला, "चलो कोई बात नहीं। अब सुना देना तुम। हाँ तो ताऊ और ताई ने तुमसे अपना सम्बन्ध तोड़ दिया।"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "कहानी का सिलसिला तुम भी नहीं भूलते अपनी दुलारी भाभी की बातों में फँसकर।

मैं कह रही थी कि फ़स्ल बोने का समय आगया और ताऊ के दोनों

लड़कों ने मेरे खेतों की ओर जाकर झाँका तक नहीं।

मैं परेशान बैठी थी अपने दालान में। दूध पिला रही थी मंगलू को और लड़की मेरी कमर पर चढ़ रही थी।

तभी चमेली आगई।

मैंने कहा, "आजा चमेली! बैठ जा! पीढ़ा लेले कोठे में से।"

चमेली बैठ गई और उसने मेरी लड़की को गोद में उठा लिया। लड़की भी खेलने लगी उसके पास बैठकर।

मुझे चुप देखकर चमेली ने पूछा, "आज ऐसी चुप क्यों बैठी हो बुआ जी?"

मैं चमेली की ओर देखकर बोली, "चुप क्या बैठी हूं चमेली! सोच रही हूं कि अपने इन दो खेतों का क्या करूं?"

चमेली ने पूछा, "क्यों? बुवा दो उन्हें। आपके खेत तो सोना उगलते हैं बुआजी! बहुत ही अच्छे खेत हैं।"

मैंने दबे स्वर और मरे दिल से कहा, "ताऊ बुवाते थे उन्हें। इस बार उन्होंने नहीं बुवाया। वह कहते हैं कि उन्हें अपने ही काम से फ़ुर्सत नहीं मिलती।"

मेरी बात सुनकर चमेली हँसकर बोली, "ताऊ के पास और कौन सा काम है? ताऊ के दोनों लड़के आवारा होते जा रहे हैं बुआजी! गाँव की चांडाल चौकड़ी में बैठते हैं। इधर-उधर को निकलने वाली गाँव की बहू-बेटियों को बुरी तरह से घूरते हैं और गाहे-बगाहे छेड़ भी देते हैं कुछ गरीब और छोटी जाति की लड़कियों को। मैं तो डरती हूं कि कहीं किसी दिन अपने इन लड़कों की कारस्तानियों पर ताऊ की लम्बी-लम्बी मूछें नुंचने की नौबत न आजाये।"

चमेली की बात सुनकर मैंने लापरवाही से कहा, "आजाने दे चमेली! जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। ताऊ के लड़के सचमुच आवारा होते जा रहे हैं।"

इससे अधिक मैंने कुछ नहीं कहा। मेरे दिमाग में अपने खेतों को बुवाने की चिंता थी। काली-काली घटा आसमान में उठकर आती थी और मेरी छाती पर साँप सा लोटने लगता था।

मैं सोच रही थी कि अगर मेरे खेत न बुए तो साल भर के लिए खाने को अनाज कहाँ से आयेगा। मेरे दिन कैसे कटेंगे ? बच्चों को कैसे पाल सकूंगी। दुकान की रुपये-धेली की बिक्री से सब काम नहीं चल सकता।

फिर अगर ये खेत इस वर्ष यूं ही पड़े रहे तो ताऊ का दिमाग भी सातवें आसमान पर झूलने लगेगा। वह समझेगा कि मुझे झक मार कर उसकी ही खुशामद करनी होगी।"

चमेली मेरी मनस्थिति को समझ कर बोली, "तुम खेतों को बुवाने की चिंता न करो बुआजी ! वह खेत से आयगे तो मैं उनसे कहूंगी। तुम्हारे दो खेत बीजवाने कौन बड़ी बात है ?"

चमेली के इन शब्दों ने मेरी चिंता को कुछ कम किया। यूं विश्वास मुझे भी रामदीन पर कम नहीं था। यह लड़का उसी दिन से मेरे पास आता-जाता था जिस दिन से मैं इस गाँव में आई थी।

मुझे इसका चलन बहुत पसंद था। इसीलिये जब चमेली के पिता ने मुझसे इसके विषय में पूछा था तो मैंने कहा था, "हीरा लड़का है। लाख लड़के देखोगे तो भी ऐसा नेक चाल-चलन का लड़का नहीं मिलेगा।"

मैं धीरे से बोली, "चमेली ! मैं अपने परिवार के लोगों के सामने इन खेतों को बुवाने के लिए गिड़गिड़ाना नहीं चाहती। तेरे फूफा के मरने के बाद ये सब खानदानी भेड़ियों की तरह मेरी और को मुंह बाये बैठे हैं। ये चाहते हैं कि मेरी इज्जत भी ले-लें और चार टके और टूम-टाम भी जो मंगलू का बाप छोड़ गया है वह भी। गिद्धों की तरह मेरी ओर नजरें गड़ाये बैठे हैं।

पर मैंने भी यह निश्चय कर लिया है कि चाहे मजदूरी करके पेट भरना पड़े पर इन मरों को पास नहीं फटकने दूंगी।"

मेरी बात सुनकर चमेली सीना तानकर बोली, "हमारे रहते किसी की क्या मजाल है बुआजी जो आपकी ओर आँखें उठा कर भी देखले। ये जितने भी गाँव के लुच्चे-लफंगे हैं सब उनसे थर-थर काँपते हैं। गाँव में जिधर को भी वह निकल जाते हैं ये सब भीगी बिल्ली के समान छिप जाते हैं।"

चमेली की बात सुनकर मेरे दिल को और भी तसल्ली हुई। मैंने

आशा भरी दृष्टि से उसके चेहरे पर देखा।

वह मुस्करा रही थी।

: १४ :

रामदीन संध्या को मेरे पास आया और आकर चौक में पड़ी खाट पर बैठकर बोला, "बुआजी! बीज निकाल कर रख देना। कल सुबह पहले आपके खेत बुवेंगे फिर कोई और काम होगा।"

मेरा दिल गुदगुदा उठा रामदीन की बात सुनकर। मैंने पहले उसके चेहरे की ओर देखा और फिर खटिया में पड़े कुलमुलाते हुए मंगलू को देखते-देखते मेरी आँखें डबडबा आई। मैंने देखा कि मंगलू और रामदीन के चेहरे मिलकर एक हो गये थे। दोनों में कोई अंतर नहीं रहा था।

मंगलू जाग रहा था। बड़ा ही प्यारा खिलौना सा था यह। गाँव की कोई भी औरत आती थी तो इसे एक घड़ी गोद मे लिये बिना उसे चैन नहीं पड़ती थी।

रामदीन ने मंगलू को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और प्यार से उसके कोमल कपोलों को कई बार चूमा।

फिर भावुकता में भरकर बोला, "बुआजी! आप चिंता न करें किसी बात की। जब तक रामदीन है तब तक गांव में किसी की क्या मजाल जो आपकी ओर बुरी नज़र से देख भी ले। और जब तक मंगलू अपने खेतों को संभालने के काबिल नहीं होता है तबतक आपके दोनों खेत दोनों फ़सलों में बराबर बुवते रहेंगे, कटते रहेंगे और उनमें पैदा होने वाला एक-एक दाना, एक-एक तिनका आपके घर आता रहेगा।"

पीठ पीछा है रामदीन का। उसने जैसा अपने प्रण को निभाया, क्या कोई बेटा निभायेगा? और निभा रहा है आज भी। नहीं तो मंगलू और उसकी बहू ने जैसी मेरे साथ की उससे तो मैं कहीं की भी न रहती।"

कहती-कहती चुप हो गई मंगलू की माँ।

माताजी सब किस्सा सुन रही थीं। वह बोलीं, "रामदीन सच-मुच बहुत भला लड़का है और उसने मंगलू की माँ को जैसा निभाया है वैसा बेटा-बेटी भी नहीं निभा सकते।"

मैंने हँसकर पूछा, "जब तुम्हारे खेतों को रामदीन ने बो दिया तो ताऊ और उसके लड़कों की क्या दशा हुई?"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ ठहाका मारकर हँस पड़ी और हँसती ही रही काफी देर तक। फिर अपने को जरा संभालकर बोली "दशा क्या रहती मरों की। गांव में दो चार दिन यही कहते फिरे बाप-बेटे कि मैंने उनके खानदान की नाक काट दी। पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया उनकी बातों पर। मन में सोच लिया कि अगर तुम्हारे खानदान की नाक कटती है तो कट जावे लेकिन मैं तुम्हारी नाक को कायम रखने के लिए तुमसे अपनी आबरू नहीं उतरवा सकती। मैं तुम्हारी गुलाम बनकर नहीं रहूंगी।"

काफ़ी देर हो चुकी थी बातें करते-करते मंगलू की माँ से। सहन में धूप आगई थी। माताजी बोलीं, "मंगलू की माँ! अब तू जा! फिर आना संध्या को। तू तो सचमुच ही आदमी को ऐसे चिपक जाती है कि छूटने का नाम ही नहीं लेती।

अभी मुझे भी कुछ बातें करनी हैं लाला से और इसे तहसील में भी जाना है कुछ काम से।"

मंगलू की माँ खड़ी होती हुई बोली, "अच्छा चलती हूं अब चाची! संध्या को आऊंगी।"

मंगलू की माँ के ये अंतिम शब्द दुलारी भाभी ने जो अभी-अभी घर में घुसी थी सुन लिये। वह हँसकर बोलीं, "तेरी गाथा पूरी नहीं हुई अभी मंगलू की माँ! तू बड़ी परेतनी-सी लालाजी से चिपटी है।

मैं फिर कहती हूं तुझसे कि तू अपने मंगलू और उसकी बहू को यहाँ लाकर रख अपने पास या खुद ही उनके पास जाकर रहने लग। तेरी यह इधर-उधर बैठकर बेकार की बातें करने की आदत तभी छूट सकती है।"

दुलारी भाभी को देखकर मंगलू की माँ फिर ठहर गई और हँसकर बोली, "चाहती मैं भी यही हूं दुलारी ! लेकिन आदमी जो चाहता है वे सभी बातें पूरी नहीं होतीं।"

भाभी बोलीं, "दुरंगी बातें कभी पूरी नहीं होंगी मंगलू की माँ ! तू जो मंगलू को अपने पेट में बड़ा लेना चाहती है और उसकी बहू को दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक देना चाहती है यह तेरी इच्छा कभी पूरी नहीं होगी।"

इतना कहकर दुलारी भाभी आगे बढ़ती हुई मेरे पास तक चली आईं। मंगलू की माँ के कदम भी उसे घर से बाहर की ओर न ले जा सके। वह भी दुलारी भाभी के पीछे-पीछे लौट आई।

भाभी मुझ से बोलीं, "इसे अपने पैसे और ज़ेवर का घमंड था लालाजी ! इसीलिए इसने मंगलू की बहू का निरादर किया। उसने लाख इसकी सेवा की लेकिन इसपर उसका कोई असर नहीं हुआ। इसके जी में वही आग सुलगती रही कि उसके बाप ने क्यों अपनी दूसरी शादी करली और क्यों नहीं उसके घर का सारा धन इसके पास आगया ?

मैं पूछती हूं कि अगर मंगलू की बहू के बाप का धन मंगलू की बहू को मिल जाता तो उस बेचारी को क्या बुरा लगता था वह ? वह क्या उठा कर उसे बाहर फेंक आती ? अब नहीं मिला तो वह किसके घर में डाका डाल कर धन लाये ?"

मंगलू की माँ मंजीदगी के साथ बोली, "तो मैं डाका डालने को कहती हूं उस डायन से ?"

"और नहीं तो क्या कहती है तू ?" कड़ककर भाभी ने कहा। "क्यों तू उसे उमी निगाह से नहीं देखती जिस निगाह से अपने मंगलू को देखती है। मंगलू को आज जैसे तू अपना सहारा समझती है वैसे ही उसका भी तो वही सहारा है। तेरा धन और तेरा ज़ेवर तेरे सहारे बन सकते हैं, उस बेचारी के नहीं।"

मंगलू की माँ को हँसी आगई दुलारी भाभी की बात सुनकर और वह लापरवाही से बोली, "दुलारी ! तू बहू का दिल लेकर मंगलू की बहू को देख रही है। जब तू सास बनेगी और तेरे बेटे की बहू इस तरह

तेरे बेटे को तुझसे छीनकर शहर को ले उड़ेगी तब तुझे मेरी दशा का पता चलेगा।"

दुलारी भाभी बोलीं, "मेरा बेटा और मेरी बहू कभी ऐसा नहीं करेंगे मंगलू की माँ ! मैं अपने बेटे से ज्यादा अपनी बहू को प्यार करूंगी। दूसरे की बेटी अपने घर में लाकर उसे अपनी बेटी न समझना, यह मुझसे कभी नहीं होगा।"

भाभी फिर सीना उभारकर बोलीं, "तू अपने को सास कहती है ? तू सास नहीं है। तुझे सास देखनी है तो मेरी माजी को देख जरा जाकर। जिस दिन से मैं इस घर में आई हूं, भगवान् जाने इतनी सुखी हूं कि क्या कोई गाँव में होगी ?

मेरे बाप ने तो कभी कोई न्योली नहीं उलटी मेरी माजी के सामने।"

दुलारी भाभी की यह बात सुनकर मंगलू की माँ की आँखों में आँसू भर आये। वह बोली, "दुलारी ! तेरे जैसी बहू मुझे मिलती तो मैं भी उसे प्यार करके दिखला देती।"

मंगलू की माँ की बात सुनकर दुलारी जोर से खिलखिला कर हँस पड़ी और फिर स्नेह भरे स्वर में बोली, "मुझमें कौन से लाल लगे हैं मंगलू की माँ ! तेरे मंगलू की बहू मुझ से किस बात मे कम है ? थोड़ा बहुत पढ़ी-लिखी भी है, सीना-पिरोना भी जानती है, घर को संभालना जानती है, मीठा बोलना जानती है। क्या नहीं है उसमें जो मुझमें तुझे दिखाई दे रहा है ? दूर के ढोल हमेशा ही सुहावने लगा करते हैं।"

"जो नहीं है वह तू नहीं जानती दुलारी ! वह मैं जानती हूं।" मंगलू की माँ गम्भीरतापूर्वक बोली।

दुलारी भाभी मंगलू की माँ की गम्भीरता को देखकर बोलीं, "मंगलू की माँ ! जो नहीं है उसमें वह ऐसी बात नहीं है कि कभी था ही नहीं ? उसे तेरे दुर्व्यवहार ने नष्ट कर दिया। प्यार और द्वेष हर आदमी में होता है। तू उसे प्यार करती तो उसके दिल में तेरे प्रति प्यार बढ़ता, तूने उससे द्वेष रखा तो उसके दिल में द्वेष भी बढ़ गया।

वह तो अपने सब सम्बन्धियों से नाता तोड़ कर आई थी तेरे घर में।

तेरा प्यार यहाँ आकर उसे मिलता तो तेरे पैर चूमती वह।"

"अब पैर चूमने वाला ज़माना नहीं रहा है दुलारी!" लम्बा दर्द भरा साँस खींचकर मंगलू की माँ बोली। "दुनिया बहुत बदल गई है। आजकल की बहुएँ बहुएँ नहीं, दादी बनकर आती हैं ससुराल में।"

मंगलू की माँ की बात सुनकर दुलारी भाभी के तन-बदन में आग लग गई। वह बहुओं की बुराई सहन नहीं कर सकती थी। फिर भी अपने को सँभालकर बोली, "तेरा कसूर नहीं है मंगलू की माँ! यह सब तेरी समझ का दोष है। तेरी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ है और तू अपनी अक्ल के सामने और किसी की अक्ल को कुछ समझती ही नहीं।

दूसरों को दोष देना बड़ा आसान है। अपने ऊपर किसी की नज़र नहीं जाती। तेरी नज़र में सब दोष बहुओं के ही हैं और सास सब दूध में धुली हुई होती हैं। तू अपने को भी दूध की धुली ही समझती होगी!"

मंगलू की माँ बोली, "जब मैं बहुओं के लिए कुछ कहती हूं तो देख कैसी आग लगती है तेरे जी में दुलारी! सास के जी की बात सास ही जान सकती है।" कहकर वह इस तरह हँसदी कि मानो वह दुलारी भाभी को अभी ऐसी नातजुरबेकार और कम उम्र औरत समझ रही थी कि जिसने अभी दुनिया देखी नहीं है।

दुलारी भाभी मुस्कराकर मुझसे बोलीं, "सुना तुमने लालाजी! मंगलू की माँ के दिमाग में जो बातें सही हो चुकी हैं वे सब समझ लीजिये कि बस पत्थर पर लकीरें पड़ गई हैं। पत्थर टूट सकता है परन्तु वे लकीरें साफ़ नहीं हो सकतीं।"

"वास्तव में बहुत गहरी खुद गई हैं वे लकीरें।" मैंने कहा।

"खुद नहीं गई हैं, अभी और खुदती जा रही हैं।"

"अब और क्या खुदेंगी मंगलू की माँ! एक दिन पत्थर टूट जायेगा और ये लकीरें ज्यों की त्यों पड़ी रह जायेंगी। बेकार खोदे जा रही है तू इन्हें। गढ़े को भरने से वह भरता है। समतल और साफ़ ज़मीन बनती है और खोदते रहने से गहराई बढ़ती ही जाती है। उसमें गंदगी इकट्ठी होती जाती है और उस गंदगी से दिमाग भी बराबर सड़ता ही जाता है।

मेरी राय में अब सड़ गया है मंगलू की माँ का दिमाग। मैं

तो इसे समझा-समझा कर हार गई। अब देखें तुम क्या दवा बतलाते हो इसकी बीमारी की ?"

मैं मुस्कराकर बोला, "तुमने तो डाक्टरी पास की है भाभी ! जब तुम्हारी डाक्टरी ही यहाँ फेल होगई तो मैं भला क्या दवा दे सकता हूं इसे ?"

"तुम दे सकते हो।" गम्भीरता पूर्वक मंगलू की माँ बोली। "तुम दिल्ली में रहते हो और मंगलू भी दिल्ली में ही है। किसी दिन उसे बुलाकर तुम उसे समझा सकते हो। उसकी माँ की दर्दभरी आवाज उसके कानों तक पहुँचा सकते हो।"

"यह मैं अवश्य करूँगा मँगलू की माँ ! तू न कहती, मैं तब भी करता।" मैंने उसे तसल्ली देते हुए कहा।

"बहुत देर हो गई भाभी ! आज मंगलू की माँ की बातें सुनते-सुनते। दिलचस्प खूब हैं इसकी बातें। बेचारी ने जिन्दगी में आराम कम ही देखा है।" मैंने दुलारी भाभी की ओर मुंह करके खड़ा होते हुए कहा।

दुलारी भाभी मेरे कथन से सहमत नहीं थीं। वह बोलीं, "आपको पता नहीं है लालाजी ! मंगलू की माँ ने बड़ी ऐश की है अपने जवानी पहरे में। निर्द्वन्द हथनी की तरह रही हैं यह इस गांव में। जितनी मस्ती की इसने छानी है वैसी तो किसी औरत को नसीब भी नहीं हो सकती।"

दुलारी भाभी की यह बात सुनकर मंगलू की माँ अकड़कर बोली, "लेकिन किसके दम पर ?"

"अपने दम पर।" दुलारी भाभी निष्कपट भाव से बोलीं। "इसमें कोई शक नहीं लालाजी ! ऐश जो कुछ भी इसने की है वह सब अपने ही दम पर की है। बेचारी शादी के चार वर्ष बाद ही बेवा हो गई थी।"

दुलारी भाभी की यह सच्ची बात सुनकर मंगलू की माँ जरा नर्म पड़ गई। अपने पराक्रमों की गाथा जो वह इस समय बयान करना चाहती थी वह उसके हलक में ही अटक कर रह गई।

मैं हँसकर मगलू की माँ की ओर देखता हुआ बोला, "देखा तुमने मँगलू की माँ ! दुलारी भाभी के मन में द्वेष नहीं है जरा भी तुम्हारे प्रति।

तुम्हारी बड़ाई की सब बातों की यह मुक्त कंठ से सराहना करती हैं ।"

मगलू की माँ बोली, "इसीलिए तो मैं इसकी कड़वी-से-कड़वी बातों को भी शर्बत के घूंट की तरह पी जाती हूँ। जितनी बातें यह कह लेती है मुझे उतनी गाँव में क्या किसी दूसरे की सुन सकती हूँ ?"

इसपर दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "इसमें भी कोई शक नहीं है लालाजी ! मगलू की माँ ने सुनना नहीं सीखा है किसी की बात। और मैं भी जो इसे सब कुछ कह लेती हूं वह केवल इसीलिए कि यह सुन लेती है मेरी। वरना मुझे क्या पड़ी है किसी की आग में अपने को जलाने को ? यह सुन लेती है मेरी बात, इसीलिए मुझे दर्द होता है इसको उजड़ता घर देखकर, इसका बिगड़ता बुढ़ापा देखकर। इसीलिए कभी-कभी मुझे गुस्सा आजाता है और मैं इसे कहनी-अनकहनी बातें कह बैठती हूं।"

मैं खड़ा हो गया था अपनी खाट से। भाभी की बात सुनकर मेरा हृदय गद्-गद् हो उठा था। जी चाहता था कि आज दिन भर उनसे बातें करता रहूं परन्तु मुझे देर हो रही थी अब कचहरी जाने के लिए।

मैं बोला, "अच्छा भाभी ! अब संध्या को होंगी और बातें। मुझे यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि मंगलू की माँ भी तुम्हें पहचानती है। वह जानती है कि तुम उसकी दिल से शुभचिंतक हो।"

मंगलू की माँ और दुलारी भाभी चली गईं।

: १५ :

माताजी हँसकर बोलीं, "बड़ी झाड़ है यह मंगलू की माँ ! मेरा दिमाग बड़ा चाटती है यह। यह जानती है कि मैं किसी की बातें किसी से नहीं कहती इसलिए यह जब कभी बहुत परेशान होती है तो अपना दुखड़ा रोने के लिए मेरे पास चली आती है।"

मैं हँसकर बोला, "यह पागल हो जायेगी माताजी ! इसकी दशा ठीक नहीं है। इसके सोचने की दिशा गलत है। दुलारी भाभी इसे जो

करने को कहती है वह समझने के लिए यह बेकार हो चुकी है।

इसका इलाज इस समय मंगलू और मंगलू की बहू के ही हाथों में है। मंगलू से भी अधिक मंगलू की बहू के हाथों में है। मंगलू कमज़ोर आदमी मालूम देता है और मंगलू की बहू के दिल में द्वेष की वह ज्वाला धधक रही है जिसे इसने जलाया है। मंगलू की माँ जितनी होशियार है उतनी ही मूर्ख भी है।"

माताजी हँसदीं मेरी बात सुनकर और फिर बोलीं, "होगा कुछ! तूने क्यों अपना दिमाग खराब किया इन बातों में। अपने काम पर जा तू। ये किस्से तो यहाँ घर-घर में भरे पड़े हैं। सास बहुओं को रोती हैं और बहुएँ अपनी सासुओं को। इनके झंझटों में फंसा जाय तो आदमी किसी काम का ही नहीं रहे।"

माताजी की बात सुनकर मैं बोला, "यह बात इस तरह टाल देने की नहीं है माताजी! सास और बहू के सम्बन्ध जब तक ठीक नहीं होंगे तब तक गृहस्थी में आनंद और शांति नहीं आ सकती। हमारे परिवारों में यह समस्या इतनी जटिल है कि इसने अनेक घरों की सुख तथा शांति को नष्ट किया हुआ है।"

मेरी बात का कोई जवाब न देकर माताजी ने पूछा, "क्या बज गया अब?"

मैं बोला, "आप चिंता न करें बजने की। मुझे ध्यान है अपने समय का। मैं ठीक समय पर तहसील में पहुंच जाऊंगा। सिर्फ़ एक नकल ही तो लेनी है मुखत्यार साहब से। मुझे और कोई काम नहीं है।"

कपड़े पहन कर मैं घर से बाहर निकला और चबूतरे पर खड़े होकर देखा तो करीम खाँ रिक्शा लिये आ रहा था।

मुझे देखकर रिक्शा रोक दी उसने। बोला, "शहर चलोगे क्या बाबूजी!"

मैंने कहा, "चलना तो है करीम खाँ! लेकिन तुमने रिक्शा चलानी कब से शुरू कर दी? क्या खेती में गुजारा नहीं हुआ तुम्हारा?"

करीम खाँ हँसकर बोला, "आओ बैठ जाओ। रास्ते में सब बतला दूंगा।"

मैं चबूतरे से उतर कर रिक्शा में जा बैठा और वहीं से माताजी को नमस्ते करके बोला, "संध्या के बाद पाँच बजे तक लौट आऊंगा।"

रिक्शा चलदी और माताजी खड़ी-खड़ी देखती रहीं दरवाज़े पर।

जब रिक्शा गाँव से बाहर निकलकर कच्ची सड़क को पार करके पक्की सड़क पर आई तो करीम खाँ को ज़रा साँस आई। बड़ी हिम्मत से वह रिक्शा को यहाँ तक घसीट कर लाया था।

अड्डे पर आकर उसने रिक्शा रोकी और माथे का पसीना पोंछा। एक बीड़ी का बंडल खरीदा, बीड़ी सुलगाई और सीना फुलाकर चार पाँच कश खींचे।

रिक्शा के तीनों पहियों को दबाकर देखा कि उनमें काफ़ी हवा भी है या नहीं। तीनों पहियों में काफ़ी हवा थी।

फिर उभर कर रिक्शा का हैंडिल पकड़ कर गद्दी पर बैठ गया। धीरे-धीरे पेडिल पर ज़ोर दिया, रिक्शा चलने लगी।

पक्की सड़क पर रिक्शा चलाने में ज़ोर नहीं पड़ रहा था उसपर। वह स्वयं ही बोला, "खेती छूट गई बाबूजी!"

मैंने पूछा, "कैसे छुट गई ?"

वह हँस दिया मेरी बात सुनकर और फिर ज़रा शरमाता सा बोला, "एक औरत के चक्कर में पड़ गया था बाबूजी उसी ने मेरा सब चौपट कर दिया।"

मैंने मुस्कराकर पूछा, "कहाँ मिल गई थी वह तुझे ?"

"मिल क्या गई थी बाबूजी! होनी ने धक्का दिया था मेरी जो मैंने उसपर यकीन कर लिया।" वह दुखी मन से बोला।

मैंने पूछा, "फिर भी मिली तो होगी ही कहीं ?"

वह बोला, "पैंठ में आई थी एक दिन। बर्तन बेच रही थी मिट्टी के। एक बड़ा ही खबूसूरत मिट्टी का हुक्का लाई थी उस दिन।

मैंने उसके दाम पूछे तो वह हँसकर बोली, "बस रहने दे। तू क्या खरीदेगा इसे। लखनऊ की पेचवानी जैसा यह हुक्का बनाया है अब्बा ने। कमाल किया है इसे बनाने में। कोई शौकीन ही इसके पैसे दे सकता है।"

"मुझे लग गई उसकी यह बात।"

मैं सुनकर ज़रा करीम खाँ को उकसाता हुआ बोला, "लगने की तो बात ही कह दी उसने करीम खाँ के सामने। उसे पता नहीं होगा कि करीम खाँ दिल का कितना शौकीन है।"

मेरी बात सुनकर करीम खाँ के चेहरे पर रौनक आगई। वह ज़रा उभर कर बोला, "उसने समझा था कि शायद मेरे पास पैसे नहीं होंगे लेकिन उस दिन मेरी जेब में दस रुपये का नोट था।

मैंने नोट जेब से निकाल कर उसको दिखाते हुए कहा, "यह देखा है तूने! बता क्या अब भी करीम खाँ इसे नहीं खरीद सकता?

इसपर वह ऐसी कटीली हँसी से हँसी बाबूजी कि मेरा मन मचल गया। जाने कैसा जादू सा कर दिया उसने कि मुझे अपनी खबर ही नहीं रही।"

वह बोली, "तो लोगे तुम यह हुक्का। एक ही है मेरे पास और इसे मैं एक रुपये से कम में नहीं बेचूंगी।"

मैं बोला, "एक नहीं सवा दूंगा तुझे। तू भी क्या याद रखेगी कि कोई नवाबज़ादा मिला था तुझे गाँव की पैंठ में।

इसपर वह अकड़कर बोली, "नहीं जी! सवा नहीं लूंगी मैं। पूरा एक रुपया लूंगी।"

मैं हँसकर बोला, "भली मानस! सवा तो एक रुपये से ज्यादा होता है।"

वह बोली, "होता है तो होने दे। मुझसे अब्बा ने एक रुपया लेने को कहा था। वही लूंगी मैं। ज्यादा क्यों लूं तुझसे?"

उसने एक रुपया ही लिया लेकिन मैंने उसी दिन साँझ को यह महसूस किया कि वह मेरा कुछ चुरा कर ले गई।"

मैंने पूछा, "क्या?"

वह लजाकर बोला, "वह कहने की बात नहीं है बाबूजी! मेरा मन जाने कैसा हो गया रात को। मन में आया कि उसे एक बार फिर देख कर आऊं। लेकिन मैं गया नहीं उस रात।

दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह उठा और उठकर खेत पर जाने के लिए

बैलों के नाड़ी साँटे संभाले तो क्या देखता हूं वह इठलाती और बलखाती हुई चली आ रही है सामने से।

मैं रुक गया उसे देखकर।

वह भी सामने आकर रुक गई और बोली, "कल हुक्का तो ले लिया तूने लेकिन चिलम नहीं ली उसकी। मैं दोपहर बाद घर पहुंची तो अब्बा ने पूछा, "बिक गया वह हुक्का।"

मैंने कहा, "हाँ अब्बा बिक गया और उतने ही पैसे में बिक गया जितने में आपने कहा था।'

उन्होंने पूछा, 'और वह चिलम ?'

मैं बोली, 'चिलम तो नहीं बिकी अब्बा !'

इसपर वह गुस्से में भरकर बोले, 'तो फिर क्यों बेचा तूने वह हुक्का ? उसकी चिलम कौन लेगा अब ?'

सच कहती हूं बड़ी डाट पड़ी मुझ पर।

मैंने ठंडे दिल से कहा, "तुम फ़िक्र न करो अब्बा ! जिसने हुक्का लिया है वही चिलम भी ले लेगा। मैं सुबह जाकर दे आऊंगी। चली तो मैं अभी जाती लेकिन थक गई हूं अब ! मरी पैंठ में भी बैठे-बैठे थकान हो जाती है।"

उसकी बात सुनकर मैं नाड़ी सांटे खाट पर रख कर उसी पर खुद भी बैठ गया और उसके चेहरे की तरफ़ ताकने लगा। अपनी कसम बाबूजी बड़ा हुसन था उसके चेहरे पर।"

मैं रस ले रहा था करीम खाँ की बातों में। मैंने पूछा, "कैसा हुस्न था करीम खाँ ?"

वह जरा लजाकर सकुचा गया मेरी बात सुनकर लेकिन रुक नहीं सका फिर भी उसके हुस्न का बयान करने से। मुझे लगा कि मानो वह साक्षात देख रहा था उसे।

वह बोला, "गजब का हुसन था बाबूजी ! क्या कहूं उसकी जवानी को ! कपड़े-लत्ते फटे-टूटे ही थे लेकिन जोवन बिखरा पड़ रहा था। ऐसी मस्ती थी उसकी चाल में कि मेरा मन ललचा गया उसे देखकर।"

मैंने पूछा, "हाँ तो तुमने फिर चिलम भी खरीदी उसकी या नहीं ?"

वह हँसकर बोला, "वह चिलम का खरीदना ही तो बस गजब हो गया बाबूजी! मुझसे नाँ नहीं हुई और मैंने छै आने देकर वह चिलम खरीद ली।

दूसरे दिन उसके अब्बा जान आ पहुंचे मेरे पास।

मैंने खातिरतवाजै की उनकी और उन्हीं से खरीदा हुआ वह हुक्का ताजा करके भरा उन्हें पिलाने के लिए।

फिर वह बोले,—'भाई करीम खाँ! लड़की सयानी हो गई। मेरे बाद इसका और कोई है भी नही। इसका बाप तो इसे पाँच साल की ही छोड़ कर मर गया था। माँ भी उसके दो साल बाद गुजर गई।

अब मैं ही बचा हूं। कोई अच्छा लड़का बतलादो तो निकाह पढ़ा दूं इसका।'

उनकी बात सुनकर मैंने गर्दन नीची करली।

वह फिर बोले,—'शरमाने की जरूरत नहीं है बेटा! तेरे घर में औरत न हो तो मैं तेरे साथ ही निकाह पढ़ा सकता हूं।'

मैं राजी हो गया।

वह बोले, 'बेटा मेरे पास पैसा-धेला नहीं है एक भी। और पाँच सौ रुपये मुझे किसी के देने हैं। इसका इन्तजाम करना होगा तुझे।'

मैं इसके लिए भी राजी हो गया।

अपने खेत पर मैंने सात सौ रुपये कर्ज ले लिये और उनमें से पाँच सौ रुपये उस लड़की के अब्बाजान को दे दिये। बाकी बचे दो सौ में से डेढ़ सौ के उसे कपड़े-लत्ते बनवा दिये और पचास रुपये शादी में खर्च हो गये।"

मैं हँसकर बोला, "यूं सात सौ के सात सौ रुपये तुमने बराबर कर दिये और तुम्हारा खेत तुम्हारे हाथ से निकल गया।"

"तभी तो यह रिक्शा चलाने का काम करना पड़ा। पहले आदमी था अब जानवर हो गया।" भारी मन से उसने कहा।

मैं बोला, "कोई बात नहीं। शादी तो हो गई।"

"हाँ शादी हो गई बाबूजी!" लम्बा साँस खींचकर वह बोला। "शादी क्या बरबादी हो गई मेरी। कितने प्यार से मैं उसे अपने घर

में लाया ? सच जानना बाबूजी ज़िन्दगी भर मेहनत करता और उसे खुश रखता। पर दगा दे गई मुझे।

जिस दिन से वह गई है मुझे लगता है कि दगा-ही-दगा है इस दुनिया में।"

बड़े ही भारी मन से कही करीम खाँ ने यह बात। मैंने पूछा, "तो क्या तेरा ही कोई पास-पड़ौसी उड़ा कर ले गया उसे ?"

करीम खाँ बोला, "नहीं बाबूजी ! वह औरत ही बदकार निकली और उसका वह अब्बा, अब्बा-ब्बा नहीं था उसका।

वे दोनों मिलकर यही पेशा करते हैं।"

"कैसा पेशा ?" मैंने पूछा।

"यही शादियाँ करने का बाबूजी ! मैंने सुना है कि इसी तरह की तीस-चालीस शादियाँ कर चुकी है वह।" करीम खाँ बोला।

मैंने आश्चर्य से कहा, 'तीस चालीस !"

वह बोला, "इससे भी और ज्यादा हो की होंगी उसने। बड़ी ही चालाक औरत निकली। और बाबूजी कमाल उसमें यह था कि जिस इलाके में वह यह काम करती थी उस इलाके की पुलिस से वह पहले ताल-मेल लगा लेती थी।"

"इसका मतलब ?" मैंने पूछा।

"इसका मतलब यह है बाबूजी कि जब मैं उसके भाग जाने की रपट लिखाने थाने में गया तो दीवानजी मुस्कराये मेरी बात सुनकर और कांस्टेबिल तो सब खिलखिलाकर हँस पड़े।

उल्टा डाँटने लगे मुझे। बोले, "मियाँ पचास साल की उम्र में शादी करते शर्म नहीं आई तुम्हें। तुम्हारे साथ वह बीस वर्ष की छोकरी रहती ?"

मुझे शर्म आने लगी अपनी बेवकूफ़ी पर।

मैं चला आया थाने से और कोई रपट नहीं लिखाई मैंने।

जब मैं थाने से चला तो दीवानजी और सब कांस्टेबिल एक बार फिर खिलखिलाकर हँस पड़े।

मैंने मन में जान लिया कि ये सब मिले हैं उस लुच्ची से। उसके

इस पेशे में इनको भी कुछ दाल-दलिया होता होगा।"

मैंने पूछा, "तो अब रिक्शा के काम में अच्छे पैसे बन जाते हैं ?"

करीम खाँ मन मार कर बोला, "पैसे तो पेट भरने लायक मिल ही जाते हैं बाबूजी ! पर रात को जब खाट पर लेटता हूं तो बदन चूरा-चूरा हो जाता है।"

मैंने पूछा, "तेरा एक लड़का भी तो था रहीम !"

करीम खाँ दुखी होकर बोला, "हाँ बाबूजी !"

मैंने पूछा, "वह कहाँ है ?"

करीम खाँ बोला, लेकिन बोला नहीं गया उससे। फिर भी जरा देर बाद उसने कहा, "वह कहीं चला गया है बाबूजी ! उसी लुच्ची के चक्कर में आकर मैंने अपना बेटा भी अपने हाथों से खो दिया। अपने बुढ़ापे का सहारा अपने से हमेशा के लिए जुदा कर दिया।"

मैंने पूछा, "यह क्यों ?"

"यह इसलिए बाबूजी ! कि रहीम नहीं चाहता था कि उससे मेरी शादी हो।

जब से गया है लौटा ही नहीं। रोज राह देखता हूं कि मेरे दिल का टुकड़ा लौट आये लेकिन वह नहीं आता।

उस वक्त उसका कहना मान लेता तो क्यों यह रिक्शा खींचनी पड़ती? अपनी एक हल की खेती ठाठ की चल रही थी। मैं और रहीम, दोनों मजे से अपनी गुज़र-बसर कर रहे थे।

सब पर पानी फेर कर चली गई वह लुच्ची।"

कितना दर्द था करीम खाँ की बातों में। मैंने अपने को उसकी परिस्थिति में डाल कर उसके दर्द का अनुभव किया और लम्बा साँस खींच कर बोला, "करीम खाँ, सब्र करो अब। इस बुढ़ापे में कहीं एक और शादी न कर बैठना। वरना फिर कब्र में पैर लटकाने के अलावा और कुछ करना बाकी न रहेगा।"

करीम खाँ बोला, "आप सच कहते हैं बाबूजी ! उसने मुझे जिन्दा ही मार दिया।"

करीम खाँ की बातें सुनते-सुनते ही शहर आगया। रिक्शा उसने

रिक्शा-स्टैंड पर ले जाकर खड़ी करदी और मैंने आठ आने के पैसे जेब से निकाल कर उसके हाथ पर रख दिये।

फिर उसने पूछा, "क्या वापस भी जायेंगे अभी आप गाँव को ?"

मैंने कहा, "जाऊंगा तो, लेकिन थोड़ा ठहर कर। अभी तहसील में कुछ काम है।"

वह बोला, "मैं इन्तज़ार करूंगा आपका। आज आपको ही लेकर वापस भी जाऊंगा।"

मैं मुस्कराकर बोला, "क्यों, क्या अभी कुछ और बातें सुनाने को रह गई हैं उस लुच्ची की ?"

करीम खाँ हँसकर बोला, "अभी तो आधी ही सुनी हैं आपने। आधी तो बाकी ही हैं।"

मैं मुस्कराकर बोला, "अच्छा ! अभी आता हूं मैं। अधिक से अधिक एक घंटे का काम है।"

: १६ :

मैंने तहसील में पहुँच कर मुकदमे की अपील के विषय में अपने मुख-त्यार साहब से पूछताछ की और ज़रूरी कागज़ लिये।

इस सब में मुझे अधिक समय नहीं लगा।

मैं स्टैंड पर आया तो करीम खाँ बैठा था अपनी रिक्शा की सीट पर और बीड़ी का धुंआ उड़ रहा था उसके मुंह से। एक बीड़ा पान का भी चबाया हुआ था मुरादाबादी तम्बाकू और मोहनी डलवाकर।

मुझे देखते ही वह खड़ा हो गया रिक्शा से। नीचे उतरकर बोला, "होगया काम बाबूजी !"

"हो गया।" मैंने कहा, "चलो चलें अब।"

वह हँसकर बोला, "बाबूजी ज़रा ठहर जाओ। मैं आपको अभी दिखाता हूं उस लुच्ची को। अभी-अभी गई है इधर को और कह गई है

कि वह अभी आती है लौटकर।"

मैंने बड़े ही आश्चर्य के साथ करीम खाँ की यह बात सुनी। कुछ समझ में न आया कि आखिर यह गोलमाल क्या है।

करीम खाँ दूर सड़क पर आंख का संकेत करके बोला, "वह आ रही है बाबूजी !"

थोड़ी ही देर में एक औरत वहाँ आकर खड़ी होगई। खूब संवारा हुआ था उसने अपने को। उम्र चौबीस-पच्चीस से कम नहीं थी लेकिन घोषित वह अपने को बीस वर्ष की ही करती थी। ये बीस वर्ष उसके कई वर्ष से यों ही चल रहे थे। हर साल आता था और चला जाता था परन्तु उसका बीसवाँ वर्ष ज्यों-का-त्यों बना रहता था।

कभी न बदलने वाला सौंदर्य समझती थी अपने में। गालों के रोंए उड़ चुके थे और वे मसले-मसले से लगते थे। बदन ढलान की दिशा पर था। आँखों में मासूमी की जगह कुछ-कुछ मक्कारी ने लेली थी।

वह मुस्कराती थी तो मालूम देता था कि मजाक बना रही है किसी का।

उसने मुझसे पूछा, "आपको पहले कभी नहीं देखा मैंने करीम खाँ के गाँव में।"

मैं मुस्कराकर बोला, "जरूर देखा होगा। आज इतना काजर लगा लिया है तुमने अपनी आंखों में कि सामने खड़े और कई बार के देखे आदमी को भी नहीं पहचानतीं।"

वह असमंजस में पड़ गई मेरी बात सुनकर और करीम खाँ की भी कुछ समझ में न आया।

मैं मुस्कराकर बोला, "तुम वही तो हो जो हमारे गाँव में एक दिन पैंठ में मिट्टी के बर्तन बेचने गई थीं।"

उस स्त्री ने मेरी यह बात सुनकर तीखी नजर से मेरे चेहरे पर अपनी आंखें गड़ाईं। परन्तु कुछ हासिल न हो सका उसे। पहचानने में असमर्थ रही वह। और पहचानती भी वेचारी कैसे जब उसने मुझे पहले कभी देखा ही नहीं था।

मैं मुस्कराकर बोला, "अच्छा यह बतलाओ कि कितने रूप भरना जानती हो तुम ?"

मेरी बात सुनकर वह मुस्कराकर बोली, "रूप भरने की क्या कमी है। जैसा कोई रूप भरवाये मैं तो वैसा ही भरने को तैयार रहती हूं। आप चाहें तो आप भरवा कर देख लें।"

मैंने गम्भीरता पूर्वक उससे पूछा, "इसका मतलब है कि ये रूप तुम अपनी खुशी से नहीं भरतीं। तो कोन भरवाता है तुमसे ?"

उसने निर्भीकता पूर्वक कहा, "बाबा भरवाते हैं। कहते हैं बेटी हमारा यही पेशा है।"

मैंने पूछा, "और अब्बा क्या करते हैं तुम्हारे ?"

वह बोली, "करते क्या है ? अब तो कुछ करना ही बसका नहीं रहा उनके। शराब पीते हैं और धुत पड़े रहते हैं। उनकी शराब का इन्तजाम करने के लिये ही मुझे यह सब कुछ करना पड़ता है।"

मैंने कहा, "और यदि तुम न करो तो ?"

वह औरत काँप उठी मेरी यह बात सुनकर। वह डरकर बोली, "मैं ना कैसे कर सकती हूं ? उनकी बदौलत मैं जिन्दा हूँ। उनके इस बुढ़ापे में अगर मैं ही ना करदूं तो उनके लिए हाँ करने वाला कौन है ?"

मैं दंग रह गया उस औरत की बात सुनकर।

करीमखाँ के बतलाये किस्से को सुनकर जो घृणा मेरे मन में उसके प्रति पैदा हुई थी, उसका प्रभाव धीरे-धीरे कम पड़ने लगा।

मैंने बड़े ध्यान से उस औरत की तरफ़ देखा। वह मुस्करा रही थी मेरी ओर देखकर। मैंने पूछा, "तो अब तुम्हारे अलावा और कोई कमाने वाला नहीं रहा ?"

"जी !" वह एक लहजे के साथ बोली।

करीम खाँ को बड़ा आनंद आ रहा था हमारी बातों में। वह अपनी रिक्शा का हैंडिल पकड़े खड़ा था। हम दोनों को चुप देखकर वह उससे बोला, "आओ सैर करा लाऊं तुम्हें रिक्शा में बिठलाकर।"

उसने मुस्कराकर उत्तर दिया, "बस करली तेरी सैर ! मैं चलती हूं अब।"

"कहाँ ?" करीम खाँ ने पूछा।

"दिल्ली जा रही हूं ज़रा।" और फिर मुस्कराकर बोली, "अपने रहीम का भी कुछ पता है ? मैंने शादी कर ली है उससे।"

रहीम का नाम कानों में पड़ते ही करीम खाँ के कान खड़े हो गये। वह चौकन्ना सा होकर बोला, "लुच्ची ! तू ही भगा कर ले गई उसे।"

वह हँसकर बोली, "जो भगाने की चीज़ होती है उसी को भगाया जाता है। वह जवान है, मेरा हम उम्र है, तुमसे ज्यादा कमाता है, उसके साथ मेरी पट सकती है। तुम्हारे साथ तो कभी पट ही नहीं सकती थी। ज़रा अपनी शक्ल देखो और मेरी शक्ल देखो। मैं पूछती हूं कि है कोई मेल दोनों में ?"

इतना कहकर उस औरत ने मेरी तरफ़ मुख़ातिब होकर पूछा, "क्यों बाबूजी ! क्या यह मुझसे शादी करने के काबिल है ?"

मैं अनायास ही मुस्करा दिया उसकी बात सुनकर और उसके प्रश्न का उत्तर न देकर मैंने उससे पूछा, "तो फिर तुमने जो शादी करीम खाँ से की, क्या वह मज़ाक था ?"

"बिलकुल मजाक, सोहलहों आने मजाक।" बेतकुल्लुफ़ी से उसने कहा। "कमाल की बात देखिये बाबूजी कि मेरा इनसे और इनके बेटे रहीम से एक ही दिन निकाह हुआ। इनके साथ जो निकाह हुआ वह शरियत के मुताबिक मस्जिद के मौलवी साहब ने कराया और इन्होंने खूब छुआरे बाँटे। मैंने भी खायें वे छुआरे और इन्होंने भी खाये। और रहीम के साथ जो निकाह हुआ उसमें न कोई शरियत थी और न कुरान शरीफ़ और न मौलवी साहब ही बीच में थे। लेकिन दो दिलों का निकाह था वह और इसीलिए चल रहा है और चलता रहेगा जब तक दोनो दिलों में सचाई बनी रहेगी।"

उसकी बात सुनकर करीम खाँ कड़क कर अपनी मूछें तिड़काता हुआ बोला, "इसका बिलकुल यकीन न करना बाबूजी ! बड़ी ही बदजात औरत है यह। इसने मुझ पर और मेरे बेटे पर एक साथ हाथ साफ़ किया। जिससे जो कुछ भी मिल सकता था लेने में कामयाब हुई और अब देखिये कैसी सुर्खरूह बन रही है।"

वह औरत हँस दी करीम खाँ की बात सुनकर और इठलाकर बोली, "अब ज़रा सैर तो करा दो अपनी रिक्शा की ! बड़े नाराज मालूम देते हो आज ! तुम्हारा लड़का कोई लड्डू नहीं है जिसे निगल जाऊंगी मैं। पूरा साढ़े तीन हाथ का जवान पट्ठा है। मुझ जैसी औरत को तो कंधे पर डालकर दौड़ सकता है वह।"

करीम खाँ की नज़रों के सामने उसका लड़का रहीम आगया था इस समय। वह चुप था और आंखें भर आई थीं उसकी। उसकी दशा देखकर मेरा दिल भी जरा भारी हो गया।

मैं ध्यानपूर्वक उस औरत के चेहरे को देखकर बोला, "तुमने बेचारे करीम खाँ के साथ बहुत गहरा मज़ाक किया।"

मेरी बात सुनकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और लापरवाही से हम दोनों को छोड़ कर चलदी।

बहुत दूर तक उसे सड़क पर जाते मैंने और करीम खाँ ने देखा। आखिर वह नज़रों से ओझल हो गई।

करीम खाँ स्वप्न से जागता हुआ बोला, "गई हरामजादी ! खुदा मुंह न दिखाये ऐसी लुच्ची औरत का। बाबूजी तबाह करके रखदी मेरी बुढ़ापे की ज़िन्दगी इसने। देखिये कितनी बदजात निकली कि मेरे बुढ़ापे के सहारे रहीम को भी ले उड़ी मुझसे छीन कर।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया करीम खाँ की बात का। देर होती जा रही थी मुझे लौटने में। मैं बोला, "अब चलो करीम खाँ ! काफ़ी समय यहाँ नष्ट हो गया इसके झमेले में ? माताजी राह देख रही होंगी मेरी। मैं चार बजे तक लौटने की बात कहकर आया था और चार यहीं पर बज गये।"

करीम खाँ बोला, "फ़िक्र न कीजिये बाबूजी ! बात-की-बात में पहुँचाता हूँ आपको गाँव में।"

करीम खाँ की रिक्शा ने वाकई चन्द सेकिंडों में हवा से बातें करनी प्रारम्भ कर दीं।

पुरवा हवा ही आज भी चल रही थी और हम लोग चल रहे थे पश्चिम की दिशा में। करीम खाँ एक पेडिल लगाता था तो हवा रिक्शा को ठेल-

कर ज़रों से आगे बढ़ा देती थी।

रिक्शा जब मैदानों के बीच से गुज़रनेवाली सड़क पर आई तो करीम खाँ मेरी ओर देखकर बोला, "आपने देखी यह औरत बाबूजी! कमाल हासिल है इसे लोगों को ठगने में। और चालाक इतनी है कि क्या मजाल जो कोई इसके शरीर को ज़रा छू भी ले।

पूरे सात दिन यह मेरे घर में रही पर कसम ले लो जो इसके बदन को मैंने उँगली भी कभी छुआई हो।"

करीम खाँ की बात सुनकर मैं मुस्कराते हुए बोला, "औरत वाकई बड़ी तेज़ मालूम देती है। अपने हुस्न का इस्तेमाल तुम लोगों को लुभाने के लिए खूब करती है। और जब तुम लोग लोभ में आजाते हो तो यह अपना उल्लू सीधा करके अपने रास्ते पर लग जाती है।"

"आपने बिल्कुल ठीक पहचाना बाबूजी! यह औरत इसी करीने की है।"

मैंने करीमखाँ से मज़ाक में पूछा, "यह बात तो ठीक मालूम नहीं देती करीम खाँ कि वह तेरे घर में सात दिन रही और तू उसके बदन को छू भी नहीं सका। ऐसा क्या खाने को दौड़ती थी वह?"

करीम खाँ रिक्शा मन्दी करके मेरी और देखता हुआ बोला, "कुरान शरीफ़ की कसम खाता हूं बाबूजी! जो मैंने उसे उंगली भी लगाई हो। कुछ ऐसा जादू सा कर दिया था उसने मेरे ऊपर कि उसके सामने आते ही मैं वही करने लगता था जो वह चाहती थी।"

मैंने हँसकर पूछा, "तो क्या उसने अपना बदन छूने के लिए मना कर दिया था तुझसे?"

"मना तो नहीं किया था बाबूजी पर बुलाया भी नहीं उस कम्बख्त ने एक बार भी प्यार से मुझे अपने पास।" करीम खाँ ने कहा।

मैं हँसकर बोला, "तुम भी यूंही रहे मियाँ करीम खाँ! प्यार तो वह तुम्हें करती ही नहीं थी, फिर प्यार से अपने पास कैसे बुलाती? तुमने तो उसके अब्बा को पाँच सौ रुपये देकर उसे झपटा था, तो झपट कर ही तुम उसका बदन भी छू लेते। ऐसा मालूम देता है कि तुम उसके हुस्न से डर गये।"

"बात तो सचमुच यही है बाबूजी !" सीधेपन में करीम खाँ बोला। लेकिन तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि वह क्या कह गया। वह फिर उभार लेकर बोला, "डरने की कोई बात नहीं थी बाबूजी ! शराफ़त थी मेरी। मैंने सोचा कि जब घर में आही गई है तो आज नहीं कल बुलायेगी ही प्यार से।"

"इसी इन्तजार-इन्तजार में चिड़िया फुर्र से उड़ गई और मियाँ करीम खाँ हाथ मलते रह गये।" मैं मुस्कराकर बोला और पूछा, "क्या रात को बिना कहे ही चली गई थी वह किसी दिन ?"

करीम खाँ बोला, "रात को नहीं बाबूजी ठीक दोपहर के वख्त गई थी। मुझसे बोली, 'तेरे घर में नहीं रहूंगी मैं। तू औरत को घर में रखने के काबिल ही नहीं है। आज सात दिन हो गये मुझे यहाँ रहते। ऐसे बैठी रहती हूं जैसे कैद में चिड़िया फंस जाती है। मुझे यह रहन-सहन पसंद नहीं है।"

और फिर मुझे ताना मार कर बोली, "तेरी जवानी ढल चुकी है। काठ के उल्लू की तरह आकर बैठ जाता है मेरे सामने। मैं जाती हूं तेरे घर से। यहाँ पिंजड़े में बन्द होकर नहीं रह सकती मैं।"

मैंने हँसकर पूछा, "जब वह उठकर चलदी तो तुमने क्या किया करीम खाँ ?"

"मैं क्या करता बाबूजी ! अपना माथा ठोंक कर चोखट पर खड़ा देखता रहा। जब तक वह दिखाई देती रही और बुलाता रहा उसे जब तक वह मेरी आवाज सुनती रही।

लेकिन लौटी नहीं कम्बख्त।"

मैं हँसकर बोला, "लौटती कैसे ? उसे तो तेरा रहीम बुला रहा था अड्डे पर खड़ा हुआ और वहीं से मोटर में बैठ कर दोनों जने शहर को चल गये।"

बातों-ही-बातों में गाँव को जाने वाला अड्डा आगया। मैं फिर हँस-कर बोला, "तुझे यकीन न हो तो इस पकौड़ी वाले से पुछवा दूं कि यहाँ से वह औरत रहीम के साथ गई थी या नहीं।"

मेरी बात सुनकर करीम खाँ गिड़गिड़ाकर बोला, "इन लोगों से

ज़िक्र न करना बाबूजी वरना ये अभी कुत्तों की तरह मेरे पीछे पड़ जायेंगे। इन्हें तो चौबीसों घंटे मजाक ही सूझती है। ये क्या जानें किसी के दिल पर कैसी गुज़र रही है?"

मैं अपने मन में समझ गया कि ये सब करीम खाँ के रोज के साथी लोग उस औरत के किस्से को लेकर अवश्य ही इसको उल्लू बनाते होंगे। इसीलिये यह घबराता है इनके सामने उसका ज़िक्र करने से।

करीम खाँ ठहरा नहीं एक मिनट के लिए भी अड्डे पर। उसे डर हो गया था कि कहीं मेरी ज़बान से कुछ न निकल जाय वहाँ उसके हमजोलियों के बीच में।

: १७ :

बड़ी ही फुर्ती से उसने अड्डे पर अपनी रिक्शा गाँव की तरफ़ मोड़ी लेकिन उसका यार चंदू ऐसे ही उसे कैसे निकल जाने देता। आगे बढ़कर उसने रिक्शा का हेंडिल पकड़ लिया और हँसकर बोला, "अबे! लपका क्यों जा रहा है? आ ज़रा बीड़ी तो पीलें।"

मुझे रिक्शा में बैठा देखकर उसने राम-राम की और बोला, "कोइ खास जल्दी तो नहीं है आपको जानेकी बाबूजी!"

मैं हँसकर बोला, "जल्दी तो है लेकिन तुम अपने यार करीम खाँ को बीड़ी पिलालो। तब तक मैं भी प्याऊ पर पानी पी लेता हूं।"

मैं प्याऊ की ओर बढ़ गया लेकिन मेरे कान करीम खाँ और चन्दू की बातों में ही उलझे हुए थे।

चन्दू करीम खाँ की गर्दन पर हाथ रखकर बोला, "अबे! आज तो तहसील में चक्कर लगा रही थी वह औरत। ऐसा न हो कि कहीं तुझपर कोई दावा-वावा ठोक दे।"

करीम खाँ बोला, "धीरे से बोल बे! कहीं बाबूजी न सुन लें। यह भी उसी शहर में ही रहते हैं जहाँ वह लुच्ची रहती है।"

"तो क्या पहले से जानते हैं बाबूजी उस औरत को ?" चन्दू ने आंखें मटकाकर पूछा।

करीम खाँ बोला, "चुप रह बे ! बाबूजी ऐसे आदमी नहीं हैं।"

चन्दू हँस दिया करीम खाँ की बात सुनकर और फिर इठलाकर मस्ती में बोला, "अबे ! सब देखा है मैंने। औरत के जोबन के सामने अच्छे-अच्छों का दिल मचल जाता है। बाबूजी तो बेचारे चीज़ ही क्या हैं ?"

करीम खाँ बात को ज़रा भी आगे बढ़ने देना नहीं चाहता था। इसलिए वह चन्दू की हर बात का जवाब हां हूं में ही देता रहा। वह समझ रहा था कि चन्दू मज़ाक को आगे बढ़ाना चाहता है और वह उसकी हर बात को वहीं रोक देता था जहाँ से वह निकलती थी।

अन्त में चन्दू हँसकर बोला, "बड़ी ही बनी ठनी फिर रही थी आज तो। पूरी पंजाबिन छोकरी मालूम देती थी। नाईलोन की चुन्नी देखी तूने कैसी खिल रही थी उसकी छाती पर। होठों पर सुर्खी भी आज गज़ब ढा रही थी। माथे पर बिन्दी और नाखूनों पर पालिश चमक रही थी। साटन की बढ़िया कमीज पर लट्ठे की सिलवार पहने थी और पैरों में ठाठदार चप्पल।

कसम से तू देखता तो चूम लेता उसे।"

यों करीम खाँ अभी-अभी देखकर आया था उसका यह रूप, लेकिन चन्दू ने इस अदा के साथ बयान किया उसे कि करीम खाँ का दिल कुलमुलाने लगा।

वह लम्बी साँस खींचकर बोला, "चूम लेता चन्दू ज़रूर लेकिन वह लुच्ची चूमने के काबिल ही नहीं निकली।"

करीम खाँ की बात सुनकर चन्दू ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ा। उसकी इस तेज़ हँसी से मानो करीम खाँ का स्वप्न टूट गया।

उसने महसूस किया कि वह भावुकता में बहकर गलती खा गया इस समय चन्दू मक्कार के सामने।

वह फ़ौरन ही सतर्क होकर बोला, "वह तो आई थी मेरे पास। मैंने सीधे मुंह बातें नहीं की उससे। मर्द एक बार जब किसी औरत को थूक देता है तो चूमता नहीं फिर।"

"ला बीड़ी तो ला।"

चन्दू ने मुस्कराकर बीड़ी दी और दियासलाई भी उसे सिलगाने के लिए।

करीम खाँ ने बीड़ी सिलगा ली तो चन्दू ने धीरे से पूछा, "अबे कुछ और भी सुना है तूने या नहीं ?"

करीम खाँ ने चन्दू के चेहरे पर देखा, मानो वह पूछ रहा था कि वह क्या नई बात है जो करीम खाँ ने नहीं सुनी।

"वह कहती थी कि उसने तेरे बेटे रहीम के साथ निकाह पढ़ लिया है। दोनों दिल्ली की जामा मस्जिद के पास किसी जगह रहते हैं। कहती थी कि रहीम कमाल की मालिश करने लगा है अब। साँझ को दिल्ली के जिस पारक में भी पहुँच जाता है, पाँच रुपये खड़े कर लेता है। फिर उन पाँच रुपयों से हम गुलछर्रे उड़ाते हैं।"

चन्दू कह रहा था और करीम खाँ का कलेजा जल रहा था। उसे लग रहा था कि मानो उस औरत ने उसकी सारी जवानी की कमाई पर डाका डाल लिया हो।

वह तिलमिला उठा खड़ा-ही-खड़ा।

चन्दू मजाक में बोला, "अबे क्यों मरा जाता है इतना। औरत रही तो घर की घर में ही। हम तो भई रहीम को दाद देते हैं कि उसने उस लुच्ची को भागने नहीं दिया। बाप के पहलू से निकल भागी तो बेटे ने धर दबाया।"

चन्दू कहता गया जाने क्या-क्या अपनी मस्ती में, लेकिन करीम खाँ ने कोई जवाब नहीं दिया। उसका दिल भारी हो रहा था।

चन्दू मस्त प्राणी था। दिन भर रिक्शा चलाता था और संध्या को पेटभर रोटी के पैसे निकालकर बाकी की भांग-बूटी छान लेता था।

शायद-भांग बूटी छानकर ही वह अपने साथियों से मस्ती करने और उनके लहजे लेने के लिये इस समय अड्डे पर आया था।

वह मस्त था। उसकी बला जाने कि उसकी बातों से करीम खाँ के कलेजे पर कैसी बीत रही है। उसके लिए तो उपहास की सामग्री था करीम खाँ इस समय।

मुझे बुरा लगा चन्दू का करीम खाँ को इस तरह चिढ़ाना। उसने चाहे जो कुछ भी किया परन्तु इसके परिणामस्वरूप उसका घर तो उजड़ ही गया। उसकी तीन बीघा जमीन भी उसके हाथ से निकल गई और उसका बेटा भी उसका साथ छोड़ गया।

मैंने देखा कि बड़ी ही सहनशक्ति से करीम खाँ ने काम लिया इस समय।

वह चुपचाप मेरे पास आकर बोला, "चलो बाबू जी ! यह चन्दू तो इस समय भांग छानकर आया है। इसे क्या पता कि सूरज डूब चुका ? यह तो यूंही यहां न जाने कितनी रात तक आने-जाने वालों से बकता-झकता रहेगा।"

मैं रिक्शा में बैठ गया। चला तो चन्दू ने फिर राम-राम की और मैंने भी उसका जवाब राम-राम से दिया।

थोड़ी ही देर में करीम खाँ ने रिक्शा ले जाकर मेरे घर के सामने खड़ी कर दी।

: १८ :

माताजी दरवाजे पर खड़ी मेरी राह देख रही थीं।

रिक्शा चबूतरे के सामने रुकी तो वह दरवाजे से बाहर निकल आईं।

मैंने कहा, "माताजी नमस्ते।"

"नमस्ते बेटा" कहकर मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे घर के अन्दर ले गईं।

मैं घर के अन्दर चला आया माताजी के साथ। मुझे ध्यान ही भूल गया कि मैंने करीम खाँ को उसकी रिक्शा के किराये की अठन्नी नहीं दी।

मैं माताजी के साथ इधर-उधर की बातों में लग गया, घर के सहन में पड़ी खाट पर बैठ कर।

तभी करीम खाँ अन्दर आ गया।

मैं बोला, "अरे करीम खाँ ! तुझे पैसे देने तो भूल ही गया मैं।"

करीम खाँ ने माताजी को भी सलाम किया।

माताजी हंसकर बोलीं, "अरे करीम खाँ ! पता चला कुछ रहीम का ?"

और फिर मेरी ओर मुंह करके बोलीं, "इस बेचारे का लड़का इसे इस बुढ़ापे में छोड़कर देखो घर से निकल गया। पता नहीं आजकल के बेटे ऐसे क्यों होते जा रहे हैं जो बूढ़े माँ-बापों का ध्यान ही नहीं रखते।

कल तेरे सामने मंगलू की माँ रो ही रही थी अपने बेटे की करतूतों को।"

मैंने करीम खाँ को पैसे दिये तो उसने पैसे नहीं लिये। वह बोला, "मैं पैसे लेने नहीं आया हूं बाबूजी ! माजी के दरसन करने आया हूं। इस घर से तो मैं पला हो हूं।"

माताजी मुस्कराकर मुझसे बोलीं, "तुम्हारे बाऊजी जब खेती कराते थे तो करीम खाँ तुम्हारे यहां काम करता था। फिर जब जमींदारी खत्म हुई तो यह हमारी तीन बीघे जमीन जोत रहा था। उसका यह भूमिधर बन गया।

फिर इस गधे ने एक औरत के चक्कर में पड़कर अपने वे भूमिधरी के अधिकार भी सात सौ रुपये में बेच डाले।"

माताजी ने सारा किस्सा पाँच पंक्तियों में निचोड़कर रख दिया मेरे सामने।

करीम खाँ सिर नीचा किये सुनता रहा और श्रद्धा के साथ बोला, "माजी ! वाकई मूर्ख बना गई वह औरत मुझे। मेरा सब कुछ चौपट कर गई।"

करीम खाँ के दर्द को पहचानकर मैं भारी मन से बोला, "कभी-कभी आदमी की जरा-सी गलती ही उसका सब-कुछ चौपट कर डालती है करीम खाँ ! हरी-भरी खेती जरा-सी भूल से उजड़ जाती है।

लेकिन अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। मुझे यकीन है कि एक दिन तेरा रहीम तेरे पास जरूर आयेगा।"

करीम खाँ ने आशाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और धीरे से बोला,

"बाबूजी आप तलाश करेंगे तो किसी-न-किसी दिन मिल जरूर जायगा रहीम आपको।"

मैं बोला, "तू बेफ़िक्र रह करीम खाँ! मैं रहीम को तालाश करने की पूरी कोशिश करूंगा।"

चलते समय मैंने लाख कोशिश की कि करीम खाँ को अठन्नी दे दूं, लेकिन उसने नहीं ली।

करीम खाँ चला गया तो माताजी हंसकर बोलीं, "मरा, उल्लू है कहीं का। अपना सब-कुछ खो बैठा उस औरत के पीछे। मैंने तभी कहा था इससे कि यह औरत चाल-चलन की अच्छी नहीं लगती करीम खाँ! तेरे घर में नहीं रहेगी यह।

तब एक नहीं सुनी इसने। बुढ़ापे में छैला बनकर शादी की थी इसने।"

: १६ :

मुझे आने में इतनी देर हो गई थी कि माताजी खाना बना चुकी थीं।

वह बोली, "खाना खाले। ऐसा न हो कि तू खा भी न पाये और मंगलू की माँ आजाये।

कई बार आचुकी है दिन में।"

मैंने हंसकर पूछा, "और दुलारी भाभी?"

"वह तो अभी खड़ी-खड़ी गई है अपने घेर की तरफ़। भैंस का दूध निकालने गई है शायद। आती ही होगी।"

मुझे भूख लगी थी। मैं बोला, "लाओ तो मैं खाना खालूं। फिर चौकड़ी जमेगी भाभी और मंगलू की माँ के साथ।

देखें आज कैसी कैसी तय्यारी से आती हैं दोनों।"

माताजी हंसकर बोलीं, "दोनों तय्यार फिर रही हैं। जिसके भी कानों में पहले भनक पड़ जायेगी तेरे आने की, वही पहले आ धमकेगी।"

माताजी ने खाना मुझे खाट पर ही लाकर दे दिया और मैं खाने के लिए संवर कर बैठ गया।

पहला टुकड़ा ही मुंह में दिया था कि दुलारी भाभी दूध की दुहावनी बगल में दबाये घर के आँगन में चली आईं।

मुझे खाना खाते देखकर बोलीं, "अकेले-ही-अकेले उड़ा रहे हो लाला जी! भाभी को तो आजाने देते।"

मैं मुस्कराकर बोला, "आओ भाभीजी! खाना खालो।"

"किसी की जूठन नहीं खाती हूं मैं।" आँखें मटकाकर भाभीजी मुस्कराती हुई बोली।

मैं बोला, "मिठास तो जूठन में ही होता है भाभीजी।"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी जरा लजाकर आगे बढ़ती हुई बोलीं, "अच्छा खाना खालो तुम। मैं दूध बरोसी में रखकर आती हूं अभी।" कहकर वह घर के दूसरे दरवाज़े से बाहर चली गईं।

खाने के दस पाँच टुकड़े और खाये होंगे कि मंगलू की माँ आ पहुँची। मुझे देखकर बोली, "बड़ी देर करदी आने में।"

मैं बोला, "हाँ, हो ही गई कुछ देर मंगलू की माँ! यूं ही बातचीत में कभी-कभी बड़ी देर लग जाती है।"

"हाँ मुझे अभी करीम खाँ ने बतलाया था कि तुम आगये।"

मैंने पूछा, "करीम खाँ ने?"

मंगलू की माँ बोली, "हाँ उसी लुच्चे ने। दो रुपये माँग कर ले गया था सात दिन हुए। दूसरे ही दिन लौटाने का वायदा था उसका। मरे ने आज तक नहीं लौटाये।"

मैंने उसके चेहरे पर देखकर पूछा, "तो क्या रुपया सूद पर भी चलाती है तू?"

मंगलू की माँ बोली, "इसी से तो दो रोटियाँ खा रही हूं आजकल। दो रुपये देती हूं और तीन ले लेती हूं दूसरे दिन। कल नहीं देगा तो रिक्शा रोक लूंगी मरे की।"

मैं हंसकर बोला, "इतनी सख्त न बनो मंगलू की माँ! कम-से-कम अपनी जैसी स्थिति के आदमी पर तो तरस खाओ। जैसे तुम्हारी बहू

तुम्हारे मंगलू को ले उड़ी है वैसे ही करीम खाँ के बेटे रहीम को भी एक औरत भगा कर ले गई है।

इस उम्र में बेचारा रिक्शा चला कर पेट भर रहा है। तुम्हें तरस नहीं आता उसपर ?"

मंगलू की माँ हंसदी मेरी बात सुनकर।

मैं खाना खा चुका था अब और कुल्ला करके आराम से बैठ गया था खाट पर। माताजी भी मेरे बराबर वाली खाट पर बैठी थीं। तभी दुलारी भाभी भी आगईं।

माताजी बोलीं, "आजा दुलारी ! पीढ़ा उठा ला अन्दर से अपने बैठने के लिये।"

दुलारी भाभी मंगलू की माँ को देखकर बोलीं, "तू भी आ धमकी मंगलू की माँ ! तू मुझे लालाजी से बातें नहीं करने देगी।" और फिर मेरी ओर मुंह करके बोलीं, "इस मंगलू की माँ का किस्सा इतना लम्बा है लालाजी कि यह अपने किस्से में सारे गांव को उलझाये रहती है। जहाँ यह पहुँच जाती है वहाँ अपनी ही रामकहानी छेड़ देती है।"

मैं मुस्कराकर बोला, "बैठ जाओ भाभी ! आज पहले तुमसे ही बातें करूंगा। मंगलू की माँ का किस्सा भी चलता चलेगा साथ-साथ। यह बेचारी भी बड़ी दुखी है। दुखी आदमी को अपनी बातें सुनाने में बड़ा आराम मिलता है। उसके दिल का भार जरा हल्का हो जाता है।"

मंगलू की माँ मेरी बात में सहानुभूति की भावना देखकर बोली, "मेरे दर्द को तुम्हारी दुलारी भाभी नहीं पहचान सकती भय्या ? जाके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई ?"

मंगलू की माँ की बात सुनकर दुलारी भाभी तुनककर बोलीं, "तू बेकार ये जली-कटी बातें न किया कर मंगलू की माँ ! तू अपने पैर पर अपने हाथ से गंडासा लेकर मार ले तो कौन रोक सकता है तुझे ?"

मुझे हँसी आगई दुलारी भाभी की बात सुनकर। मैं बोला, "भाभी ! पैर में चाहे बिवाई खुल जाये और चाहे मंगलू की माँ स्वयं गंडासा लेकर अपना पैर काटले, लेकिन दुःख तो होगा ही। अपना पैर काट कर जब मंगलू की माँ लंगड़ाती हुई आपके पास आयेगी तो क्या आपको इसके दर्द

से सहानुभूति नहीं होगी ?"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी खिलखिलाकर हंस पड़ीं। वह बोलीं, "ऐसे पागलपन से क्या सहानुभूति ?"

मेरे दिमाग से अभी करीम खाँ नहीं निकला था। मैं रह-रह कर उसके बेटे रहीम तथा उस औरत के विषय में सोच रहा था।

मैं भाभी से बोला, "भाभी ! एकबात देखो मैंने तो इसबार, गांव में आकर।"

दुलारी भाभी ने उत्सुकता के साथ अपने कान मेरी ओर लगाकर मेरे चेहरे पर देखते हुए पूछा, "वह क्या लालाजी !"

"वह यह कि अगर हमारे गाँव का यही हाल रहा तो कुछ दिनों में यहां की बहुएँ, यहां के सब नौजवान लड़कों को ले उड़ेंगी और उनके माँ-बाप बेचारे यहां तड़पते रह जायेंगे।"

मेरी बात पूरी तरह न समझकर दुलारी भाभी ने पूछा, "वह कैसे लालाजी ?"

मैंने कहा, "कैसे क्या ? देख नहीं रही हो तुम ! मंगलू की बहू मंगलू को ले उड़ी और करीम खाँ के बेटे रहीम की भी यही दशा हुई। अभी-अभी माताजी कह रही थीं कि गांव के और भी कई लड़के इस तरह शहरों को चले गये और अपने बूढ़े माता-पिता का ध्यान ही छोड़ दिया उन लोगों ने।"

मैं फिर हंसकर बोला, "ये कैसी बहुएँ आरही हैं हमारे गाँव में ? क्या गाँव को उजाड़ कर ही दम लेंगी आप सब ?"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी को बहुत हंसी आई। वह हंसते-हंसते लोट-पोट हो गई। फिर बोलीं, "तुम भी लालाजी बात खूब करते हो। बेचारे करीम खाँ का किस्सा वाकई दर्दनाक है। बेचारे पर इस बुढ़ापे में बड़ी ही मुसीबत आ पड़ी है।

लेकिन गाँव की सब बहुएं ऐसी नहीं हैं। बहुएं अगर सच पूछो तो अपनी सासों के दुर्व्यवहार से तंग आकर अपने पतियों के साथ गांव से बाहर को भागती हैं। वे बेचारी तो अपनी जान बचाकर किसी तरह सासों के चंगुल से निकलती हैं।"

दुलारी भाभी की यह बात माताजी भी सहन नहीं कर सकीं। इससे पहले कि मंगलू की माँ कुछ बोलती माताजी हंसकर बोलीं, "क्यों री दुलारी! बहुएं तो गांव की सब दूध की धुली हुई हैं। सारा दोष उनकी सासुओं का ही है?"

माताजी की बात सुनकर दुलारी भाभी ज़रा सहमकर अपने को संभालती हुई बोलीं, "आप बुरा मत मानो चाचीजी! यह तो मैं लालाजी की बात का जवाब दे रही हूं।

और इतनी बात सच भी है इसमें कि जो सास अपनी बहुओं को प्यार से रखती हैं उनकी बहुएं कभी शहर में जाने का नाम भी नहीं लेतीं।

मुझसे कोई लाख कहे शहर चलने को, पर मैं कभी नहीं जाऊंगी। एक बार ज़बरदस्ती दशहरे के नहान पर वह दिल्ली ले गये थे तो सच जानो चाची! दम घुटने लगा था वहां की भीड़-भाड़ को देखकर। कीड़े-मकोड़ों की तरह आदमी रहते हैं वहाँ। मरे शहर की भी कुछ जिन्दगी है।"

दुलारी भाभी की अंतिम बात से माताजी सहमत हो गईं। वह बोलीं, "इसमें तो कोई शक नहीं दुलारी! कि शहर में दम घुटने लगता है। एक-दो महीने के लिए जब मैं शहर चली जाती हूं तो फिर यहाँ आने के लिए मन छटपटाने लगता है।

यह खुला आँगन और साफ़ सुथरी हवा वहां कहां नसीब होती है? धौं-धौं-भौं-भौं का शोरगुल सुनते-सुनते कान पक जाते हैं। रात के बारह-एक बजे तक शांति नहीं होती और फिर सुबह चार बजे से ही शोर होना प्रारम्भ हो जाता है।

वहां पहुंचकर आदमी को ऐसा लगता है कि मानो वह भाग रहा है। ज़मीन पर नहीं आसमान में है वह।

दिल घबराने लगता है मेरा तो शहर में।"

यह बात चल रही थी कि तभी दुलारी भाभी की बड़ी लड़की शांति आ पहुँची। मुझे देखकर बोली, "चाचाजी नमस्ते।"

"नमस्ते बेटी" और फिर ज़रा पहचानकर बोला, "अरे शांति है यह तो। लो मैं तो पहचान ही नहीं सका था। कितनी बड़ी हो गई री शांति तू!"

दुलारी भाभी शांति से हंसकर बोलीं, "अपने चाचा जी से पूछो कि अगर आपने गांव में आना बन्द कर दिया है तो क्या मैं भी बढ़ना बन्द कर देती ?"

मैं हंसकर बोला, "ऐसे ताना न मारो भाभी ! अब मैं जल्दी-जल्दी आया करूंगा । अब इतने दिन नहीं लगाऊंगा आने में ।"

शांति दुलारी भाभी से बोली, "माजी बुला रही हैं आपको । कोई मेहमान आये हैं ।"

दुलारी भाभी खड़ी होती हुई बोलीं, "लो मुझे तो काम लग गया लालाजी ! देखूं चलकर कौन मेहमान आये हैं ।" कहकर वह शांति के साथ चली गईं ।

: २० :

मंगलू की माँ ने दुलारी भाभी के चले जाने पर खुलकर सांस ली । मुझे लगा जैसे उनके सामने मंगलू की माँ का दम कुछ घुटा-घुटा सा हो रहा था ।

मैं हंसकर बोला, "दुलारी भाभी चली गईं मंगलू की माँ ! अब तू आराम से बैठ जा और सुना अपने मंगलू का किस्सा ।"

मंगलू की माँ बोली, "किस्सा मंगलू का क्या है, वह तो मेरा अपना ही रोना है । मंगलू ऐश कर रहा है शहर में । उसकी बहू और बेटा उसके पास हैं । मुझ बूढ़ी से उसे क्या मतलब ?"

मैं पिछला किस्सा छेड़कर बोला, "तो तेरे खेतों को रामदीन ने जोतना-बोना शुरू कर दिया और ताऊ के बेटे बेकार हो गये ।"

मंगलू की माँ हंसकर बोली, "तुमने याद खूब रखी मेरी कल की कहानी । मैं तो समझ रही थी कि इधर-उधर की बातों में कहीं मेरी कहानी भी खो न गई हो ।"

मैं बोला, "मेरे पास आने वाली चीज इस तरह नहीं खो जाती है मंगलू की माँ ! मैं बड़ी सावधानी से रखता हूं उसे । क्या मजाल जो कहीं

जरा भी सिलसिला खराब हो जाये।"

मंगलू की माँ बोली, "जब मेरे खेत बू गये और उनमें फ़सल के अंकुर फूट आये तो एक दिन क्या देखती हूं कि संध्या को ताई चली आ रही है मेरे घर।

मैं खड़ी होकर ताई के पैर लगी और उसी आदर के साथ उसे खाट पर बिठलाया जैसे पहले बिठलाती थी।

कुछ देर तो ताई चुप रही। फिर धीरे-धीरे बोली, "बहू! खानदान वालों से बिलकुल ही नाता तोड़ दिया तूने तो। माना लड़कों से कुछ भूल हो ही गई थी तो क्या उसे इस तरह मन में लेकर बैठा जाता है? फिर तेरे ताऊ ने उन्हें कितना डांटा-फटकारा, लानत-मलामत दी, इसका तो मुझे पता ही नहीं। छोटे को तो इतना मारा, इतना मारा कि बेचारा चार दिन तक खाट से नहीं उठा"

ताई की बात सुनकर मैं थोड़ी पसीज सी गई। मैं बोली—"ताई मैं तो वैसी ही हूं जैसी पहले थी। मुझमें कोई फ़र्क नहीं आया। आप लोगों ने ही मुझसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

आपके मन में कोइ बात न होती तो क्या इतने दिन बाद आप आकर मेरी खबर लेतीं?"

मेरी इस बात का कोई जवाब नहीं था ताई के पास। वह चुप हो गई थोड़ी देर के लिये।

फिर मुस्कराकर बोली,—"रामदीन से बुवाये हैं तूने अपने खेत। कहीं ऐसा न हो कि वही मालिक बनकर बैठ जाये उन खेतों का।"

और इतना कहकर ताई थोड़ी देर और बैठने के बाद मेरे पास से उठकर चली गई।

संध्या को रामदीन आया तो उसका चेहरा उदास था। मैंने उसके चेहरे को भाँपकर पूछा,—"क्या बात है रे रामदीन! तबियत तो ठीक है तेरी?"

वह उसी तरह अनमने से भाव से बोला, "तबियत तो ठीक है पर आज एक बात सुनी है मैंने गांव में।"

मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "क्या?"

वह बोला, "कुछ लोग कह रहे थे कि मैंने किसी चाल-पट्टी से तुम्हारी ज़मीन अपने कब्जे में करली है।"

रामदीन के इतना कहते ही मैं ताई की चालाकी को ताड़ गई। मैंने हंसकर पूछा, "किन लोगो से सुनी थी तूने यह बात रे रामदीन ?"

वह बोला, "एक नहीं, कई लोगों के मुंह से सुनी है।"

मैंने पूछा, "तो कुछ मेरा भी जिक्र किया था उनमें से किसी ने।"

रामदीन बोला, "आपका नाम सुना तभी तो मुझे दुःख हुआ। वरना और किसी की मैं क्या चिंता करता हूं ?"

तभी सामने से चन्दू आ गया। चन्दू को देखते ही रामदीन उसे बुलाता हुआ बोला, "अरे चन्दू !"

"हां भय्या रामदीन !" चन्दू ने कहा। और वह भीगी बिल्ली की तरह हमारे पास आकर खड़ा हो गया।

रामदीन ने पूछा, "बुआजी ने क्या कहा था तुझसे ?"

मेरे सामने चन्दू चुप रहा। बात झूठी थी उसकी, इसलिए कहता भी क्या ? मुझसे तो कभी उसकी बातचीत भी नहीं हुई थी किसी मामले में।

वह गर्दन नीची ही करके बोला, "भय्या रामदीन ! मंगलू की माँ ने नहीं कही थी मुझसे वह बात। मुझसे तो ताई ने कही थी। कल मैंने भांग छानी हुई थी और उसी के नशे में मैं शायद इनका नाम ले गया तुम्हारे सामने।"

यह कहकर उसने अपनी जान बचाई वरना सच जानो रामदीन उसे वहीं ठोकता। बड़ा ही गुस्से वाला लड़का है रामदीन।

रामदीन हँसकर बोला, "भाग जा यहाँ से। फिर कभी ऐसी बातें मेरे सामने कीं तो पैर पकड़ कर ज़मीन पर दे मारूंगा।"

चन्दू चुपचाप चला गया।

चन्दू के चल जाने पर रामदीन ने मुझसे माफ़ी माँगी। मुझे पता ही नहीं था कि चमेली ओटे की आड़ में बैठी हमारी सब बातें सुन रही थी।

वह हंसकर बोली, "आज यह खेत से घर नहीं आये। मैं दरवाजे पर खड़ी इनकी राह देख रही थी। यह सीधे यहाँ आये तो मैं समझ गई

थी कि अवश्य कुछ दाल में काला है। इनका चेहरा भी आज कुछ और ही तरह का बना हुआ था।

फिर वह रामदीन की ओर मुंह करके बोली, "अब समझ गये तुम ! यह ताई बड़ी कुटनी है। इसकी चालाकियों को तुम नहीं जान सकते।"

इसपर रामदीन क्रोध में भरकर बोला, "मुझे लगता है कि अब किसी दिन ताई की ही मरम्मत करनी पड़ेगी।"

इसपर मैं घबराकर बोली, "ना भय्या ! ऐसा कभी भूलकर भी मत कर बैठना। बूढ़ी आदमन है। उसकी लुच्चई को कोई नहीं देखेगा। सब मुझे ही दोष देने लगेंगे।"

चमेली गम्भीरतापूर्वक बोली, "तुम्हें मेरी कसम है जो तुमने कभी ताई से कुछ भी कहा।"

रामदीन क्रोध में भरकर बोला, "और वह जो चाहे बकती फिरे हमारे विषय में। आखिर हमने ले क्या लिया है उसका जो वह इस तरह की बातें करे। उसका और हमारा मतलब ही क्या है ?"

मैं हंसकर बोली, "तभी तो मैं कह रही हूँ बेटा ! तुम्हारा और ताई का मतलब ही क्या है ? वह जो कुछ भी कहती है उसे यही जानकर सुन लिया करो कि मेरे और तुम्हारे सम्बन्धों को खराब करने के लिये कह रही है।"

रामदीन को हंसी आ गई मेरी बात सुनकर। वह बोला, "बड़ी ही फितना औरत है। जो बात भी कहती है उसे गांव भर में पूर देती है। और तो और करीम खाँ भी यही कह रहा था।"

"करीम खाँ," मैंने आश्चर्यचकित होकर कहा।

"हां बुआ जी ! तुम्हें खुद अचम्भा होगा यह सुनकर। करीम खाँ जैसा आदमी, किसी के न लेने में न देने में। उसके कानों तक भी जाकर ताई ये ही बातें पूर आई।"

मैं हंसकर बोली, "अभी-अभी यहाँ भी आई थी।"

"तुम्हारे पास !"

मैंने कहा, "हाँ।"

"क्या कहती थी ?"

"कहती थी कि खानदान वालों से बैर बाँधके कैसे रह सकती हूं मैं इस गाँव में ?"

"तो गाँव उसके बाप का है ?" तुनककर रामदीन बोला, "क्या गांव की मालकिन ताई ही बना दी है सरकार ने ?"

मुझे हंसी आ गई रामदीन की बात सुनकर। मैं हंसकर ही बोली, "वह कहती थी, 'तो रामदीन स बुवाये हैं तूने अपने खेत। कहीं ऐसा न हो कि वही मालिक बनकर बैठ जाये उन खेतों का।' "

रामदीन ने पूछा, "फिर तुमने क्या उत्तर दिया उसे ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया उसकी बात का। कोई उत्तर न पाकर आगे बातें करने का मुंह ही नहीं हुआ उसका। अपने आप उठकर चली गई।"

रामदीन चाहता था कि मैं उसे करारी फटकार बतलाती परन्तु चमेली बोली, "आपने ठीक किया बुआजी! लेकिन इस ताई से होशियार रहना जरा। इसका यहाँ ज्यादा आना-जाना ठीक नहीं है। मंगलू और शांता पर इसकी परछांई भी न पड़ने देना। आना-जाना करके कहीं इसने किसी दिन मंगलू को कुछ कर दिया तो जिन्दगी भर का पछतावा ही रह जायगा।"

मैं काँप उठी चमेली की बात सुनकर। मेरी आंखों के सामने मंगलू के बाप की तस्वीर आकर खड़ी हो गई। कितना छबीला जवान, मिट्टी हो गया जरा-सी भूल से।

मैं जरा घबराकर बोली, "चमेली तूने अच्छी याद दिलादी मुझे। मैं अब ताई को मंगलू और शांता के पास तक भी नहीं फटकने दूंगी।"

मैं मुस्कराकर बोला, "चमेली समझदार लड़की मालूम देती है।"

"बड़ी समझदार है भय्या! रामदीन का घर बसा दिया उसने। वरना मारा-मारा फिरता था। बेचारे के माँ-बाप बहुत छोटे को ही छोड़ कर मर गये थे। बुआ ने पाला था उसे।" मंगलू की माँ बोली।

मैंने पूछा, "वह बुआ कहाँ है अब उसकी ?"

"यहां रहती है बेचारी इन्हीं के पास। जनम की विधवा है। इसी के हाथों में सौंप गये थे रामदीन को इसके माँ-बाप। परमात्मा की देखो

कैसी करनी है कि बैठे-बिठाये एक ही दिन में चल बसे दोनों। हैजा हो गया था उन्हें।

लेकिन बुआ ने भी इस रामदीन को ऐसे पाला जैसे क्या कोई माँ पालेगी अपने बच्चे को। बड़ा कष्ट उठाया है बेचारी ने इसके पीछे।

एक बार यह बीमार हो गया था तो वह पगली हो गई थी इसके लिये। रात-दिन एक करके आखिर बचा ही लिया इसे। दिल्ली ले गई बिचारी इलाज कराने को।"

"फिर अब कैसी गुजर रही है रामदीन की बुआ की?" मैंने पूछा।

"बड़े मौज की गुजर रही है। ऐसी मौज की जैसी शायद ही गांव में किसी सास की गुजर रही हो। चमेली और रामदीन उसकी ऐसी खातिर करते हैं कि बस क्या पूछो।

दो बार तो हरिद्वार नहला लाये हैं उसे।

जब से रामदीन की शादी कराई है मैंने, मेरा बड़ा ही गुण मानती है बेचारी।"

मैं मुस्कराकर बोला, "तो तूने ताई के पैर नहीं जमने दिये फिर अपनी जमीन पर?"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "ताई के पैर कैसे जमने देती? उसके पैर जम जाते तो मेरे उखड़ जाते।

ताई बड़ी करामातिन है हमारी। उसके बाद भी बड़े-बड़े रूप भरे उसने, पर भला हो बिचारी चमेली का कि वह हमेशा ही मुझे उसके फंदे से बचाती रही।

चमेली छोटी जरूर है उम्र में, लेकिन बड़ी ही समझदार लड़की है। ताई की नस-नस को पहचानती है।"

मैंने कहा, "फिर क्या हुआ?"

मंगलू की माँ बोली, "फिर क्या हुआ? बस जिन्दगी आगे बढ़ने लगी। मंगलू और शांता धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

मैं सुबह को अपनी दुकान खोलती थी और दीया जले तक उसी पर बैठती थी।" कहते-कहते मंगलू की माँ को हंसी आगई।

मैं बोला, "हँसी क्यों मंगलू की माँ ?"

"हँसी क्या, मुझे एक दिन की बात याद आगई। मैं बाल बाल-बच गई सचमुच उस दिन तो। वरना ताई ने तो मेरे जेल जाने के करम करा दिये थे।" वह बोली।

मैंने पूछा, "वह कैसे ?"

"वह ऐसे कि एक दिन उसका बड़ा लड़का किसी की रास में से कुछ अनाज चुरा लाया और उसे बेचने के लिए गठिया लाकर मेरी दुकान पर रख दी।"

मैंने उससे पूछा, "यह किसका अनाज है रे ?"

वह बोला, "मेरा है।"

मैंने पूछा, "तेरा कहाँ से है ? तू खेती तो करता नहीं। फिर यह कहाँ से आया तेरे पास ?"

वह जरा झिझककर बोला, "तुम लेलो भाभी ! मेरे हाथ लग गया है कहीं से।"

मुझे गुस्सा आगया उसकी बात सुनकर। मैं कड़ककर बोली, "इस दुकान पर चोरी का अनाज नहीं खरीदा जाता है। लेजा इसे उठाकर, वरना गठिया उठाकर जमीन पर फेंक दूंगी और यह सब दाना-दाना होकर बिखर जायगा।"

उसने घबराकर गठिया उठा ली।

वह गठिया लेकर थोड़ी ही दूर गया होगा कि पुलिस आगई और एक सिपाही मुझसे बोला, "क्यों री औरत ! चोरी का माल खरीदती है तू ?"

पुलिस को देखकर मैं पहले तो जरा घबराई लेकिन तुरन्त ही हिम्मत बाँध कर बोली, "दीवान जी ! इस दुकान पर चोरी का माल नहीं खरीदा जाता।"

मेरी बात सुनकर वह कड़ककर बोला, "नहीं खरीदा जाता ! हमें ही चलाती है। कहाँ है वह गठिया जो अभी-अभी तूने खरीदा है ?"

तब तक रामदीन भी आगया वहीं पर। उसे देखकर मेरी हिम्मत

जरा और बढ़ गई। मैं बोली, "यहाँ कोई गठिया-बठिया नहीं है अनाज को मेरी दुकान में।"

रामदास आगे बढ़कर बोला, "आप खुद देख लीजिये दुकान को। इस दुकान में आपको ऐसी कोई चीज नहीं मिलेगी। किसी ने गलत खबर दी है आपको।"

वह सिपाही दुकान में घुसता हुआ बोला, "मिलेगी कैसे नहीं। हमने अपनी आंखों से देखा है चोर को यहाँ लाते हुए उस गठिया को।"

सिपाही ने सारी दुकान छान मारी परन्तु उसे मिला कुछ नहीं। निराश होकर वह दुकान से बाहर निकल आया।

बाहर निकलकर बोला, "साला कहीं इधर-उधर को खिसक गया, हमें गलत खबर दी किसी ने।"

बस वह दिन है और आज का दिन है कि मैंने ताई से फिर कभी बात नहीं की। वह कई बार आई मेरे पास उस दिन की सफ़ाई देने, लेकिन मेरा मन ही नहीं हुआ उससे बातें करने का।"

"तो ताई से तुम्हारा सम्बन्ध यहीं से टूट गया?" मैंने पूछा।

"हाँ टूट ही गया समझो। शांता की शादी में वह जरूर शरीक हुई लेकिन ऐसे ही जैसे और आदमी आते हैं। उस से मुझे कुछ घृणा-सी हो गई। मैं डरने लगी कि कहीं यह कुछ बड़ा अनर्थ न कर बैठे किसी दिन।" वह बोली।

: २१ :

माताजी अपनी खाट पर लेटी-लेटी मंगलू की माँ की सब बातें सुन रही थीं। वह बोलीं, "इनकी ताई लाला है ही बड़ी खतरनाक। देखने में ऐसी सीधी लगती है कि जैसे गऊ, लेकिन डंक ऐसा मारती है जैसे सर्पिणी भी न मारे।

आज आई थी दिन में।"

मैंने पूछा, "ताई ?"

माता जी बोलीं, "हाँ ! उसे पता चल गया था कहीं से तेरे आने का। लेकिन दुखी बहुत है आजकल। उसके आदमी से उठा-बैठा नहीं जाता और लड़के दोनों निकम्मे निकल गये। जुआरी-भंडारी कहीं के। गाँव के छटे हुए गुण्डे हैं दोनों।"

"क्या कहती थीं ताई ?" मैंने पूछा।

"कहता क्या थी ? वही रोना था उसका भी। कहती थी कि लाला से कहना कि शहर में उसके किसी लड़के को कहीं चिपकवादे।" माताजी बोलीं।

मैंने हँसकर पूछा, "आपने क्या जवाब दिया ?"

"मैं क्या जवाब देती ? यह गाँव है बेटा ! यहाँ सबका मन रखना होता है। किसी को दो टूक जवाब नहीं दिया जाता। मैंने कह दिया संध्या को आयेगा, तू स्वयं ही बातें कर लेना।

मेरा खयाल है आती ही होगी अब।"

माताजी ने यह बात कही ही थी कि ताई आ पहुंची। जरा कम दीखने लगा था उसे।

माताजी उसे खाट पर बिठलाती हुई बोलीं, "आजाओ, इधर निकल आओ खाट पर।"

वह माताजी के पास आकर खाट पर बैठ गई। फिर ज़रा आँखें मिचमिचा कर बोली, "आ गया लाला।"

माताजी बोलीं, "आ गया। यह बैठा तो है सामने।"

ताई ने अपनी आँखें फिर मिचमिचाईं और बोली, "बहुत कम दिखाई पड़ने लगा है अब ! और रात को तो बहुत ही कम दीखता है। दिन में तो फिर भी कुछ झाँकली-सी पड़ जाती है।"

माताजी बोलीं, "बुढ़ापे में यही सब कुछ तो होता है। आँखें भी जवाब दे जाती हैं।"

ताई मेरे पास बैठी मंगलू की माँ की ओर गौर से देखती हुई बोली, "और यह कौन बैठी है ?"

ताई की बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "मैं बैठी हूं ताई ! मंगल

की माँ।"

"अच्छा-अच्छा ! राजी तो है बहू !" बड़े प्यार भरे स्वर में ताई ने पूछा।

मंगलू की माँ बोली, "सब दया है आपकी।"

ताई ने पूछा, "मंगलू का कोई खत-पच्चर आया री बहू !"

मंगलू की माँ बोली, "आता क्यों नहीं ताई ! मंगलू, उसकी बहू और बेटा, तीनों मजे में हैं।"

"हाँ-हाँ क्यों नहीं ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। ये गाँव के लोग भी बड़ी ही बे-सिर पैर की उड़ाते हैं। कम्बख्तों को शर्म नहीं आती झूठी बातें करने में। कहते हैं कि मंगलू कोई खत ही नहीं लिखता अपनी माँ को। कोई पैसा भी नहीं भेजता उसके खर्च को। भला ऐसा कहीं हो सकता है। हमारा मंगलू ऐसा नहीं है जैसे गाँव के और लकड़े हैं।" ताई बोली।

मंगलू की माँ बोली, "कहने दो ताई ! जो जैसा कुछ बकता है उसे बकने दो। तुम तो जानती ही हो अपने मंगलू को। क्या वह अपनी माँ को कभी भूल सकता है ?"

"हाँ-हाँ जानती क्यों नहीं हूं मैं मंगलू को ? मंगलू को भी नहीं जानूंगी तो और किसे जानूंगी ? हमारा मंगलू ऐसा कभी नहीं कर सकता। गाँव के लोग बड़े खुदगर्ज़ होगये हैं अब ! किसी को दुखी देखते हैं तो उसका मज़ाक उड़ाने लगते हैं ?" ताई बोली।

माताजी कुछ नहीं बोलीं उनकी बातों के बीच में। मैं भी चुपचाप बैठा सुनता रहा।

मैंने पूछा, "ताई, ताऊ का क्या हाल है ?"

ताई अब मेरी ओर को मुखातिब होकर बोली, "सब ठीक है बेटा ! ज़िन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं किसी तरह। अब चला-फिरा तो जाता नहीं उनसे। लकड़ी के सहारे दो-चार कदम चल-फिर लेते हैं।"

मैंने पूछा, "बीमारी तो नहीं है कुछ ?"

ताई बोली, "वही दमे की बीमारी है। उसी ने तो खाट पर बिठला दिया। वरना अभी उम्र खाट पर बैठने की थोड़े ही है उनकी। उनके साथ

के आदमी जंगल से न्यार के गड्डे लाते हैं उठा-उठा कर।"

मैंने पूछा, "लड़के भी कुछ खातिर तवाजे करते हैं या नहीं अपने बाप की ?"

लड़कों का नाम आते ही ताई गुम हो गई। मंगलू की माँ के सामने वह अपने बेटों की बुराई करना पसंद नहीं करती थी। वह न होती तो शायद वह मेरे सामने स्पष्ट बात कह देती, लेकिन इस समय बोली, "करते ही हैं बेटा ! जैसी जिससे बनती है। न करें तो और कौन आता है करने के लिए ?"

ताई की बात सुनकर मंगलू की माँ मेरी ओर को ज़रा मुस्कराकर बोली, "हाँ-हाँ जरूर करते होंगे। हमारे देवर कोई ऐसे थोड़े ही हैं कि अपने बूढ़े बाप की भी सेवा न करें।

ये गाँव वाले बड़े कमीने लोग हैं ताई ! कहते हैं कि ताऊ खाट में पड़ा-पड़ा सड़ रहा है और उसके बेटे उसकी खबर तक नहीं लेते। मैं तो सबको फटकार देती हूं जो मुझसे इस तरह की बातें करते हैं।"

"फटकार ही देना चाहिए बहू ! अपने घर की बुराई अच्छी बहू-बेटियों को कभी सहन नहीं करनी चाहिए।

गाँव के लोग क्या हमें खाने को देने आते हैं जो इस तरह की बातें करते हैं। इन्हें क्या मतलब कि हमारा बूढ़ा सड़ रहा है या ऐश कर रहा है ?" ताई बोली।

मंगलू की माँ ने कहा, "तुम सच कहती हो ताई ! कोई कितना ही कहे कि तुम्हारे देवर गाँव के गुण्डों में बैठते हैं, जुआ खेलते हैं, शराब पीते हैं, गाँजे के दम लगाते हैं, लेकिन मैं किसी का यकीन नहीं करती। मैं सब को करारी फटकारें बतलाती हूँ जो मुझसे ऐसी बातें करते हैं। मैं उनसे कह देती हूं कि ज़रा अपने-अपने घरों में झांककर देखो क्या हो रहा है वहाँ ?"

"तुम ठीक कहती हो बहू ! गाँव में कौन ऐसा नाक वाला है जिसकी चादर फटी नहीं है। ये कहने वाले पहले अपनी चादरें तो सी लें, दूसरों की तो फिर देखी जायगी।

हमें अपनी चादर नहीं सिलवानी है किसी से।" ताई बोली।

मंगलू की माँ खड़ी होती हुई बोली, "अच्छा ! अब मैं चलती हूं । समय मिला तो फिर आऊंगी । जरा करीम खाँ से रुपये उघाने हैं मुझे । रामदीन को साथ लेकर जाऊंगी जरा, तब देगा वह ।"

मंगलू की माँ चली गई तो ताई जरा सुधर कर बैठी । उसने धीरे से पूछा, "गई मंगलू की माँ ?"

माता जी बोलीं, "गई !"

मैं बोला, "आराम से बैठो ताई ।"

ताई मुस्कराकर बोली, "ठीक बैठी हूं बेटा !" और फिर माताजी की ओर मुंह करके बोली, "सुनीं कुछ तुमने मंगलू की माँ की बातें ! यह कह रही थी कि ताऊ खाट पर पड़ा-पड़ा सड़ रहा है । यह कह रही थी कि मेरे देवर गुण्डों में बैठते हैं, जुआ खेलते हैं, शराब पीते हैं, गाँजे के दम लगाते हैं । गाँव का कोई आदमी कुछ नहीं कहता । यही डायन इस तरह की बातें चारों ओर पूरती फिरती है मेरे बेटों के बारे में ।

मेरे बेटों को क्या तुम जानती नहीं हो, कैसे सीधे-सादे हैं । किसी के साथ छल-कपट करना तो जानते ही नहीं ।"

इतना कहकर ताई जरा आसन बदलकर बैठी और एक लम्बा साँस खींचकर माताजी से बोली, "जी ! भले का जमाना ही नहीं रहा । और सीधे आदमी को तो उल्लू समझते हैं उल्लू ! यह कल की आई मंगलू की माँ हम पुरानी आदमनों को पगली समझती हैं ।"

इसके बाद तीसरे आसन पर बैठकर ताई मेरी ओर रुख करके बोली, "बेटा, काम-काज अच्छा चल रहा है ?"

मैं बोला, "हाँ ताई ! तुम्हारी दया से दो रोटियों में घाटा नहीं है ।"

वह बोली, "भगवान् ने खूब दिया है बेटा ! और अभी खूब देगा । तेरी नेक नीयती तुझे देगी बेटा ! यहाँ तेरे भय्या तेरी जमीन दबाये बैठे हैं और समझ रहे हैं कि वे बहुत अच्छा कर रहे हैं । लेकिन गाँव तो थूक रहा है उनके जनम में । कोई मुंह पर चाहे भले ही न कहे लेकिन जी में तो सब जान रहे हैं कि तेरे भय्या तेरे साथ कैसा बर्ताव कर रहे हैं ।"

अन्त में बोली, "लेकिन बेटा ! सब्र का फल मीठा होता है । तेरा हिस्सा तुझे मिलेगा जरूर । ये तेरे भय्या चाहे लाख सिर पटक कर मर

जायें कि तुझे तेरा हिस्सा न दें; लेकिन देना जरूर पड़ेगा। एक माँ-जाये थे तीनों, तेरे दोनों ताऊ और तेरा बाप। ये तेरे भय्या बदनाम होकर बेईमान भले ही कहला लें लेकिन तेरी जमीन इन्हें छोड़नी ही पड़ेगी।"

ताई बड़े कायदे में बोल रही थी आज। मैंने एक दो-बार उसे दगड़े में जानवरों को चराकर लाने वाले ग्वालों को गाली फटकारते सुना था। कई बार तो उसकी गालियाँ सुनकर मुझे अपने कानों में उंगलियाँ दे लेनी पड़ी थीं।

परन्तु आज जिस रूप में उसने बातें कीं उनसे मैं प्रभावित हुए बिना न रह सका। पहले उसने अपने बेटों को निर्दोष ठहराया। उनके सिर की बदनामी की गठरी को मंगलू की माँ के सिर पर रख दिया।

फिर मेरे दिल और दिमाग के दर्द भरे नासूर को छुआ उसने और सहानुभूति प्रकट की कि वह नासूर अवश्य अच्छा हो जायगा।

अब आगे क्या कहना है उसे यह सुनने के लिए मैं उतावला हो रहा था।

तभी ताई मुस्कराकर बोली, "तो लाला काम-काज पर कितने आदमी लगाये हुए हैं?"

मैं सीधे स्वभाव में बोला, "अंदाजन पाँच-छ: आदमी होंगे।"

सुनकर ताई सोचती रही कुछ देर, फिर हँसकर बोली, "तो अपने भय्यों को भी चिपका लो कहीं अपने ही काम में।"

मैं तुरन्त पैंतरा बदलकर बोला, "ताई हमारे काम में बिला पढ़े-लिखे आदमी काम नहीं कर सकते। हमारा तो किताबों का काम है। यह तो तुम जानती ही हो कि किताबें बिला पढ़े-लिखे नहीं लिखी जा सकतीं।"

ताई समझ गई कि मेरा काम बस किताबें लिखने का है और उसके लड़कों का कभी किताबों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा।

ताई जरा सोचकर फिर बोली, "अच्छा भय्या! तो जब तुम शहर में रहते हो तो क्या अपने भय्यों को और कहीं नहीं चिपकवा सकते?"

मैं बोला, "ताई आजकल किसी को शहर में कहीं चिपकवाना मजाक नहीं है। जिसके यहाँ भी चिपकवाओ वही जमानत माँगता है। और जमानत भी उसकी चाहता है जिसका दिल्ली में मकान हो।

अब मकान तो तुम यहाँ गाँव में बनाकर बैठी हो। वहाँ शहर में जमानत का प्रबन्ध कहाँ से करूँ ?"

ताई फिर नहीं बोली आगे। उसे मुझसे यह उम्मीद नहीं थी। बड़ी आशा लेकर आई थी वह।

अन्त में हताश होकर बोली, "तो क्या तू बेटा कुछ नहीं कर सकता अपने भय्यों के लिए ?"

मैं सोचता रहा कुछ देर। फिर बोला, "अच्छा मुझसे मिलाना अपने बेटों को। मैं देखूँगा कि मैं उनके लिए कुछ कर सकता हूं या नहीं।"

ताई ने गिनकर हज़ार आशीषें दीं मुझे और मेरे बाल-बच्चों को। वह खड़ी होती हुई बोली, "बेटा जनम भर अहसान नहीं भूलूँगी तेरा अगर तूने मेरे एक भी बच्चे को कहीं चिपकवा दिया कहीं।"

ताई चली गई तो माताजी बोलीं, "बेटा दुखी बहुत है यह बुढ़िया। बूढ़े को ज़रा दवाई मिल जाय खाँसी की तो उसमें जान पड़ सकती है। अभी हड्डियाँ ठीक हैं उसकी। एक लौंडा कुछ कमाने लगे तो इनके हलक में भी टुकड़ा जाने लगे।"

मैं ठंडी साँस लेकर बोला, "यह सब तो ठीक है माताजी ! लेकिन इसके लड़कों का चाल-चलन खराब हो चुका है। कहीं शहर से किसी का कुछ उठा लाये तो मैं कहाँ से भरता फिरूंगा ?"

जब भरने की बात आई तो माताजी ज़रा चौंकी। वह घबरा कर बोलीं, "ना बेटा ! ऐसा काम भूल कर भी मत करना। पता नहीं कैसे हम अपनी इज्जत बचाये बैठे हैं।"

मैं हँसकर बोला, "पहले देख तो लूं इसके लड़कों को। कल आयेंगे। फिर सोचूंगा कि मैं क्या कर सकता हूं उनके लिए।"

ताई चली गई और मैं अपने सहन में टहलने लगा। मेरे सामने खड़ा वह नीम हिल रहा था जिसे सुधा ने लगाया था।

मैं माताजी से बोला, "सुधा का नीम अब काफी बड़ा हो गया माताजी !"

माताजी बोलीं, "सुधा भी तो अब बड़ी हो गई है। एक दो वर्ष में शादी के योग्य हो जायगी।"

मैं हँसकर बोला, "सुधा अभी बड़ी कहाँ हो गई माताजी ! तेरह-चौदह वर्ष की ही तो है। शादी का अभी क्या मतलब ? अभी तो वह पढ़ ही रही है।"

माताजी हँसकर, बोलीं, "लड़की की शादी बेटा अठारहवें वर्ष में कर ही देनी चाहिए।"

मैं फिर हँसकर बोला, "हो जायगी—माताजी ! उसकी आप चिंता न करें। सुधा की शादी ठीक वैसी ही होगी जैसी पिताजी करना चाहते थे।"

मैं और माताजी इसी तरह की बातें कर रहे थे कि तभी दुलारी भाभी आ पहुँचीं। मैंने देखा कि दुलारी भाभी का चेहरा इस समय गुलाब के फूल की तरह खिल रहा था।

माताजी ने पूछा, "इस समय कौन मेहमान आगये थे री दुलारी ?"

दुलारी भाभी प्रसन्नतापूर्वक बोलीं, "तुम्हारे नन्दू के रिस्ते वाले आये थे। उन्हीं को खाना खिलाकर आरही हूँ।"

मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "नन्दू के रिस्ते वाले ! क्या ले लिया भाभी नन्दू का रिस्ता ?"

"अभी तो लिया नहीं है लालाजी ! लेकिन लेने का विचार अवश्य है। माजी जोर दे रही हैं शादी के लिए। बूढ़ी आदमन हैं। उनका कहा भी तो टाला नहीं जा सकता।" दुलारी भाभी ने मुस्कराकर कहा।

मैं बोला, "यह बहुत गलत काम कर रही हो तुम भाभी ! मेरी राय में तो तुम्हें नन्दू की शादी तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक वह कुछ कमाने न लगे। और फिर अभी तो पढ़ ही रहा है नन्दू। उम्र भी उसकी सोलह-सत्रह वर्ष से अधिक नहीं होगी। ऐसी क्या जल्दी है रिश्ते की ?"

मेरी बात सुनकर भाभी हँसकर बोलीं, "नन्दू भी राजी नहीं है शादी के लिए। लेकिन माजी की बात कैसे टाली जाय ?"

मैंने पूछा, "और भाई साहब की क्या राय है ?"

दुलारी भाभी बोलीं, "उनकी ! उनकी तो कुछ राय ही नहीं रहती इन मामलों में। वह तो जो कुछ मैं या माजी कहते हैं उसी पर राजी हो

जाते हैं।"

माताजी हँसकर बोलीं, "जैगोपाल वाकई बहुत सीधा आदमी है। ऐसा सीधा आदमी शायद ही गाँव भर में कोई और हो। वह तो घर भी शायद छठे-चौमास ही कभी आता हो।

दिनभर अपने खेतों पर रहता है और संध्या को घेर में जाकर जानवरों की देख-भाल में लग जाता है। उसे फ़ुरसत ही कहाँ है इधर-उधर के झमेलों में पड़ने की ?"

मैं बोला, "लेकिन नन्दू का ब्याह इधर-उधर का झमेला नहीं है माताजी ! यह एक बड़ा काम है। इस पर केवल नन्दू का ही नहीं, पूरे परिवार का भविष्य निर्भर करता है।

अभी लड़का पढ़ रहा है। उसकी पढ़ाई में बाधा पड़ेगी शादी से।"

मैंने यह कहा तो माताजी को मेरी शादी की याद आगई और वह बोलीं, "लाला की यह बात तो ठीक है दुलारी ! मैं भी इसकी शादी दो वर्ष न करती तो यह कुछ और पढ़-लिख लेता।"

माताजी की बात सुनकर दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "बस रहने भी दो माजी ! हमारे गाँव में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे हैं लालाजी। एम. ए. से आगे और क्या पढ़ लेते ?"

दुलारी भाभी की बात सुनकर माताजी हँसकर बोलीं, "बावली ! पढ़ाई एम. ए. पर ही खत्म नहीं हो जाती। आगे भी होती है।"

दुलारी भाभी भी हँसदी माताजी की बात सुनकर। वह बोलीं, "यूं तो आदमी चार जिन्दगियों तक पढ़ता रहे तो भी पढ़ाई खत्म नहीं होगी कभी।

मैं सोचती हूं कि नन्दू की शादी कर ही लूँ। मेरा हाथ बटाने को बहू आ जायगी घर में और ये जो गाँव की औरतें ताना मारती हैं कि बहू आजाने दे जब बतलायेंगे तुझे कि बहू कैसी होती हैं, उन्हें भी ज़रा दिखला दूं कि बहुएँ कैसे रखी जाती हैं।"

दुलारी भाभी का नन्दू की शादी का पक्का इरादा देख कर मैं और कुछ नहीं बोला।

भाभी बोलीं, "आज ताई आई थी क्या यहाँ ?"

मैं मुस्करा कर बोला, "आई तो थी।"

"क्या कह रही थी?" भाभी ने पूछा।

मैं बोला, "कह क्या रही थी बेचारी! अपना दुखड़ा रो रही थी। औलाद निकम्मी हो जाती है तो सचमुच बुढ़ापे में माँ-बाप को बड़ी दिक्कत आजाती है।"

मेरी बात सुनकर त्योरी चढ़ाकर बोलीं, "लेकिन लालाजी! औलाद को निकम्मी बनाने वाले भी तो माँ-बाप ही होते हैं।

अपने दोनों लड़कों को खराब करने की जिम्मेदारी ताई पर ही है। यह बड़ी कुटनी है ताई। इसे तुम मामूली औरत न समझना। इसकी जबान पर क्या है और दिल में क्या है यह कोई नहीं जान सकता।"

मैं हँसकर बोला, "ऐसा क्या जहर भरा है भाभी बेचारी ताई में कि सभी उसकी बुराई करते हैं? मंगलू की माँ भी इसे अच्छी आदमन नहीं बतलाती और तुम आई हो तो तुम भी उसके खिलाफ ही बोल रही हो।"

दुलारी भाभी बोलीं, "ताई है ही नहीं किसी दीन की लालाजी! अपने लड़कों को इसने चोरी करना सिखाया। वे दूसरों की फसलों में से अनाज चुराकर लाते तो यह अपने घर में भर लेती थी। वे कुछ और चुराकर लाये तो उसे भी छिपा लिया।

किसी ने कुछ कहा तो रो-धो कर उसके सिर हो गई। अच्छे-खासे मंगलू की माँ के तीन खेत जोत रहे थे, वे भी इसी ने छुड़वा दिये। यह तो चाहती थी कि मंगलू की माँ इसके किसी लड़के के घर में बैठ जाये और फिर उसकी दौलत से यह ऐश करे।" कहते-कहते दुलारी भाभी को हँसी आगई

मैंने पूछा, "आप हँस क्यों दीं?"

भाभी बोलीं, "हँस यूं दी कि ताई मंगलू की माँ से भिड़ी तो चारों खाने चित्त आई। मंगलू की माँ ने इसका पत्ता ऐसा काटा कि फिर कहीं पता ही नहीं लगा इसका।"

ये बातें चल ही रहीं थीं कि तभी मंगलू की मां भी आ पहुंची और दूर से ही दुलारी भाभी के मुंह से अपना नाम सुनकर हँसती हुई बोली,

"दुलारी को तो मेरी बुराई करने से ही चैन नहीं। इसके मुंह पर जब भी देखो 'मंगलू की माँ' 'मंगलू की माँ' की ही रट लगी रहती है।

अरी गाँव में रहने भी देगी मुझे या नहीं ?"

माताजी बोलीं, "आजा मंगलू की माँ !" और फिर हँसी में ही कहा "दुलारी सचमुच तेरी बड़ी बुराई करती है। अभी-अभी कह रही थी कि मंगलू की माँ ने ताई का ऐसा पत्ता काटा, ऐसा पत्ता काटा कि फिर पता ही नहीं लगा उसका।"

मंगलू की माँ ने ज़रा गम्भीर होकर दुलारी भाभी से पूछा, "क्यों री दुलारी ! मैंने भला क्या पत्ता काटा ताई का ? अगर यही बात ताई ने सुन ली तो बीच दगड़े में लत्ते ले लेगी मेरे।"

दुलारी भाभी हँसकर बोलीं,"हर समय घोड़े-से पर चढ़ी हुई मत चली आया कर मंगलू की माँ ! जरा तसल्ली से बैठ, तब बतलाऊँगी तुझे मैं क्या कह रही थी।"

मंगलू की माँ तसल्ली के साथ पीढ़ा लेकर बैठ गई। वह जानती थी कि दिल से दुलारी उसकी बुराई नहीं कर रही होगी। परन्तु फिर भी बोली, "ले बैठ गई तसल्ली से। अब बतला तू क्या कह रही थी ? क्या मेरे अलावा और किसी की बातेंही नहीं हैं गाँव में तेरे करने के लिए ?"

दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "ताई आई थी अभी।"

"वह तो पता है मुझे। उसके आने पर ही तो मैं उठकर चली गई थी यहाँ से।" मंगलू की माँ बोली।

"अच्छा तो तेरे सामने ही आगई थी वह ? बेचारी ने बड़ी-बड़ी दर्द भरी बातें कीं लालाजी के सामने। और लालाजी को भी बहुत दया आई उसपर।

मैं इन्हें सुना रही थी कि उसने तेरे पर कैसे-कैसे हाथ साफ करने की कोशिश की और कैसे तूने उसका पत्ता काटा।"

दुलारी भाभी की बात सुनकर मंगलू की माँ लोट-पोट होगई। वह खूब हँसी,खूब हँसी, और फिर बोली, "अब पुरानी बातें हो गईं वे सब ! अब क्या रखा है उनमें ?

लेकिन है बहुत ही खतरनाक औरत। मेरे तो सामने भी पड़ जाती

है तो सच जानो काँपने लगती हूं मैं ।"

मंगलू की माँ ने यह अंतिम वाक्य इतनी नाटकीयता के साथ कहा कि मुझे हँसी आये बिना न रह सकी । मैं हँसकर बोला, "अब तो कमर टूट चुकी है ताई की । बल अवश्य हैं कुछ लेकिन रस्सी जल चुकी है ।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "बिलकुल गलत । अभी कुछ नहीं जला है इसका । इसकी हड्डियाँ लोहे की हैं, लोहे की । आज इतने दिन हो गये हमें इसे देखते लेकिन कभी कान तक भी तत्ता नहीं हुआ । बीमारी तक तो इसकी तरफ को आती नहीं कोई, फिर बिगड़ा ही क्या है इसका ?"

"और इसके लड़कों के क्या हाल-चाल हैं ?" मैंने पूछा ।

"लड़के ! डाकू हैं, पक्के डाकू ! ऐसे खतरनाक हैं कि अगर कोई उनके मुंह में समाये तो पूरा ही निगल जायें । और अब तो नम्बरी बदमाशों में नाम हैं उनके । पुलिस की आवाजें पड़ती हैं रोज रात को ।" मंगलू की माँ बोली ।

मंगलू की माँ की बात सुनकर माताजी जरा डरकर मुझसे बोलीं, "बेटा तू ताई के लड़कों के चक्कर में न पड़ना । कहीं और कोई मरा साँप गले में न पड़ जाय । हम तो पहले ही घर वालों के सताये हुए पड़े हैं ।"

माताजी की बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "हरगिज नहीं । उनके चक्कर में फँसकर क्या अपना कारोबार चौपट करना है तुम्हें ? ऐसे नीच आदमियों से तो दूर ही रहना भला हैं ।

अच्छे होते तो क्या जमीन न जोतते मेरी ? क्या दुकान न चलाते मेरी ? आखिर मंगलू में और इनमें अन्तर ही क्या है ?"

कितनी ऊँची और समझदारी की बात कही इस समय मंगलू की माँ ने कि मैं अपने दिल से उसकी सराहना किये बिना न रह सका ।

मैं बोला, "यह बात तुम्हारी सच है मंगलू की माँ ! ताई उन्हें शुरू से ही रोकती तो उनका रास्ता गलत न होता । वे कमाते-खाते होते इस समय और तुम्हारा भी सहारा बना रहता ।

तुम्हारी जमीन जोतनी न छोड़ते तो लगे ही रहते काम पर ।"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "लेकिन अच्छा ही हुआ जो इन्होंने छोड़

दी। जब न छोड़ते तो आज भूमिधर बनकर मूंछों पर ताव देते। भला हो बेचारे रामदीन का कि मेरे वे खेत आज तक मेरे बने हुए हैं। उन खेतों के दम पर तो आज मैं मंगलू की भी परवाह नहीं करती।"

दुलारी भाभी बोली, "यह सच है लालाजी, कि रामदीन ने मंगलू की माँ का बड़ा साथ दिया है। मंगलू वह नहीं कर सकता इसके लिए जो रामदीन ने किया है। ऐसा बेलाग लड़का गाँव भर में दूसरा मेरी नज़र में नहीं आता।"

मंगलू की माँ हँसकर माताजी से बोलीं, "अच्छा और क्या कह रही थी ताई ? मेरी तो मेरे चले जाने के बाद खूब बुराई की होगी उसने ?"

माताजी बात को सँभाल कर बोलीं, "तेरी क्या बुराई करती ताई मंगलू की माँ ! तुझमें बुराई हैं ही क्या ? किसी का खाया तूने नहीं, उलटा खिलाया ही होगा किसी को, फिर तेरी बुराई कोई क्या करेगा ?"

"बुराई करने वाले फिर भी नहीं चूकते जी !" मंगलू की माँ बोली। "जिनकी आदत ही यह है कि दूसरों की बुराई करें, वे न करें तो क्या करें और ?"

मंगलू की माँ की बात सुनकर मैं हँसकर बोला, "नहीं, ताई ने कोई बुराई नहीं की तुम्हारी। वह तो बेचारी अपनी ही दुःख-दर्द की बातें करती रही जितनी देर भी बैठी और कुछ हमारे घर की बातें पूछती रही।"

मैंने यह बात काफी सफाई के साथ कही लेकिन मंगलू की माँ को यकीन नहीं आया कि ताई ने उसकी बुराई नहीं की होगी। वह मुस्कराकर बोली, "की तो अवश्य होगी मेरी बुराई ताई ने लेकिन तुम बतलाना नहीं चाहते। चलो खैर ! करने दो उसे। उसके बुराई करने से मेरा कुछ नहीं बनता-बिगड़ता।"

मैं बोला, "इसमें क्या शक है। बनता-बिगड़ता हमेशा उसी का है मंगलू की माँ जो किसी से कुछ चाहता है। तुम जैसी बेलाग औरत का क्या बन-बिगड़ सकता है ?"

दुलारी भाभी बोलीं, "इसमें कोई संदेह नहीं है लालाजी ! मंगलू की माँ को गाँव भर में कोई यह नहीं कह सकता कि इसने कभी किसी से कोई गर्ज रखी है या किसी से कुछ चाहा है। अपनी ही धुन में मस्त रहने

वाली है यह। बेईमानी से किसी की एक कौड़ी भी लेना यह पाप समझती है।"

मैं हंसकर बोला, "लेकिन सूद तो बहुत करारा लेती है यह। दो रुपये के तीन रुपये दूसरे ही दिन लेना किसी की जेब काटना नहीं तो और क्या है ?"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ तुनककर बोली, "जेब काट लेना कैसे है भय्या ! मैं क्या किसी मरे से कहने जाती हूं कि ले रुपया ? गरज पड़ती है तो खुद ही आते हैं लेने। और जिनसे दो के तीन लेती हूं उन मरों का भरोसा ही क्या है ? डूब भी तो सकती है मेरी रकम। कितनी बड़ी जोखम लेती हूं मैं यह तुम नहीं जानते।"

दुलारी भाभी मंगलू की माँ के समर्थन में बोली, "इसमें भी कोई शक नहीं। मरे करीम खाँ जैसे को तो मैं चार आने पैसे भी नहीं दूं चाहे चार आने के चार रुपये देने को कहे। यह मंगलू की माँ का ही कलेजा है जो दो-दो रुपये दे देती है उसे।

लेकिन दे देती है यह सब रामदीन के भरोसे पर।"

मंगलू की माँ बोली, "यह ठीक कहा दुलारी ने कि मैं जो कुछ भी करती हूँ, करती रामदीन के ही भरोसे पर हूँ। रामदीन न हो तो मेरी एक कोड़ी भी न पटे। मुझे एक दिन में खाजायें गाँव के लोग।

रामदीन का नाम सुनकर सब थर्राते हैं। बड़ा ही सजीला जवान है रामदीन भय्या ! उसके सुन्दर गठे हुए बदन को देखने से भूख भागती है।

और ताई के लड़के तो उससे ऐसे थर्राते हैं जैसे सिपाही से चोर।"

मैं हँसकर बोला, "ताई ने तुम्हारे दिल को बहुत दुखाया मालूम देता है। इसीलिए हर बात में वह तुम्हें याद रहती है।"

"दिल दुखाने की बातें बस पूछो नहीं मुझ से। आज तो हंसी आती है उन्हें याद करके लेकिन जब वे गुजरी थीं मुझपर तो ऐसा लगता था कि मैं अब हटी अपने रास्ते से, मैं अब गिरी गहरी खंदक में। जिस दिन ताई के दोनों लड़के मेरे पास बुरी नीयत से आये थे उस दिन बस परमात्मा ने ही लाज रखली मेरी. वरना दो हट्टे-कट्टे जवान अगर लिपट जाते तो मैं

क्या कर लेती उनका ?

इज्जत खराब होने के बाद कौन पूछता है ? मैं रोती और लोग हँसते। मैं अपने दर्द की बात कहती और लोग मजाक उड़ाते।"

दुलारी भाभी मुस्कराकर बोली, "तू तो पगली रही मंगलू की माँ ! बैठ जाती ना ताई के एक लड़के के घर में। क्या बिगड़ जाता तेरा ? उसका घर बस जाता और ताऊ का नाम चल जाता आगे। तीन कमाने वाले मिल जाते तुझे। तेरी जात में तो औरतें एक को छोड़कर दूसरे के घर बैठ ही जाती हैं।"

मंगलू की माँ समझ रही थी कि दुलारी यह बात मजाक में कह रही थी परन्तु फिर भी क्रोध प्रदर्शित करती हुई बोली, "बैठ जाती होंगी लुच्ची-लफंगी। सती औरतें नहीं बैठतीं। शादी एक ही होती है दुलारी ! आदमी का सुख बदा होता मेरे भाग्य में तो क्यों वह मेरी बात न मानते, और क्यों मेरे बाप के घर जाते ?

होनहार बलवान होती है !"

होनहार के सामने दुलारी भाभी का भी मस्तक झुक गया। वह गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "इसमें क्या शक है मंगलू की माँ ! मंगलू के बाप को होनी ही वहाँ खींचकर ले गई। रामायण में लिखा है :

तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आप न आवै ताहि पर, ताहि तहाँ ले'जाय ॥

भाभी के मुख से चौपाई सुनकर मैं बोला "भाभी रामायण का पाठ तो जारी होगा तुम्हारा ?"

दुलारी भाभी प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराकर बोली, "नित्य नियम से लालाजी ! चाहे कोई काम छूट जाय लेकिन रामायण का पाठ नहीं छूट सकता। नियम से एक घंटा सुबह रामायण का पाठ अवश्य करती हूं।"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "रामायण तो दुलारी को सारी रटी पड़ी है। तुम जहाँ से भी कहो, सुना सकती है यह।"

मैंने पूछा, "क्या सच है यह बात भाभी ?"

भाभी बोलीं, "सब तो नहीं परन्तु काफी भाग कंठस्थ हो गये हैं।

नित्य जो पढ़ती हूं इसी से याद हो गया है सब ।"

अंत में मैं हँसकर बोला, "चलो कुछ भी सही । दोष चाहे सब ताई का ही हो लेकिन वह दुखी अवश्य है इस समय । आजकल उसके दिन बड़ी बेचैनी से कट रहे हैं ।"

दुलारी भाभी ने मेरी इस बात को स्वीकार किया और बोली, "इसमें कोई संदेह नहीं है लालाजी ! दुखी बहुत है वह और उसका छोटा लड़का भी अब महसूस करने लगा है कि उसने गलती की जो मंगलू की माँ से बिगाड़-खाता कर लिया । वरना पेट तो भरता ही रहता । कपड़े-लत्ते से भी तंग न होना पड़ता, पुलिस की आये दिन की गालियाँ और फटकारें भी न सुननी पड़तीं ।"

मंगलू की माँ ने दुलारी भाभी की इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया । वह मुझसे बोली, "तो कल सुबह तुम शहर अवश्य चले जाओगे ?"

मैंने कहा, "बिलकुल । दो दिन निकल गये यहाँ । सोचकर तो आया था कि दूसरे ही दिन लौट आऊंगा लेकिन तहसील से कुछ नकलें लेनी थीं, उनमें देर लग गई ।"

मंगलू की माँ सहानुभूति प्रकट करते हुए बोली, "यह मुकदमा भी भय्या ! तुम्हारी जान का लेवा ही हो गया ।"

मैं हँसकर बोला, "जान तो ले ही ली इसने पिताजी की । इसी के चक्कर में उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दस वर्ष खराब कर दिये । इसके चक्कर में भतीजों की गालियाँ खाईं । उन भतीजों की, जिन्हें कभी गोद में खिलाया था, अंगूर खिलाये थे, मिठाइयाँ खिलाई थीं, लाहौर और कराची तक की सैर कराई थी, मार भी खाई और खेतों में घसीटे भी गये उन्हीं के हाथों । रुपये-पैसे से भी हाथ धो गये और यह मुकदमा अभी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है ।

कभी-कभी तो मैं सोचता हूं कि यह मेरी जिन्दगी में भी पूरा होगा या नहीं । कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन मैं भी चलता बनूं और यह मुकदमा ज्यों-का-त्यों बना रहे ।

यदि ऐसी नौबत आई तो मैं तो बच्चों से कह जाऊंगा कि बेटा इस गाँव और इसके मुकदमे की ओर मुंह करके भी न देखना । अपनी मेहनत

और मजदूरी पर भरोसा रखना। तुम्हें काबिल बना दिया है। चैन से कमाना और खाना।"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी संजीदगी से बोली, "निपटेगा क्यों नहीं लालाजी ! यह मुकदमा ! ऐसा क्या यही अमर होकर आया है ?"

मैं हँसकर बोला, "निपट तो यह आज सकता है भाभी ! लेकिन मैं गुण्डागर्दी नहीं करूंगा। कायदे-कानून से ही काम लूंगा। देखता हूं हमारे देश के कायदे कानूनों में कितनी शक्ति है। वे कहाँ तक शांति-प्रिय आदमी का साथ देते हैं ?"

मंगलू की माँ बोली, "भय्या ! मंगलू का ध्यान रखना। अगर कहीं मिल जाये तो उसे मेरी दशा बतला देना तुम। उससे कह देना कि तेरी वह माँ, जिसने मेहनत और मजदूरी करके तुझे पाला और बड़ा किया, जिसने तेरे बाप की हर धरोहर को ज्यों-का-त्यों तेरे हाथों में सौंप दिया, उसका शरीर अब थक गया है। तुझसे कुछ चाहती नहीं वह। बस यही चाहती है कि उसका दिल न जला तू। उसकी बद्दुआ न ले तू। अब अधिक दिन की मेहमान नहीं है वह।" कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू भर आये।

मैं बोला, "इतनी अधीर न हो मंगलू की माँ ! मैं उसे अवश्य बुलाऊंगा अपने पास और कहूंगा कि तुम जाकर अपनी माँ से मिलो।"

फिर मैंने पूछा, "मंगलू की माँ ! वह धरोहर कौन-सी थी मंगलू के पिताजी की जो तुमने उसे दे-दी।"

मंगलू की माँ बोली, "वे ही चार हजार रुपयों में से बचे दो हजार जो मैं अपने बाप के घर से चुराकर लायी थी।"

मैंने पूछा, "तो वे तुमने मंगलू को देदिये ?"

मंगलू की माँ लम्बा साँस खींचकर बोली, "दे क्या दिये, ले लिये चालाकी से उसने।"

मैंने हँसकर पूछा, "वह कैसे ?"

मंगलू की माँ बोली, "वह ऐसे कि एकदिन सुबह-ही-सुबह क्या देखती हूं कि मंगलू चला आरहा था शहर से। उसे घर की ओर आते देखकर मेरा डूबा हुआ दिल आप-से-आप उभरकर ऊपर आगया। मैंने दुबारी में

जाकर प्यार से उसकी बलैंया लीं और घर में लाकर पलंग पर बिठलाया। उसी निवाड़ के पलंग पर जिसपर कभी उसका बाप सोया करता था।

दूध का बेला दिया उसके हाथ में और उसके पलंग के पाये से लग कर बैठ गई।

जब उसने दूध पीलिया तो मैंने पूछा, "बाल-बच्चे सब राजी हैं?"

वह बोला, "सब मज़े में हैं माँ।"

मैंने पूछा, "आज कैसे याद आगई अपनी बूढ़ी माँ की?"

मंगलू बोला, "एक काम आया हूं माँ तेरे पास।"

मैंने पूछा, "ऐसा क्या काम आपड़ा रे मंगलू जिसे तेरी बहू नहीं कर सकी। मुझसे तो बड़ी अक्ल वाली है वह।"

मंगलू बोला, "अक्ल का काम नहीं है वह माँ!"

"तो फिर काहे का काम है?" मैंने जरा सचेत होकर पूछा।

मंगलू बोला, "एक प्लाट बिक रहा था वहीं जहाँ मैं रहता हूं। बहुत मौके का प्लाट था। मैंने दो सौ रुपये बयाने के देकर रोक लिया था उसे। सोचा था माँ के नाम करा दूंगा। तू अठारह सौ रुपये देकर उसको अपने नाम रजिस्ट्री करा ले माँ?"

मैं सोच-विचार में पड़ गई मंगलू की बात सुनकर। मेरे पास उस समय केवल दो ही हजार रुपये थे। और जो कुछ भी मैंने अपनी मेहनत से कमाया था वह सब शांता की शादी में लगा दिया था।"

कहते-कहते उसे अपनी बेटी शांता की शादी की याद आगई। वह मुस्करा कर बोली, "शांता की शादी भय्या मैंने बड़े ठाठ-बाट की की थी। नकद पाँच हजार रुपया खर्च किया था।"

मैं त्योरी चढ़ा कर मुस्कराता हुआ बोला, "पाँच हज़ार!"

मंगलू की माँ बोली, "अपनी माताजी से पूछ लो। कितना सुनहरी जेवर चढ़ाया था मैंने? कैसे कपड़े-लत्ते दिये थे और बारात को खाना कैसा दिया था। असली घी दिया था हर चीज में। तश्तरियाँ भी लाजवाब बनवाई थीं। और सारे गाँव की दावत की थी। तुम्हारे पिताजी भी शरीक हुए थे दावत में।

सारा गांव देखता-का-देखता रह गया था।

सब की जबान पर यही था,—'बड़ा धन छोड़कर मरा था मंगलू का बाप। शांता की शादी में मंगलू की माँ ने दिल खोलकर रख दिया अपना।'

ये शब्द मेरे कानों में बार-बार पड़े। उन्हें सुनकर सच जानो मैंने अपनी तेरह वर्ष की तपस्या को सफल माना। मेरा दिल खिल गया। मेरी आत्मा को कितनी प्रसन्नता हुई इसका क्या बयान करूं तुम्हारे सामने ?"

कहती-कहती वह इतने जोर से हँसी कि हँसती ही रही बहुत देर तक और मैं देखता रहा। सोचता रहा कि यह पागल अवश्य हो जायगी एक दिन यदि मंगलू न आया इसके पास।

वह बोली, "पागल नहीं हूं मैं। यह न समझना तुम कि मैं पागलपन में हँस रही हूँ। मैं तो दुनियाँ पर हँस रही हूं। सोचती हूं कि दुनिया कैसी है यह ?

ताऊ और दूसरे खान्दानी लोग, जो मंगलू के बाप के मरने के बाद से शांता की शादी तक कभी यह पूछने भी नहीं आये थे कि मुझे दोनों समय रोटी भी मिल रही थी या नहीं, वे भी दावत के दिन मुंह फुला-फुला कर बैठ गये।

सब यही सोचते थे कि यह मौका अच्छा है मंगलू की माँ से अपने सामने नाक रगड़वाने का। लेकिन भला हो रामदीन बेटे का कि उसका सहारा लेकर मैंने सबके मुंह पर थूक दिया।

सब अपनी-अपनी मूंछें पैनाये बैठे रहे कि अब आयेगी मंगलू की माँ उनकी खुशामद करने के लिए दावत में शरीक होने को। लेकिन मेरी बला जाती थी वहाँ। मैंने भी सोच लिया कि जो नहीं आते हैं, वे न आयें। मुझे क्या खाने को देते है वे ? मैं उनकी जागीर में नहीं बसती।"

मैं हंसकर बोला, "तो उनके गाल फूले ही छोड़ दिये तुमने ! ताऊ बेचारे की जबान से बूंदी का एक दाना भी नहीं लगा ?"

दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "यह काम वाकई मंगलू की माँने कमाल का किया लालाजी ! ऐसे मक्कार आदमियों को छेड़ना ही नहीं चाहिए। मैं भी इस बार सोचे बैठी हूं कि नन्दू की शादी में किसी भी गाल फुलाने

वाले आदमी को नहीं छेड़ूंगी। लड़की की शादी में मैं सब देख चुकी हूं कि खान्दान के लोगों में कितना प्यार और कितनी हमदर्दी है। सब दूसरों की पत्तलें उछालने को तुले बैठे रहते हैं।"

मंगलू की माँ बोली, "भय्या! खूब ठाठ से सब काम हुआ और भगवान् ने सब पूरा किया।"

माताजी जो दूर खाट पर लेटी-ही-लेटी ये सब बातें सुन रही थीं बोलीं, "शांता की शादी वाकई मंगलू की माँ ने खूब बढ़िया की थी। मैंने शहरों की दावतें भी देखी हैं और गाँव की दावतें भी। मंगलू की माँ ने जो दावत की थी वह शहर की दावतों से किसी भी तरह कम नहीं थी।"

माताजी के मुंह से अपनी तारीफ सुनकर मंगलू की माँ को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसका दिल खिल गया। उसके चेहरे दर रौनक आगई। वह प्रसन्न-मुद्रा में बोली, "हलवाई मैंने शहर से ही बुलवाया था। यहाँ के हलवाइयों का मुझे भरोसा नहीं था। मैं डरती थी कि कहीं हमारे ही खान्दानी इनसे मिलकर मेरी एन समय पर नाक न कटवा दें।"

"बड़ी समझदारी से काम लिया तुमने। शादी के अवसर पर हलवाई बड़ी-से-बड़ी बदमाशी करा सकते हैं।" मैंने कहा।

वह हँसकर बोली, "ताई की कहानी नहीं सुनी तुमने। मुझे सुनाई थी उसने। और उस दिन मैंने गाँठ बाँध ली थी कि लड़की की शादी में यहाँ का हलवाई नहीं बुलाऊँगी। ताई कहती थी कि उसकी शादी में हलवाई ने उनके दुश्मनों से मिलकर खाने में ज़हर डलवा दिया था।

कई बाराती मर गये थे उस बारात के।

शादी हो गई वह लेकिन लड़की और लड़के के परिवारों के सम्बन्ध सर्वदा के लिए खराब हो गये।

ताई को ब्याह कर आने के बाद फिर कभी अपने पिता का घर देखना नसीब नहीं हुआ।"

मुझे हँसी आई ताई की बात सुनकर। मैं बोला, "यह भी खूब रही। तुमने शादी के बाद कभी पिता के घर स्वयं जाना पसंद नहीं किया और ताई बेचारी जन्म भर तरसती रही अपने पीहर के लिए और उसे ताऊ ने नहीं भेजा।"

मंगलू की माँ हँसकर बोली, "भेजा नहीं कह रहे हो तुम, ताऊ तो अब भी नहीं भेजते। लेकिन ताई को ताऊ प्यार बहुत करते हैं। पर अब उनका प्यार सूखा ही रह गया है क्योंकि बेचारे खुद खाट पर पड़े हैं और लड़के दोनों आवारा हैं। गुण्डागर्दी करने से ही फ़ुरसत नहीं मिलती उन्हें।

सुना है आजकल तो देशी शराब खींचने का काम करते हैं वे और पुलिस की मदद से उसे दिल्ली में बेचकर आते हैं।"

मैं मुस्कराकर बोला, "तुम्हें ताई के लड़कों की बुराई करने में जितना आनंद आता है उतना अपनी कहानी कहने में नहीं। मैं देखता हूं कि तुम हर बात में खींच-तानकर ताऊ, ताई और उसके बेटों को घसीट लाती हो।"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी बोलीं, "बात ठीक है मंगलू की माँ की। तुम्हारे भय्या भी कह रहे थे कि ताऊ के लौंडों ने हद कर रखी है बदमाशी में। कल रात का ही किस्सा है कि उन्होंने ताऊ के बड़े लड़के को अपने खेत से न्यार काटते हुए पकड़ लिया। पैरों में गिर पड़ा वह। रहम आ गया, छोड़ दिया।"

दुलारी भाभी की बात सुनकर मैं अपने मन में ज़रा और सतर्क हो गया। ताऊ के बेटों से मुझे भी थोड़ा डर-सा लगने लगा।

मैं बात बदलकर मंगलू की माँ से बोला, "हाँ तो मंगलू आया शहर से।"

वह हँसकर बोली, "मैंने मंगलू से कहा, बेटा ! सोच लूं मैं आज रात को, कल सुबह जवाब दूंगी तुझे।"

"अच्छा माँ !" कहकर मंगलू घर से बाहर चला गया। कोने वाले पनवाड़ी की दुकान पर जाकर बैठ गया। एक पान का टुकड़ा लेकर मुंह में रखा और बीड़ी सुलगाकर जोर का कश खींचा।

मैं रात भर विचारों की दुनियाँ में उलटती-पुलटती रही। सोचती रही कि क्या करूं ? अगर बेटे को रुपया नहीं दिया तो जो गाँव-बस्ती के लोग सुनेंगे वे यही कहेंगे कि बुढ़िया अपने बेटे के भी काम न आई। देखेंगे, यह मरते समय रुपयों को अपनी छाती पर ले जायगी !

फिर यदि मैंने रुपये न दिये तो मंगलू के दो सौ रुपये, जो उसने बयाने के दे रखे हैं, मुफ्त में मारे जायेंगे।

अपने को ज़माने के तानों से बरी करने और मंगलू के दो सौ रुपये बचाने के लिए मैंने यही निश्चय किया कि मैं जमीन की अपने नाम रजिस्ट्री करा लूंगी।

दूसरे दिन सुबह मंगलू बोला, "चल माँ ! रजिस्ट्री आज ही करानी है।"

मैं बोली, "चल।" मैंने दो हजार रुपये साथ ले लिये।

मंगलू ने पूछा, "रुपये ले लिये माँ ?"

मैंने कहा, "ले लिये।"

मंगलू बोला, "तो ला मुझे दे दे।"

"तुझे क्यों दे-दूं मंगलू ! वैसे सब तेरा ही है पर जीतेजी यह जान-ले तू कि मैं उस डायन की मोहताज होके नहीं रहूंगी। रजिस्ट्री जमीन की मैं अपने ही नाम कराऊंगी।" मैंने कहा।

मंगलू को बुरी लगी मेरी बात लेकिन उस समय वह उसे शर्बत के घूंट की तरह पीगया और बोला, "तू अपने ही नाम करा लेना माँ ! तेरे नाम जो चीज़ है वह क्या मेरी नहीं हैं ? मुझे छोड़कर मेरी माँ और किसको देगी ?

मैं लट्टू होगई मंगलू की भोली बातों पर। मुझे पता नहीं था तब कि मंगलू के भोलेपन में उसकी बहू की गहरी चाल छिपी हुई थी। उसने मंगलू को खूब पढ़ाकर भेजा था। कह दिया था कि माँ डायन के पेट में घुस जाना।"

मुझे हँसी आगई मंगलू की माँ की इस बात पर। मैं बोला, "क्या मंगलू बिना अपनी बहू के पढ़ाये तुमसे ऐसा नाटक स्वयं नहीं कर सकता ? हर काम में तुम बहू बेचारी को ही क्यों घसीट लाती हो ?" मैंने कहा।

"क्यों घसीट लाती हूं, यह बात अभी सामने आजाती है तुम्हारे। तुम सुनते चलो मेरी बात।"

मैं बोला, "कहिये।"

मंगलू की माँ, "मैंने शहर पहुँच कर बच्चे के लिए मिठाई ली लेकिन

उस डायन ने मेरी ले जाई हुई मिठाई अपने बच्चे को नहीं खाने दी और आप भी सीधे मुंह नहीं बोली मुझसे।"

मंगलू ने उससे कहा, "माँ आई है। खाना बन गया क्या ?"

मंगलू की बात सुनकर भी वह एक शब्द नहीं बोली ! सीधी कमरे से उठकर रसोई में चली गई और कुछ देर में एक थाली में दो मोटे-मोटे घेसले, एक गंठी प्याज की और जरा-सा नमक रख कर भेज दिया।

यह खाना देखकर मेरे तन-बदन में आग लग गई। अपने खाने की मुझे चिंता नहीं थी। पर मैंने सोचा कि इस साँपन ने मेरे बेटे के गले में फँसकर पिंजर कर दिया उसे और आप देखो कैसी हथनी-सी झूम-झूम कर चलती है। मेरा लाल जो कुछ भी कमाता है वह सब इसी के हलक में उतर जाता है। मेरे लाल की किस्मत में तो दिन-रात पिलना और प्याज से ये मोटे-मोटे टिक्कड़ खाना रह गया।

मंगलू की लड़की दूसरी थाली में वैसे ही दो रोटियाँ और एक प्याज रखकर मंगलू के लिए ले आई।

यह सब देखकर मैं बोली नहीं कुछ भी। खून का घूंट पीकर रह गई। मैंने दो रोटियाँ खालीं तो फिर कोई यह पूछने वाला नहीं था कि मैं और लूंगी या नहीं।"

मंगलू ने ही पूछा, "मां और लेगी रोटी ?"

मैं हँसकर बोली, "दो रोटी से मेरा क्या बनता है रे मंगलू ! बूढ़ी जरूर हो गई हूं मैं लेकिन अभी खुराक नहीं घटी है मेरी।"

मंगलू अपनी बहू की ओर मुंह करके बोला, "माँ के लिए रोटी और भेज दे।"

"बस इतना कहना था मंगलू का कि वह हथनी-सी डायन रोटियों का खटव्वा उठाये चली आई सामने और खटव्वा-का-खटव्वा धरती पर रख कर बोली, 'लो सब खा लो तुम माँ बेटे ही !' और खुद कमरे में चली गई।" मंगलू की माँ ने कहा।

मैं सुनता रहा चुपचाप बैठा।

वह बोली, "मेरे हाथ का टुकड़ा हाथ में ही रह गया। भगवान् की

कसम ले-ले जो मैंने फिर एक टुकड़ा भी खाया हो।"

मंगलू खटव्वे में से रोटी उठा कर बोला, "खा माँ! इसकी तो आदत ही ऐसी है। बुरी नहीं है यह पर कभी-कभी इसे पागलपन सवार हो जाता है। मेरी बहन ही अगर कभी ऐसा पागलपन करे तो क्या तू उसे नहीं भरेगी?"

"मेरा मन ग्लानि से भर गया था। मेरे हलक का टुकड़ा हलक में ही अटक रहा था। मैं अपने मन में कह रही थी कि हे भगवान् तूने मुझे मेरे किस पाप की यह सजा दी है जो यह डायन मेरे घर में भेज दी। मेरा माल मुझ से छीन लिया इसने।

में बोली नहीं एक शब्द भी। कलेजा थाम कर रह गई अपना। बड़ी ही कठिनाई से एक घूंट पानी पीकर अपने हलक में अटका हुआ कौर मैंने अन्दर को सटका और फिर पानी का गिलास थाली के पास रखकर बोली, 'मंगलू! तू रोटी खाले और चल फिर कचहरी चलें। तेरा काम करके मैं आज ही गाँव वापस चली जाऊंगी।'

मंगलू नीची गर्दन किये रोटी खाता रहा। रोटी खाकर उसने भी पानी पिया और फिर वह मुझे साथ लेकर कचहरी को चल दिया।

मैं घर से चली तो मंगलू की बहू ने देखा भी नहीं मेरी ओर। अपने बेटे को गोद में लेकर भीतर के कमरे में चली गई।"

कचहरी पहुंची तो मंगलू मुझ से बोला, "माँ! वकील साहब कहते हैं कि जमीन की रजिस्ट्री मेरे ही नाम हो सकती है।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

वह बोला, "बयाने की रसीद मेरे नाम से है। जमीन वाला कहता है कि अगर किसी दूसरे के नाम रजिस्ट्री कराओगे तो मैं दो हजार में नहीं कराऊंगा। सौ रुपये और अधिक लूगा।"

मंगलू की बात सुनकर मुझे क्रोध आगया। मैं उसकी चालाकी को समझ कर बोली, "तू रहने दे रजिस्ट्री कराने को। मुझे नहीं खरीदनी है यह जमीन। तू मुझे गाँव को जाने वाली मोटर में बिठला दे।"

मेरी बात सुनकर मंगलू के होश उड़ गये। उसे पसीना आगया। वह बोला, "माँ! तू मेरा भी विश्वास नहीं करती!"

मैं बोली, "तेरा विश्वास क्या करूं रे मंगलू ? तू अपनी बहू का गुलाम है। तेरी नाक की नकेल तेरी बहू के हाथों में है। वह जिधर को भी तुझे नचाना चाहे नचाती है। तेरे साथ मैं भी उसके हाथों में अपनी नकेल पकड़ा दूं, यह मैं कभी नहीं करूंगी। मरते दम तक नहीं करूंगी, यह समझ ले तू।"

अन्त में मंगलू बोला, "अच्छा माँ ! जैसा तू ठीक समझे वैसा ही कर। मैं कुछ नहीं कहूंगा अब। तू अपने ही नाम पर रजिस्ट्री कराले जमीन की।"

मैं हँसकर बोली, "जमीन वाला सौ रुपये अधिक तो नहीं लेगा।" और फिर मैंने आगे बढ़कर उस जमीन वाले से पूछा। वह हँसकर बोला, "माजी ! मुझे क्या ? मुझे तो अपने अठारह सौ रुपये चाहिएँ। चाहे आप अपने नाम रजिस्ट्री करायें या अपने बेटे के नाम।"

ज़मीन की रजिस्ट्री मेरे नाम हो गई। मैंने अठारह सौ रुपये जमीन वाले को दे दिये और मैं मंगलू के साथ उनके घर आई।"

मैं हँसकर बोला, "तब तो तुमने बाजी जीत ली मंगलू की माँ ! मंगलू की बहू की सब चाल यहीं बेकार करदी।"

मेरी बात सुनकर दुलारी भाभी हँसकर बोली, "अब वह इसके पंजों से निकल चुकी है लाला जी ! उसकी चाल-पट्टी बेकार करनी अब इसके घूते की बात नहीं रही।"

मैंने पूछा, "क्यों ! रही कैसे नहीं ? जब रजिस्ट्री इन्होंने मंगलू के नाम नहीं होने दी तो फिर तो उसे झख मारकर इसकी खुशामद करनी ही होगी।"

इस पर दुलारी भाभी इठला कर बोली, "अब खुशामद का ज़माना नहीं रहा है लालाजी ! अब तो प्यार का जमाना है ! प्यार से कोई सास अपनी बहू को चाहे जितना भी दबाले लेकिन ऐसे नहीं दबा सकती जैसे मंगलू की माँ दबाना चाहती हैं।

यह अपने ज़ेवर अपने ज़मीन को सिर पर रखकर नाचती फिरे, उसे क्या मतलब ? यह अपने बेटे को दे या ना दे, उसकी बला से। वह मजे में दो रोटियाँ खा रही है। उसका बच्चा और उसका आदमी उसके

पास हैं। ये ही तो उसकी दौलत हैं।"

मैं मंगलू की माँ से बोला, "जमीन की रजिस्ट्री तुम्हारे नाम हो गई।"

मंगलू की माँ बोली, "रजिस्ट्री हो गई, लेकिन मंगलू का मुँह चढ़ गया। मैं उसके साथ घर पहुंची तो उसकी बहू ने पूछा, 'हो गई रजिस्ट्री' ?"

मंगलू दबी जबान से बोला, "हो गई।"

उसने पूछा, "किसके नाम ?"

मंगलू बोला, "माँ के नाम।"

यह सुनते ही वह साँपन की तरह फुँकार कर बोली, "तो ठीक है। माँ के नाम हुई है तो इस पर हवेली भी माँ ही खड़ी कराले। मैं अपनी कमाई की एक कौड़ी भी अब इसमें नहीं लगने दूँगी।"

मैं खड़ी-खड़ी सुनती रही उसकी बात। फिर धीरे से अपना वह मिठाई का झोला उठाया, जिसे मैं मंगलू के लड़के के लिए ले गई थी और घर से बाहर होगई।

कोई बोला तक नहीं मुझसे।

मैं मोटर के अड्डे पर आई। मंगलू नहीं आया मेरे साथ।

मैंने उस दिन मंगलू पर भी थूक दिया था। समझ लिया कि मेरे कोई औलाद ही नहीं हुई।"

दर्द भरे स्वर से मंगलू की मां कह रही थी।

उसकी बात सुनकर मेरा भी दिल जरा भारी हो उठा। मुझे मंगलू के दुर्व्यहार पर खेद हुआ। उसे अपनी माँ को मोटर में बिठलाने तो आना ही चाहिए था मोटर स्टेंड तक। जिस माँ को वह गाँव में लेने आया था उसे यूंही छोड़कर घर में बैठे रह जाना, उसे उचित नहीं था। ऐसा भी क्या बहू का दबाव कि माँ की ममता ही न रही उसके दिल में।

यह सुनकर दुलारी भाभी गम्भीरता पूर्वक बोली, "यह मंगलू ने वाकई बहुत बुरा किया। उसे अपनी माँ के साथ आना ही चाहिए था। इसे यहाँ से यह कहकर ही तो वह ले गया था कि माँ रजिस्ट्री तू अपने

नाम करा लेना। फिर अगर इसने अपने नाम रजिस्ट्री कराली तो इसमें बुरा मानने की बात ही क्या थी ?"

भाभी की बात सुनकर मंगलू की माँ के दम-में-दम आया। वह रुँआसी-सी होकर बोली, "इसीलिये तो मैं कहती हूं दुलारी कि मंगलू अपनी बहू का गुलाम हो गया है। वह डायन उसके दिल और दिमाग पर बुरी तरह छा गई है। उसने उसे दुनियाँ से अलग कर दिया है। उसकी दुनियाँ अब उसकी औरत और उसका बच्चा ही है ?"

कहते-कहते मंगलू की माँ को क्रोध आ गया। वह आग-बगूला होकर बोली. "मैं तो कहती हूं भगवान् उसके बच्चे और उसकी बहू को घड़ी की चौथाई में उठा ले और फिर देखूं मैं उस पाजी को बिलखते और तड़फते।"

इतना कहकर वह पागलों की तरह जोर से हँस पड़ी। हँसती रही, हँसती रही, बहुत देर तक हँसती रही।

दुलारी भाभी बोली, "पागल हो गई है मंगलू की माँ ? ऐसे क्यों हँसती है बार-बार ? मंगलू और उसकी बहू को समझायेंगे लालाजी ! मुझे विश्वास है कि वे अवश्य समझ जायेंगे। तेरी खबर अवश्य लेंगे वे।"

दुलारी-भाभी की बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "मेरी खबर ! मेरी खबर तो अब भगवान् ही लेगा दुलारी ! वे क्या लेंगे ? उन्हें लेनी होती तो मेरी यह दशा ही क्यों होती ?"

"तू अभी मंगलू की बहू को नहीं पहचानती। उसे मैं जानती हूं। मैं मर भी जाऊंगी तो उसकी फूटी आँखों में तू देख लेना एक आँसू भी नहीं आयेगा। उलटी खुश ही होगी वह अपने मनमें कि चलो अच्छा ही हुआ। पाप कटा।"

मैं बात को बदलकर बोला, "तो तुम फिर गाँव चली आईं ?"

मंगलू की माँ बोली, "और क्या करती भय्या ! जिन्दगी के जितने दिन बाकी हैं वे तो काटने ही हैं कहीं रहकर। मैं जाती और कहाँ।

यहाँ रामदीन और चमेली का तो सहारा है ही मुझे। जिसका कोई सहारा नहीं होता है उसे भी भगवान् कुछ-न-कुछ सहारा भेज ही देता है।

गाँव के अड्डे पर मोटर से उतरी तो रामदीन मिल गया। मुझे देख

कर बोला, "कहाँ से आ रही हो बुआजी ?"

मैंने कहा, "गाजियाबाद गई थी मंगलू के साथ।"

"मंगलू के साथ ?" उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा। क्योंकि मैं रामदीन और चमेली से बिला सलाह किये ही चली गई थी उसके साथ।

मैं लम्बा साँस खींचकर बोली, "हाँ मंगलू आया था कल।"

"मंगलू आया था ?" उसने फिर आश्चर्य से पूछा, "और मिलकर भी नहीं नहीं गया मुझसे।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया उसे।

अड्डे पर करीम खाँ अपनी रिक्शा लिये खड़ा था मैं और रामदीन उसी में बैठ गये।

गाँव में आये अभी चार दिन ही हुए थे कि एक औरत ने मुझसे कहा, "हवेली बन गई मंगलू की माँ तेरी शहर में अब तू गाँव में क्यों रहेगी ?"

मैंने उसे कोई जबाब नहीं दिया।

: २२ :

तीन दिन पश्चात दूसरी के मुँह से सुना, "क्यों री मंगलू की माँ ? क्या हवेली को तू अपनी छाती पर रखकर ले जायेगी ! तुझे अपने बेटे मंगलू का भी यकीन नहीं है ?"

मैंने उसका भी कोई जवाब नहीं दिया।

पाँच दिन बाद तीसरी ने कहा, "बड़ी बुरी निकली मंगलू की बहू तो मंगलू की माँ ! उसने अपने बेटे को तेरी लेजाई हुई मिठाई भी नहीं खाने दी।"

छः दिनः बाद चौथी ने पूछा, "कैसी हवेली बन रही है री मंगलू की माँ। हमें बतलाया भी नहीं और शहर में ठाट जमा लिया तूने अपना ?"

धीरे-धीरे गाँव भर में उस डायन ने ऐसी बातें फैला दीं कि मैं जिधर से भी निकलती उधर वही चर्चा होती। हर औरत मुझे ही बुरी समझने लगी। उन्हें कोई कुछ नहीं कहती।

एक दिन चमेली के कहने से मैं शहर जाकर वह रजिस्ट्री भी मंगलू के नाम करा आई और खुद जाकर उस डायन के हाथों में उसे सौंपकर कह आई, "ले संभाल कर रखना इसे। रजिस्ट्री मंगलू के नाम ही करादी है मैंने। अब तू अपनी कमाई की दौलत से इस पर हवेली खड़ी कर लेना।"

मैंने पूछा, "तब क्या कहा उसने ?"

"कहती क्या तब ! चुपचाप खड़ी रह गई मेरा मुँह ताकती।" मंगलू की माँ बोली।

मैं बोला, "अगर तुम उस रजिस्ट्री के साथ-साथ उसकी चीजें भी उसके पल्ले में डाल आती तो उसी दिन तुम्हारे आपसी झगड़े समाप्त हो गये होते।"

मंगलू की माँ डबडबाई आँखों से मेरी ओर देखकर बोली, "तो क्या मैं बिल्कुल ही भिखारन बनकर यहाँ आ बैठती ?"

मैं बोला, "भिखारिन तो तू आज भी है मंगलू की माँ ! तुम्हारी सबसे बड़ी दौलत तुम्हारा मंगलू है। वह तुमसे छिन गया। दूसरी दौलत तुम्हारी बहू है, उसे तुमने खो दिया और तीसरी दौलत तुम्हारा पोता है जिस तुमने छाती से नहीं लगाया। तुमने इन तीनों पर अभिमान नहीं किया, तुमने अभिमान किया उन दो हजार रुपयों पर और उन जेवरातों पर जो तुम्हारे पास हैं। सोने को खोकर तुमने मिट्टी को छाती से लगाया। तभी तो तुम्हारी यह दशा है।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बिलख-बिलख कर रोने लगी।

दुलारी भाभी ने बड़ी कठिनाई से उसे संभाला। माता जी ने उसे ढाढ़स दिया और मुझसे बोलीं, "ज़रा बुलवाना तू बेटा मंगलू को अपने पास। किसी आदमी को भेजकर। वह कहीं दिल्ली में ही काम करता है किसी कटरे में। कपड़े का दलाल है वह।"

मैं तसल्ली देकर बोला, "तुम धीरज रखो मंगलू की माँ ! मैं उसे

अवश्य बुलवाऊंगा । और उसकी बहू को भी समझाऊंगा । मेरा विश्वास है कि वह इतनी बुरी नहीं होगी ।"

दुलारी भाभी ने कहा, "तुम समझाओगे तो,वह अवश्य समझ जायगी इस बार दशहरे के नहान पर मैं भी दिल्ली आने की सोच रही रही हूं। अबकी बार उससे जरूर मिलूंगी और हो सका तो गाजियाबाद रेल से उतरकर उसे अपने साथ ही लेकर तुम्हारे पास आऊंगी ।"

भाभी की बात सुनकर मंगलू की माँ का दिल जरा हरा सा हो गया । वह बोली, "क्या सचमुच ही तू शहर जायगी दुलारी!"

दुलारी भाभी आँखें भरकर बोलीं "लाला जी ने कहा है इस बार तो क्यों नहीं जाऊंगी ? देवरानी जी के पास ठहरूंगी ठाट से और अपने भतीजे-भतीजियों में दो दिन आनन्द के काट कर आऊंगी ।"

माता जी हँसकर बोलीं, "जाती तो है नहीं कभी । यूंही कहती रहती है ।"

"नहीं चाची जी ! इस बार अवश्य जाऊंगी । मैंने तै करली है यह बात ।"

समय काफी हो चुका था । दुलारी भाभी बोली, "अच्छा चल अब मंगलू की माँ ! सोने दे लाला जी को । आज तो तूने इनका दिमाग ही चाट लिया ।"

मंगलू की मां बोली, "क्षमा करना मुझे। मैंने अपनी दर्द भरी कहानी आपको इसीलिए सुनाई है कि अगर कहीं मंगलू तुम्हें मिल जाये तो तुम उसे उसकी बूढ़ी माँ की दशा बतला देना । फिर वह जाने और उसका काम जाने ।

देखना नसीब में होगा तो उसका मुँह देख लूंगी । नहीं तो उसके लिए तड़पती ही चली जाऊंगी किसी दिन इस दुनिया से ।"

माता जी बोलीं, "ऐसी पागल क्यों बन रही है मंगलू की माँ ! धीरज से काम ले । तेरा मंगलू जरूर आयेगा एक दिन । मुझे यकीन है कि लाला के कहने का उसपर असर होगा ।"

मंगलू की माँ डबडबाये नेत्रों को लिये दुलारी भाभी के साथ बार-बार पीछे को घूमकर मेरी ओर देखती हुई घर से बाहर चली गई ।

माताजी ने तब खड़ी होकर दरवाजे पर कुंडी चढ़ाई और आकर वह खाट पर लेट गईं।

बोली नहीं थोड़ी देर तक। जाने क्या सोचती रहीं।

मैं अपनी खाट पर लेटा मंगलू की माँ के बारे में सोचता रहा था।

माता जी बोलीं, "कैसे बेटे होते जा रहे हैं ? जिस माँ ने नौ महीने अपनी कोख में रखा, छाती का दूध पिलाया, माह-पूस के मौसम में उसके नीचे सूखा रखा और आप पेशाब में भीगे पोतड़ों में पड़ी रही, टट्टी-पेशाब धोये उसके, पाला-पोसा और बड़ा किया, उसकी बुढ़ापे में आकर खबर भी नहीं लेता मंगलू। कितना निर्दय है ?"

मैं चुपचाप सुनता रहा। यह माँ के हृदय की पुकार थी दर्द भरी। इसमें माँ के दिल का संताप कराह रहा था। माँ के हृदय की पीड़ा कुलमुला रही थी।

मैंने देखा कि एक बेचैनी सी थी उनके मन में। वह उसे कह नहीं पा रही थीं।

आज मुझे जल्दी ही नींद आ गई। कल पूरी रात भर मैं सो नहीं सका था।

सुबह उठकर बैठा तो देखा कि माताजी मुझसे पहले ही उठ चुकी थीं। उनका चूल्हा जल रहा था और वह उस पर पूड़ियां उतार रही थीं।

मैं हंसकर बोला, "बड़ी जल्दी ही उठ गईं आज तो आप !"

माताजी बोलीं, "तुझे जाना जो है। मैंने सोचा कुछ खाने को बना दूं।"

"बेकार तकलीफ की आपने। मैं तो दस बजे तक दिल्ली पहुंच जाऊंगा। खाना वहां तैयार मिलेगा ही।" मैं बोला।

"एक दो पूड़ी चाय के साथ खा लेना। गर्मी का मौसम है। प्यास लगती है रास्ते में। खाली पेट पर पानी पीने से दर्द हो जाता है।" माताजी ने कहा।

नाश्ता करके मैं चलने को तैयार हुआ और घर से बाहर निकल कर चबूतरे पर आया तो क्या देखा कि दगड़े में करीम खाँ और मंगलू

की माँ की झाँड़-झपट हो रही है ।

मुझे देख कर दोनों सहम से गये । मैंने पूछा, "अरे क्या बात है मंगलू की माँ ! करीम खाँ ने रुपये नहीं दिये तुम्हारे ?"

वह शरमाकर बोली, "देता ही नहीं मरा । पाँच दिन हो गये इसी तरह झूठ बोलते । रोज यही कह देता है कि कल दूंगा । मैं आज मरे को रिक्शा ही नहीं चलाने दूंगी । देखती हूं कैसे नहीं देता है आज ?"

मैंने करीम खाँ से पूछा, "अरे क्या बात है करीम खाँ ! तू मंगलू की माँ के रुपये क्यों नहीं देता भय्या ?"

करीम खाँ दुखी मन से बोला, "बाबू जी क्या बतलाऊँ, दे ही नहीं सका मैं । पाँच-छः दिन से मेरी तबियत जो खराब चल रही है तो दो फेरे से ज्यादा लगा ही नहीं पाता । दो फेरों में दो रुपये मिलते हैं । उनमें से सवा रुपया तो रिक्शा का मालिक ले लेता है और कुल बारह आने बचते हैं मेरे पास सो वे मेरे खाने में खर्च हो जाते हैं ।"

करीम खाँ का हिसाब सुनकर मैं डेढ़ रुपया अपनी जेब से निकाल कर करीम खाँ को देता हुआ बोला, "ले यह डेढ़ रुपया मंगलू की माँ को दे दे । इसमें अठन्नी तेरी कल की है और एक रुपया आज का । और बाकी डेढ़ रुपया तू कल परसों में कमा कर दे देना इसे ।"

करीम खाँ ने लजाकर डेढ़ रुपया मेरे हाथ से लेकर मंगलू की माँ को दे दिया ।

मैंने करीम खाँ के रिक्शा में बैठकर माताजी को नमस्ते की । तब तक दुलारी भाभी भी वहाँ आ गई थीं । मैं भाभी से बोला, "भाभी दशहरे पर स्नान करने जरूर आना, भूलना नहीं ।"

"जरूर आऊंगी देवर जी !" भाभी ने प्यार से कहा ।

करीम खाँ ने रिक्शा का पैडिल दबाया तो मंगलू की माँ बोली, "मेरे मंगलू की भी तलाश करना अगर कहीं मिल जाये तो ।"

मैं चलता-चलता बोला, "जरूर करूंगा ।"

रिक्शा तेज हो गई और कच्चे रास्ते में खुद्-खुद् करती आगे बढ़ने लगी । मेरा घर और गाँव धीरे-धीरे पीछे छूटते जा रहे थे ।

मैंने रिक्शा मे पीछे मुंह करके देखा तो माताजी और दुलारी भाभी

चबूतरे पर खड़ी हुई मेरी ओर देख रही थीं। मंगलू की माँ भी दगड़े में खड़ी थी।

करीम खाँ गाँव से बाहर निकल कर बोला, "बाबू जी यह मंगलू की माँ बड़ी डायन है। इसने अपने बेटे-बहुओं को सता-सता कर गाँव से खदेड़ दिया। जाने कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे बेचारे शहर में। विचारी बड़ी ही गऊ औरत थी वह मंगलू की बहू और मंगलू भी बहुत अच्छा लड़का है।"

मैंने हँसकर पूछा, "तूने क्या अच्छापन देखा करीम खाँ मंगलू और मंगलू की बहू में ?"

करीम खाँ बोला, "देवी थी बाबू जी मंगलू की बहू तो। रिक्शा में जब भी बैठ कर जाती थी विचारी तो पैसों के साथ सदा दो पूरी और अचार की फाँक की मुझे देती थी। कहती थी बूढ़ा आदमी है, थक गया होगा बेचारा। और यह डायन जब कभी रिक्शा में बैठती है तो दो पैसे कम ही देती है।"

रिक्शा कच्चा रास्ता पार करके पक्की सड़क पर आई तो करीम खाँ को जरा सांस आया। उसने रिक्शा रोक कर बीड़ी सुलगाई और मुझसे बोला, "बाबू जी आपके लिये सिकरट लाऊँ ?"

मैं हँसकर बोला, "मैं सिग्रेट नहीं पीता करीम खां ! तुम आराम से बीड़ी पीलो तब रिक्शा चलाना। कच्चे रास्ते में थक गये होगे तुम।"

मेरी बात सुनकर करीम खां हँसकर बोला, "सिकरट बीड़ी का शौक आपके वालिद भी नहीं करते थे बाबू जी ! वह जब कभी भी शहर आते थे तो मेरी ही रिक्शा में बैठकर आते थे।"

करीम खाँ ने अनायास ही इस समय मुझे पिता जी की याद दिला दी। जब पिता जी थे तो वह मुझे पक्की सड़क के इसी अड्डे तक छोड़ने के लिये आया करते थे।

आज भी अकेला ही आया। कोई साथ नहीं था मेरे। मेरे परिवार के सब लोग मेरे शत्रु हैं। मैं गांव में आता हूं तो मुझे देखकर खून बरसने लगता है उनकी आँखों में।

मेरे हिस्से को हमेशा से खाते चले आ रहे हैं। उनके मूंह का निवाला बना हुआ है मेरा हिस्सा। मेरे यहां आने पर उन्हें लगता है कि मैं उनके मुंह का निवाला छीनने के लिए यहाँ आया हूं।

करीम खाँ ने बीड़ी पीकर अपनी रिक्शा संभाली। वह सीट पर संवर कर बैठ गया और रिक्शा का पैडिल दबाया। रिक्शा चल पड़ी शहर की ओर। हवा सामने की थी, इसलिये तेज नहीं चली रिक्शा।

करीम खाँ ने मुझसे पूछा, " बाबू जी, आपकी जमीन नहीं छोड़ी अभी तक आपके ताऊ जी के लड़कों ने ?"

मैं हँसकर बोला, "छोड़ देंगे करीम खाँ ! जल्दी क्या है ?"

करीम खाँ बोला, "बाबू जी, जुलम की बात है। हमारे गाँव में जैसा जुलम आजकल हो रहा है ऐसा मैंने पहले कभी नहीं देखा।"

मैंने हँसकर ही पूछा, "क्या जुलम हो रहा है करीम खाँ ?"

करीम खाँ बोला, "इससे बड़ा जुलम और क्या होगा बाबू जी ! आपकी दादेलाही जमीन है और आपको हिस्सा नहीं देते आपके भय्या। गाँव के घर-घर में यही हालत है। भाई-भाई का दुश्मन बना हुआ है। ऐसी आपा-धापी पहले कहाँ थी ? आज तो गाँव की यह हालत है कि पड़ोस में मुर्दा पड़ा रहे और कोई उसे दफनाने वाला न मिले।" लम्बा सांस खींचकर यह बात करीम खाँ ने कही।

मैंने पूछा, "करीम खाँ ऐसा क्यों हो रहा है ?"

करीम खाँ बोला, "खुदा ही जाने बाबूजी ! पर हालत बहुत बिगड़ती जा रही है गाँव की। बे सिर पैर का हो गया है हमारा गाँव तो। न किसी बड़े की इज्जत है और न किसी छोटे को प्यार है। अपनी-अपनी जून में कोई किसी को कुछ बदता ही नहीं। लांडे-बूचे भी तीसमारखाँ बने हुए हैं। जिसे देखो उलटी-सीधी हाँकता है।"

मैं बोला, "अकल की कमी है करीम खाँ यह सब।"

मेरी बात सुनकर करीम खाँ हँसकर बोला, "अकल की बात मत पूछो बाबू जी ! अकल का तो हर आदमी अपने को पुतला समझता है। जिसे कौड़ी भर भी तमीज नहीं है वह भी अपने को दुनिया की अकल का ठेकेदार मानता है।"

मैं हँसकर बोला, "यही तो अकल की कमी है करीम खाँ। लोग चालाकी, मक्कारी और बेईमानी को अकल समझने लगे हैं।"

"आपने ठीक फरमाया बाबू जी ! अबतो जमाना ही चालबाजों का रह गया है। सीधे-सादे आदमी को उल्लू समझते हैं। आज यह जमाना भी नहीं रहा कि अपने दिल की बात को किसी पर जाहिर कर दे।" करीम खाँ ने कहा।

मैं बोला, "इसमें कोई शक नहीं करीम खाँ ! यह बहुत ही समझदारी से चलने का जमाना है। अपने दिल की बात किसी से कहनी नहीं चाहिए।"

करीम खाँ लम्बा सांस खींचकर बोला, "कहनी तो नहीं चाहिए बाबूजी ! लेकिन कहनी भी पड़ ही जाती है। दिल जब भारी होता है तो उसे हलका करने के लिए कहना ही पड़ता है।"

करीम खाँ ने यह बात बड़े ही भारी मन से कही। मैंने भी दिल में महसूस किया कि वाकई जब दिल बहुत भारी हो जाता है तो मन की बातें किसी से कहने में दिल को राहत मिलती है। पानी जब तालाब में किनारों तक लबालब भर जाता है तो वह फूट ही निकलता है किसी-न-किसी दिशा को।

सामने की हवा को काटकर रिक्शा चलाने से करीम खाँ को सांस चढ़ गया और हांपी छूटने लगी थी। मैं उसकी दशा देखकर बोला, "करीम खाँ ! जरा रिक्शा रोक दो और दो मिनट नीचे उतर कर आराम से बीड़ी पी लो। फिर चलाना रिक्शा। तुम्हें सांस चढ़ गया है। बहुत कमजोर हो गये हो अब तुम।"

करीम खाँ ने सड़क के किनारे वाले बाग के पास आम की छाया में रिक्शा रोक दी। वह नीचे उतर कर बीड़ी पीने लगा।

मैंने उसकी दशा देखी तो मुझे बड़ी ही दया आई उस पर। हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया था उसका शरीर। फिर खांसी दम तोड़ देती थी उसका। छाती फूल जाती थी जब वह रिक्शा चलाता था।

मैं बोला, "अब तुम रिक्शा चलाने के काबिल नहीं रहे हो करीम खाँ ! इसके बजाये तुम कोई और काम करो तो अच्छा रहे।"

करीम खाँ बोला, "सोचता तो मैं भी कई बार यहीं हूं बाबूजी ! पर इधर-उधर के जो दस-बीस रुपये सिर पर चढ़े हुए हैं वे मुझे मजबूर कर देते हैं रिक्शा चलाने को। सोचता हूं कि इसमें से कुछ बचाकर सुर्खरू हो जाऊं लेकिन यह दमे की बीमारी उभरने ही नहीं देती मुझे। सुबह से शाम तक मरता-पचता हूं पर इतने पैसे नहीं कमा पाता कि उन कर्ज वालों का मुंह फूंक सकूं।

मैं हँसकर बोला, "जिस दिन तेरी अरथी निकालेगी उस दिन कर्ज-वालों का मुंह तो अपने आप ही फुंक जायेगा करीम खाँ।"

मेरी बात सुनकर करीम खाँ को हंसी आ गई। परन्तु, फिर जरा संजीदा होकर वह बोला, "बाबूजी ! खुदा को जी देना है। मैं किसी का कर्ज लेकर नहीं मरना चाहता।"

करीम खाँ की बात सुनकर मेरे मन में श्रद्धा हो गई उसके व्यक्तित्व के प्रति। उसके मन की ईमानदारी ने मेरी गर्दन झुका दी उसके सामने। मैंने मन में सोचा कि देखो एक यह भी आदमी है इसी गांव में और हमारे भाई लोग भी हैं। यह मरना नहीं चाहता बिला दूसरों का कर्ज अदा किये और एक वे लोग हैं जो जीते ही इसलिए हैं कि दूसरों का हिस्सा हड़पते रहें।

बीड़ी पीकर करीम खाँ ने फिर रिक्शा सम्भाली और मुझसे बोला, "बैठ जाओ बाबूजी ! अब तबियत ठीक है मेरी। आप भी कहते होंगे कि अच्छे आदमी की रिक्शा में बैठे जो ठीक चला भी नहीं पा रहा।"

मैं मुस्कराकर बोला, "मैं कुछ नहीं कहता करीम खाँ ! तू आराम-आराम से चला रिक्शा। मुझे कोई जल्दी नहीं है।"

करीम खाँ लम्बा सांस लेकर बोला, "आराम अब इस जिन्दगी में नहीं मिलेगा बाबूजी ! मेरा आराम तो रहीम के साथ चला गया। कितना लायक बेटा था, कि क्या कहूं आपसे। कभी आंखें उठाकर भी नहीं देखता था मेरे सामने। सारा-सारा दिन खेत में मेहनत करके आता था और फिर खिदमत करता था मेरी।

सांझ को जब मैं अपनी झोपड़ी के सामने खटिया डालकर बैठ जाता

था तो हुक्का ताजा करके लाता था और फिर चूल्हा जलाकर चपातियां सेंकता था मेरे और अपने लिए। दोनों बाप-बेटे साथ-साथ खाट पर बैठ कर रोटी खाते थे। कैसी मौज दी थी खुदा ने इस जिन्दगी में !

मैंने अपने हाथ से लुटा दी अपनी मौज। अपने पैरों में खुद ही कुल्हाड़ी मार ली। और किसी को क्या दोष दूं इसका ? अपने ही हाथों से मैंने अपना नसीबा फोड़ लिया।"

मैंने देखा करीम खाँ की आंखों से आंसू ढुलक रहे थे। उसने अपने कुर्ते की बांह से अपनी आंखें पोंछीं और भारी मन से बोला, "बाबूजी दिल्ली जा रहे हैं आप। कहीं मेरा रहीम मिले तो उसे मेरी हालत बतला देना। मुझे यकीन है कि अगर वह मेरी यह हालत सुन लेगा तो जरूर लौट आयेगा मेरे पास। आप लख्ते जिगर को लौटा लाएं तो आपके बाल-बच्चों को दुआ दूंगा।"

करीम खाँ की बात सुनकर मेरा जी भारी हो गया। थोड़ी देर तक मेरी जबान से कोई शब्द नहीं निकला।

मैं फिर बोला, "करीम खाँ ! दिल्ली बहुत बड़ी है। उसमें किसी को यूंही तालाश करना आसान नहीं है। लेकिन फिर भी तुम्हें यकीन दिलाता हूं कि मैं रहीम को ढूंढ़ने में कोई कसर उठा नहीं रखूंगा।"

करीम खाँ ने आशा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा।

मैं फिर बोला, "तू यकीन रख करीम खाँ ! मैं रहीम का पता निकालने की कोशिश करूंगा और अगर वह मुझे मिल गया तो मैं उसे अपने साथ लेकर आऊंगा।"

शहर दूर नहीं था अब। थोड़ी ही देर में करीम खाँ ने रिक्शा ले जाकर दिल्ली की मोटरों के अड्डे पर खड़ी कर दी।

मैंने रिक्शा से उतरकर करीम खाँ को आठ आने और दिए।

वह बोला, "नहीं बाबूजी ! ये पैसे मैं नहीं लूंगा। आप तो डेढ़ रुपया पहले ही दे चुके हैं।"

मैं हँसकर बोला, "मेरे पैसों को मना न करना करीम खाँ ! मैं खुशी से दे रहा हूं तुझे। परमात्मा करे तेरी सेहत ठीक हो जाए।"

करीम खाँ ने झिझकते-झिझकते कांपते हाथों से अठन्नी संभाली और

बोला, "खुदा आपको सलामत रखे आपको, बाल-बच्चों को बड़ा ओहदा दे, आपके इकबाल को कायम रखे।"

मोटर तैयार थी दिल्ली जाने वाली। मैं टिकट लेकर उसमें बैठ गया।

मैंने देखा कि जब तक मोटर चल नहीं दी करीम खाँ अपनी रिक्शा को लिए वहीं खड़ा रहा। मेरे लाख कहने पर भी गया नहीं। तभी हिला वह, जब मोटर स्टैंड से चल दी।

मोटर ने थोड़ी ही देर में रफ्तार पकड़ ली और करीम खाँ की रिक्शा मेरी नजरों से ओझल हो गई।

: २३ :

मोटर अपनी पूरी रफ्तार पर चल रही थी। ठंडी हवा उसकी खिड़कियों से अन्दर आकर मेरे मस्तक पर टकरा रही थी। लेकिन मेरा विचार करीम खाँ के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहा था।

मैं उसी में उलझा हुआ था। सोच रहा था कि दुनिया में कितने दुखी आदमी हैं। उनके दुख-दर्द को कोई पूछने वाला नहीं है। कैसी मुसीबत में जिन्दगी काट रहे हैं। पेट भरने के लिए जानवरों की तरह रिक्शा में जुते रहते हैं रात-दिन और फिर भी पेट को रोटी और तन ढांपने के लिए वस्त्र नसीब नहीं होता।

इन्हीं विचारों में उलझे-उलझे मैंने देखा कि मोटर गाजियाबाद के स्टैंड पर खड़ी हो गई।

मोटर से बहुत-सी सवारियां उतरीं और वहां से दिल्ली जाने वाली सवारियां बैठीं।

मेरे मस्तिष्क से शायद करीम खाँ अब भी न निकलता, यदि मेरे बराबर वाली सीट पर आकर वही बच्चा और उसकी मां न बैठते जो दो दिन पहले जब मैं दिल्ली से रवाना हुआ था मेरे पास बैठे थे।

बच्चे को पहचानकर मैं बोला, "अरे तुम आज फिर मेरे साथ चलोगे बेटा ! लेकिन आज मेरे पास शंतरे नहीं हैं ।"

बच्चे की माँ मेरी बात सुन मुझे पहचानते हुए मुस्करा दी ।

तभी एक फलों वाला छाबड़ी में शंतरे रखे मोटर के पास आकर बोला, "नागपुरी शंतरे हैं बाबूजी ! दो आने की जोड़ी है ।"

मैंने उससे दो शंतरे लेकर उस बच्चे को दिए तो उसकी मां बोली, "रहने दीजिए आप । परसों तो दिया ही था आपने इसे ।"

मैं हंसकर बोला, "इसका मतलब है कि तुम भूली नहीं हो मुझे । क्या दिल्ली ही चल रही हो तुम भी ?"

वह लड़की मुस्कराकर बोली, "माँ अपने बच्चे को प्यार करने वाले आदमियों को कभी नहीं भूल सकती ।" और फिर बोली, "इसके पिता दिल्ली में ही काम करते हैं । उन्हीं के पास ले जा रही हूं इसे ।"

मैंने उस बच्चे की माँ के चेहरे पर जरा ध्यान से देखा । बड़ी ही समझदारी की बात कही थी उसने—माँ अपने बच्चे को प्यार करने वाले व्यक्ति को कभी नहीं भूल सकती ।

मैंने पूछा, "क्या काम करते हैं इसके पिताजी ?"

वह लड़की बोली, "दलाली करते हैं कपड़े की ।"

तभी उस बच्चे ने शंतरा मेरे हाथ में देकर कहा, "छूल दो इछे ।"

मैं हंसकर बोला "लाओ बेटा ! छील देता दूं ।"

अब वह लड़की मुझसे जरा और खुलकर बोली, "यह बच्चा बड़ा नटखट है बाबूजी ! जो कोई इससे जरा प्यार से एक बार बोल लेता है तो बस उसके गले ही पड़ जाता है यह । आपने शंतरा लेकर दिया है तो अब इसे छिलवाने का काम भी यह आपसे ही लेगा ।"

बच्चा बहुत ही प्यारा था । मेरे सबसे छोटे बच्चे सुधीर की उम्र का ही होगा । मैं बोला, "अपने को प्यार करने वाला सबको अच्छा लगता है बेटी ! और जो जिसे अच्छा है वह उसी से अपना काम करने के लिए कहता है । बच्चे को सबसे ज्यादा उसकी माँ प्यार करती है । इसीलिए बच्चा हर समय उसी के सिर रहता है अपने हर काम के लिए ।"

लड़की मुस्करा दी मेरी बात सुनकर।

इन्हीं बातों में दिल्ली तक का रास्ता भी निकल गया। मेरा भी दिमाग जरा हल्का हो गया। करीम खाँ के दुख-दर्द की कहानी ने उसे बड़ा बोझिल बना दिया था।

मोटर से उतरकर मैंने चाँदनी चौक घण्टाघर के लिए रिक्शा ली और उस लड़की से बोला, "बैठ जाओ बेटी! तुम्हें चाँदनी चौक में छोड़ दूँगा।"

वह लड़की सकुचाकर रिक्शा में बैठ गई। मना नहीं कर सकी मुझे।

चाँदनी चौक में घण्टाघर पर रिक्शा रुकी तो वह पैसे देने लगी रिक्शा वाले को। मैं हँसकर बोला, "रहने दो बेटी! पैसे मैं ही दूँगा। तुम तो मेरी बच्ची के ही समान हो। आना कभी मेरे यहाँ अपने पति को साथ लेकर। मैं मालीवाड़े में छीपी वाली गली के अन्दर रहता हूँ। गली के कोने पर बनारसी पान वाले की दुकान है। उसी से कहना शर्माजी के यहाँ जाना है। वह तुम्हें पहुँचा देगा।"

लड़की झुकी गर्दन से लजाकर बोली, "अवश्य आऊँगी किसी दिन।"

मैंने चलते-चलते कहा, "अवश्य आना और इस चुन्नू-मुन्नू को भी लाना। यहाँ तुम्हें ऐसा ही एक और चुन्नू-मुन्नू देखने को मिलेगा।"

इतना कहकर मैं चल दिया। मैंने देखा वह लड़की अपने बच्चे को गोद में लिए मेरी ओर को संकेत कर रही थी।

ठीक ग्यारह बजे मैं अपने मकान पर पहुँचा। बच्चों ने घेर लिया मुझे। बड़ी लड़की ने पूछा, "दादी-माँ नहीं आईं।"

मैं बोला, "आएंगी बेटा! अभी दस-पाँच दिन में आएंगी।"

तभी मेरी श्रीमती जी ने भी मुस्कराते हुए आगे बढ़कर पूछा, "माताजी क्यों नहीं आईं?"

मैंने कहा, "मकान की छत पर मिट्टी डलवाने का काम रह गया था अभी अटका हुआ। बरसात आने वाली है। गाँव के मकानों का यही तो किस्सा है। पुराने मकानों की जरा-भी देख-भाल न करो तो बरसात में खतरा ही रहता है उनका।"

वह हँसकर बोली, "माताजी की जान से यह गाँव का मकान और

जमीन का मुकदमा न जाने कब छूटेंगे ? इनमें उलझकर आराम से अपने बच्चों के बीच में रहना भी उनके लिए दूभर हो गया है ।"

मैं हँसकर बोला, "बात तो ठीक है तुम्हारी लेकिन जो उलझा हुआ है उसे भी धीरे-धीरे ही सुलझाया जा सकेगा । कोई चिन्ता की बात नहीं रही है अब ! सब ठीक हो जाएगा । हमारा जमीन का मुकदमा ठीक होता नजर आ रहा है । परमात्मा ने चाहा तो जल्दी ही माताजी के दिमाग को उससे छुटकारा मिल जाएगा ।"

इसके पश्चात गाँव की अन्य बातों के विषय में मेरी और श्रीमती जी की बातें होती रहीं ।

रविवार का दिन था आज । संध्या समय मैं बच्चों को साथ लेकर गाँधी-पार्क में घूमने के लिए गया और गुलाब बाग की हरी-भरी घास पर जाकर बैठ गए ।

बच्चे खेल-कूद में मस्त हो गए । मैं और श्रीमती जी आपस में बातें करने लगे ।

श्रीमती जी ने पूछा, "आपकी दुलारी भाभी के कैसे हाल-चाल हैं ?"

मैं हँसकर बोला, "खूब आनन्द की गुजर रही है । सब प्रकार की मौज है । और हाँ शायद इसी वर्ष वह अपने बेटे नन्दू की शादी भी करें ।"

"नन्दू की ?" श्रीमती जी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा । "ऐसी क्या जल्दी थी उसकी शादी की ? अभी तो वह सोलह ही वर्ष का होगा । हमारी सुधा से वह दस दिन बड़ा है ।"

मैं बोला, "पगली हैं भाभी ! उन्होंने कहा है कि वह इस बार दशहरा नहाने आयेंगी यहाँ । तुम भी समझाकर देख लेना । कहती थीं कि उनकी सास बड़ा जोर दे रही हैं शादी के लिये ।"

मेरी बात सुनकर श्रीमती जी इठलाकर बोली, "इन बड़ी आदमनों को बच्चों की शादी के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं । पहले शादी को जोर देती हैं और अब बहुएं आ जाती हैं और वे लड़के कुछ कमाते नहीं जिनसे वे ब्याह कर आती हैं तो उनका पूरा गुस्सा उन बेटा बहुओं को सहन करना पड़ता है ।"

मैं हँसकर बोला, "यही तो पागलपन है । लड़कों की शादी तब तक

नहीं करनी चाहिए जब तक वे कोई काम न करने लगें।"

मैं यह कह ही रहा था कि तभी मैंने क्या देखा कि एक तेल मालिश वाला एक औरत को साथ लेकर गुलाब बाग के दरवाजे में दाखिल हुआ।

औरत की शक्ल देखकर मुझे पहचानने में देर नहीं लगी कि वह वही औरत थी जिसे मैंने एक दिन पहले हापुड़ में देखा था।

बड़े ही ठसके के साथ चली आ रही थी मटकती हुई। आज पंजाबिन लड़की का वेष नहीं था उसका। जार्जेट की महीन साड़ी बांधी हुई थी। बालों का जूड़ा था और उसपर चमेली के फूलों की माला लपेटी हुई थी। सुरमई रंग का चमकदार ब्लाउज था और पैरों में रंगीन चप्पलें।

उसकी चाल में एक मस्तानी अदा थी। जवानी का पूरा उभार था उसके बदन में।

उसके साथ वाला आदमी रेशम का तहमद बांधे था। मलमल का कुर्ता और उसके अन्दर से उसका जालीदार सैंडो कट बनियान चमक रहा था। जचीला जवान था। छोटी-छोटी मूछें थीं और सिर पर घुंघराले बाल थे।

मैंने देखते ही पहचान लिया कि वह रहीम के अलावा और कोई नहीं था। उन्हें देखकर मेरे चेहरे पर मुस्कराहट आ गई।

मेरी श्रीमती जी मुझे मुस्कराता देखकर मेरी नजरों को ताड़ती हुई बोलीं, "इस मालिश वाले की औरत तो नहीं मालूम देती यह।"

मैंने मुस्कराते हुए पूछा, "तब फिर क्या मालूम देता है तुम्हें?"

श्रीमती जी बोलीं, "लफंगी औरत है कोई। चली आई है मटरगश्ती के लिये इसके साथ।"

मैं बोला, "कुछ-कुछ ठीक है तुम्हारी बात लेकिन पूरी ठीक नहीं है।"

इस पर श्रीमती जी बोलीं, "तो ठीक-ठीक आप बतलाइये क्या मामला है यह?"

मैं हँसकर बोला, "तो क्या तुम समझ रही हो कि मैं सब कुछ जानता हूं गुलाब बाग में आने वाले सब लोगों के विषय में?"

श्रीमती जी मुस्कराकर बोलीं, "तब फिर आपने मेरे अंदाज पर इतनी सही राय कैसे दे दी? आपको जरूर मालूम है कुछ-न-कुछ इनके विषय में।"

मैं हँसकर बोला, "अभी बतलाऊंगा जरा ठहर जाओ तुम ! जमकर बैठ जाने दो इस औरत को।"

वे दोनों गुलाब बाग में घुसकर हमारे निकट से होकर आगे बढ़ गये और एक गुलाब की क्यारी के पास जाकर दोनों बैठ गये। हम से काफी फासले से बैठे ये लोग।

वह औरत वहीं बैठी रही और आदमी तेल मालिश की शीशियां लेकर अपना काम करने को चल खड़ा हुआ।

उसने दो-चार कदम आगे बढ़कर, "तेल मालिश करालो, तेल-मालिश" की आवाज लगाई।

वह ज्योंही हमारे निकट को आया तो मैंने पुकारा, "तेलमालिश वाले !"

और वह मेरे पास आ गया।

मैंने पूछा, "बढ़िया तेल मालिश करना जानते हो ?"

वह बोला, "तबियत खुश न हो तो एक पैसा न देना बाबू जी।"

मैं बोला, "अच्छा करो। देखें कैसी मालिश करना जानते हो तुम।"

उसने मालिश करनी प्रारंभ की तो मैंने उससे पूछा, "कहाँ के रहने वाले हो तुम ?"

वह बोला, "दिल्ली का ही हूं बाबू जी।"

मैंने मुस्कराकर कहा, "दिल्ली की तो जबान नहीं है तुम्हारी। कहीं बाहर के मालूम देते हो।"

वह बोला अब तो दिल्ली का ही हूं बाबू जी ! वैसे आया किसी दिन बाहर से ही था।"

मैंने पूछा, "कहां से आये थे ?"

वह बोला, 'हापुड़ के पास एक कस्बा है बाबू जी ! वहाँ से आकर बस गया था यहाँ।"

मैंने पूछा, "यहाँ कहाँ रहते हो ?"

वह बोला, "जामा मस्जिद के पास मछली वाले बाजार में रहता हूं।"

इतना पूछकर मैं चुप हो गया।

मेरी श्रीमती जी मुझे देखकर बोलीं, "आज मालिश कराने की क्या

सूझी आपको ?"

मैं मुस्कराकर बोला, "दर्द कर रहा था सर।"

मालिश वाला बोला, "अभी साफ किये देता हूं आपका सिर-दर्द बाबूजी ! आप भी क्या याद रखेंगे कि किसी मालिश वाले से मालिश कराई थी।"

मैं हँसकर बोला, "देखता हूं कि तुम मेरा सिर-दर्द ठीक करते हो या उसे और बढ़ा देते हो।"

मेरी बात सुनकर मालिश वाला बोला, "देखते रहिये आप कैसा साफ होता है आपका सिर-दर्द।"

मैंने पूछा, "नाम क्या है तुम्हारा ?"

वह बोला, "रहीम कहते हैं मुझे बाबू जी !"

मैंने पूछा, "अब दिल्ली में ही रहते हो या कभी अपने कस्बे में भी हो आते हो ?"

वह बोला, "कस्बे में जाना तो छूट ही गया बाबू जी !"

मैंने पूछा, "क्यों ? क्या वहाँ और कोई नहीं है तुम्हारा ?"

मेरी बात सुनकर वह खामोश हो गया।

मैंने ध्यान से उसके चेहरे पर देखा और फिर पूछा, "आखिर कोई-न-कोई तो होगा ही तुम्हारा कस्बे में। क्या उनसे मिलने को कभी दिल नहीं करता तुम्हारा ?"

वह लम्बा साँस खींच कर मुस्कराता हुआ बोला, "अब्बा जान रहते हैं वहाँ। मन तो बहुत करता है उनके पास जाने को, लेकिन मुंह नहीं पड़ता।"

मैंने पूछा, "क्यों ऐसी क्या गलती हो गई तुमसे जो मुंह नहीं पड़ता तुम्हारा। माँ-बाप बच्चों की गलतियों को कभी याद नहीं रखते। उनका दिल बच्चों के दिलों जैसा सख्त नहीं होता।"

मेरी बात सुनकर मैंने देखा कि मेरे बालों में उसकी उंगलियाँ नर्म पड़ गईं। उनकी रफ्तार मन्दी हो गई।

मैं बोला, "तुम्हें अपने अब्बा के पास अवश्य जाना चाहिए। क्या तुम्हारा कोई और भी भाई है ?"

वह दबी जबान में बोला, "जी नहीं ।"

मैंने पूछा, "तब फिर तुम्हारे अब्बा का क्या सहारा है ?"

वह बोला, "कुछ नहीं । अपनी ही मेहनत से जो कुछ कमाते हैं, वही उनका सहारा है । रिक्शा चलाते हैं कस्बे से हापुड़ तक की सड़क पर ।"

मैंने पूछा, "क्या उम्र होगी उनकी ?"

वह बोला, "पचास-पचपन साल की होगी ।"

मैंने ध्यान से उसके चेहरे पर आँखें गड़ाकर कहा, "वह पचास-पचपन साल की उम्र में रिक्शा चलाते हैं और तुम उनकी खबर भी नहीं लेते जाकर, कितनी बुरी बात है । यहाँ मालिश करके तुम चार-पाँच रुपये रोज कमा लेते होगे, क्या इनमें तुम्हारे अब्बा का कुछ भी हिस्सा नहीं है ?"

उसने शर्म से गर्दन नीची कर ली । उसकी जबान से एक भी शब्द नहीं निकला ।

मैंने पूछा, "अगर तुम्हारे अब्बा तुम से कुछ भी न कहें तो तुम उनसे मिलना पसन्द करोगे ?"

वह बोला, "मेरा तो दिल तड़पता है उनसे मिलने को, सच जानिये आप । लेकिन मैंने जो फ़ेल उनके साथ किया है, वह मुझे उनके पास जाने से रोक देता है । कई बार इरादा भी किया, लेकिन मोटरों तक जाकर लौट आया । मैं डर गया कि कहीं अब्बा मुझे अपने सामने भी खड़ा न होने दें ।"

बेटे के दिल की कोमल भावनाओं को परख कर मैं बोला, "रहीम खाँ ! तुम करीम खाँ के ही तो लड़के हो ?"

मेरे मुँह से करीम खाँ का नाम सुनकर वह ऐसे चौंक उठा मानो बिच्छू ने डंक मार दिया हो उसके पैर में ।

उसने गौर से मेरी ओर देखा, लेकिन पहचान न सका वह मुझे ।

उसने पूछा, "क्या आप अब्बा को जानते हो ?"

मैंने कहा, "खूब जानता हूं, और तुम्हें भी खूब जानता हूं । इसीलिए मैंने तुम्हें अपने पास बुलाया है । मेरे सिर में जो दर्द है वह तुम मालिश

से ठीक नहीं कर सकते । मेरे सिर का दर्द ठीक करना है तो अपने अब्बा से जाकर मिलो ।

पता नहीं कितने दिन का मेहमान है बेचारा ।"

मेरी बात सुनकर रहीम की आँखों में आँसू भर आये और टप-टप बूंदें ज़मीन पर गिरने लगीं । मालिश करना बन्द करके वह मेरे पास बैठ गया । उसने पूछा, "खैरियत तो है बाबूजी !"

मैं बोला, "खैरियत तभी है जो तुम फौरन जाकर उससे मिलो । वरना फिर अब्बा नहीं मिलेंगे तुम्हें । औरतें लाख मिलेंगी और यह भी कहीं नहीं जायगी जो तुम्हारे साथ है । लेकिन अब्बा नसीब नहीं होंगे ।"

वह रोकर बोला, "आपको मैंने पहचाना नहीं बाबूजी !"

मैं बोला, "कोई बात नहीं, मुझे पहचानने के लिये तो अभी सारी जिन्दगी पड़ी है तुम्हारी । धीरे-धीरे पहचानते रहना । लेकिन अपने अब्बा को पहचानना है तो देर करने की जरूरत नहीं है ।"

हमारी बातें सुनकर श्रीमती जी ने पूछा, "तो क्या यह करीम खाँ का लड़का है ?"

मैं बोला, "हाँ, यह उसी बदनसीब का लड़का है । और कोई तो है ही नहीं उसका, एक यही है, और यह भी इस औरत के चक्कर में फंस कर उसे बुढ़ापे में धोखा देकर दिल्ली भाग आया । इसे खयाल ही नहीं कि इसके अब्बा पर कैसी गुजर रही है ।"

रहीम गिडगिड़ाकर बोला, "बाबू जी ! मेरे लिये अगर आप एक तकलीफ करें तो मैं अपने अब्बा को देखलूं ।"

मैं बोला, "एक नहीं दो तकलीफें बर्दाश्त कर सकता हूं मैं करीम खाँ के लिये । करीम खाँ जैसे नेक आदमी मेरी नजरों के सामने से बहुत कम गुजरे हैं ।"

मैं फिर श्रीमती जी की ओर मुँह करके बोला, "माता जी बतला रही थीं कि जब ताऊजी खेती करते थे तो करीम खाँ हमारे यहाँ ही मुलाजिम था ।

फिर हमारे ही एक खेत में वह भूमिधर बन गया था । लेकिन

बेवकूफ ने अपनी बेवकूफी से इसी औरत के चक्कर में फंसकर अपना वह खेत बेच डाला। वे रुपए भी बर्बाद कर दिए और यह उसका बेटा रहीम इस औरत के साथ यहाँ आ बसा।

बेचारे का घर-बार सब उजड़ गया। चार हड्डियों का पिंजर मात्र रह गया है वह और उस पर भी दमे की बीमारी। ऐसी दशा में रिक्शा चलाकर पेट भरता है। गाँव से हापुड़ तक आने में आज उसकी क्या दशा हुई मैं बयान नहीं कर सकता।''

रहीम मुझसे गिड़गिड़ाकर बोला, ''बाबूजी अब मैं पहचान गया आपको। आपके वालिद को तो खूब जानता था लेकिन आपको कभी नहीं देखा था मैंने। पता अवश्य था मुझे कि आप यहीं कहीं हैं। एक दिन तालाश करने की भी कोशिश की लेकिन कुछ पता नहीं चल सका मुझे। किसी दिन आपको फुर्सत हो तो मैं आपके साथ कस्बे को चलूं। आपके साथ हूँगा तो वालि मुझे घर में घुस जाने देंगे।''

मैं मन-ही-मन प्रसन्न होकर बोला, ''मैं कल सुबह चल सकता हूँ तुम्हारे साथ। मुझे हापुड़ तहसील में काम है कुछ अपने मुकदमे के सिलसिले में।''

रहीम खुश होगया मेरी बात सुनकर। वह बोला, ''मुझे आप अपना पता बतलादें। मैं सुबह-ही-सुबह आजाऊंगा वहाँ।''

मैंने रहीम को अपना पता एक कागज पर लिखकर दे दिया।

वह चलने लगा तो मैंने जेब से चार आने निकालकर उसे देने चाहे लेकिन लिये नहीं उसने। उल्टे पैर पकड़कर बोला, ''बाबू जी! क्यों शर्मिंदा करते हो मुझे। आपने जो एहसान मुझपर किया है उसे मैं जिन्दगी भर नहीं भूल सकूंगा।''

मैं बोला, ''मैंने कोई एहसान नहीं किया तुमपर। तुम्हारे बाप का संदेसा तुम तक पहुंचा दिया मैंने। तुम्हें उसकी हालत से आगाही करादी। अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। तुम कहते हो तो मैं तुम्हारे साथ भी चला चलूंगा करीम खाँ के पास तक।''

रहीम चला गया तो मैंने पूरा किस्सा श्रीमतीजी को सुनाया। वह खूब हंसी और हंसकर बोली, ''बेटा बाप की औरत को उड़ा लाया,

यह आपके ही गाँव के रहने वालों की खूबी है ।"

इसके पश्चात कुछ देर और बैठे रहे हम बाग में । बच्चे इधर-उधर खेल-कूद कर सब हमारे पास जमा हो गये । फिर उन्हें लेकर हम अपने मकान पर लौट आये ।

रात्रि को सोते समय मैं श्रीमती जी से बोला, "यह जो किस्सा आज तुम्हें सुनाया है यह किस्सा नम्बर दो है । क़िस्सा नम्बर अव्वल अभी सुनाना शेष है । उसे कल के पश्चात जब गाँव से लौटकर आऊँगा तो तब सुनाऊँगा ।"

श्रीमती जी बोलीं, "आपको तो ऐसे किस्से मिल ही जाते हैं कहीं ना कहीं । जहाँ भी जाते हैं और जिससे भी बातें करते हैं उनके जीवन की पूरी उखाड़-पछाड़ करने से ही मतलब रहता है ।"

: २४ :

सुबह सोकर उठा और नहा धोकर मैंने चाय पी । फिर श्रीमती जी से बोला, "जरा मुकदमे के काग़जात तो उठा लाओ । उनमें से दीवानी के फैसले की नक़ल लेनी है । पेश करनी है मुखत्यार साहब को । परसों भाई साहब ने जो अपील की है उसकी तारीख है ।"

ये बातें कर ही रहा था मैं कि दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी । सुधा ने जाकर चटखनी खोली तो रहीम खड़ा था सामने ।

मैं बोला, "आजा रहीम ! चाय पीले । अभी चलते हैं दो मिनट में ।"

रहीम बोला, "चाय की तकलीफ न कीजिये बाबूजी ! मैं चाय पीकर चला हूँ ।"

मैंने पूछा, "सच बोलता है ?"

"सच कह रहा हूँ बाबूजी ।" रहीम बोला ।

तभी श्रीमती जी मुकदमे के कागजों का पुलिन्दा उठा लाईं । मैंने उसमें से दीवानी के फ़ैसले की नकल निकाली और बाकी बाँधकर उन्हीं

के हवाले कर दिये।

मैं और रहीम हापुड़ जाने वाली मोटरों के अड्डे पर आये। रहीम ने आगे बढ़कर हम दोनों के टिकट खरीद लिए।

रास्ते में रहीम ने पूछा, "ठीक तो थे अब्बा कल जब आप हापुड़ से चले ?"

मैं बोला, "हाँ ठीक था। कोई ऐसी खतरे की बात नहीं थी। लेकिन अब दम नहीं रहा है उसकी हड्डियों में। तुम अगर सहारा देते रहोगे तो अभी कुछ दिन और भी खींच जायेगा। उसकी आधी बीमारी तो तुम्हें देखते ही जाती रहेगी।"

रहीम ने पूछा, "क्या अब्बा याद करते थे मुझे ?"

मैं बोला, "याद क्यों नहीं करता। वह तो जान देता है तुझ पर। भटक रहा है तुझे पाने के लिये। तू ही तो उसके बुढ़ापे का एक मात्र सहारा है। माँ-बाप बच्चों की अपने बुढ़ापे में काम आने के लिये ही तो परवरिश करते हैं।"

रहीम माथे पर हाथ रखकर बोला, "मुझसे बड़ी गलती हुई बाबूजी ! मैंने अब्बा को वाक़ई धोखा दिया। जिस औरत के साथ उन्होंने निकाह पढ़ा उसे मैं भगा लाया।"

फिर जरा ठहरकर वह बोला, "लेकिन बाबूजी ! सच मानिये कि मैं नहीं भगा कर लाया उसे, वह ही मुझे भगा लाई। ऐसा पर्दा पड़ा मेरी आँखों पर कि मैं कुछ सोच ही नहीं सका।

आज भी उसे बिला बतलाये ही चला आया हूँ उससे यह कह कर कि कहीं से मालिश के रुपये वसूल करने जा रहा हूँ। अगर उसे यह पता चल जाता कि मैं अब्बा के पास जा रहा हूँ तो वह हर्गिज भी नहीं आने देती मुझे।"

मैंने आश्चर्य से पूछा, "क्यों ऐसा क्या दबाव है उसका तुझ पर ?"

रहीम बोला, "दबाव और कुछ नहीं है बाबूजी, बस एक करार हो गया है दोनों के बीच।"

मैंने पूछा, "क्या करार है वह ?"

रहीम बोला, "हम दोनों ने दिल्ली आकर यह करार किया था कि

वह अपने अब्बा को छोड़ देगी और मैं अपने अब्बा को। तब से सच जानिये आप कि उसने अपने अब्बा की सूरत तक नहीं देखी।"

मुझे हँसी आगई रहीम का करार सुनकर। मैं उसकी भोली सूरत को देखकर बोला, "बहुत भोले हो रहीम! तुम उस औरत को अभी नहीं समझ सकते। तुम यह भी नहीं जानते कि वह करती क्या है। तुम्हारे साथ रहकर तो उसने अपने रहने का एक ठिकाना बना लिया है। तुम अपनी दुनिया को उसके अन्दर महदूद कर चुके हो लेकिन उसकी दुनिया बहुत लम्बी चौड़ी है।

तुम तो एक खिलौने हो उसके खेलने के लिये। ज़रा सेहत अच्छी है तुम्हारी और चार पैसे भी तुम कमा लेते हो इसीलिए वह तुम्हें अपने पास रखती है।"

मेरी बात सुनकर रहीम भौंचक्का-सा रह गया। वह ताकता रहा मेरे चेहरे पर बहुत देर और फिर गम्भीरतापूर्वक उसने पूछा, "क्या आप जानते हैं उस औरत को?"

मैं बोला, "उसे नहीं जानता तो क्या हुआ? ऐसी औरतों को तो जानता ही हूँ। और अब तो उसे भी पहचान गया हूँ।"

"तो क्या कल से पहले भी वह कभी आपसे मिली थी?" रहीम ने पूछा।

मैं बोला, "दिल्ली लौटकर आयेंगे जब, तब तुम उसे मेरे पास लेकर आना। वह खुद बतलायेगी तुम्हें कि मैं उसे जानता हूँ या नहीं।"

रहीम मेरी बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। वह समझ ही न सका कुछ।

मोटर पूरी रफ़तार पर चल रही थी। रहीम के मन में एक उतावलापन था कि किस तरह जल्दी-से-जल्दी वह मोटर हापुड़ पहुँचे।

मैंने पूछा, "आजकल अब्बा कहां रहते हैं उस औरत के?"

रहीम बोला, "कह नहीं सकता मैं, लेकिन पहले हापुड़ में रहते थे।"

मैं हँसकर बोला, "वह अब भी हापुड़ में ही रहते हैं, जहाँ तक मेरा ख्याल है और यह औरत हापुड़ में अपने अब्बा से मिलने भी आती है।"

"हापुड़ में ?" आश्चर्य से रहीम ने पूछा।

मैं बोला, "हाँ, हाँ, हापुड़ में। अभी परसों ही मैंने इसे यहाँ देखा था दोपहर के तीन साढ़े तीन बजे। परसों दोपहर बारह बजे से संध्या के पाँच बजे तक यह औरत तुम्हारे पास नहीं रही होगी।"

रहीम ध्यान से बोला, "आप ठीक फरमा रहे हैं। लेकिन उसने तो मुझसे कहा था कि वह सूईं वालों में अपनी किसी सहेली के यहाँ दावत में गई थी। हापुड़ जाने का तो उसने ज़िक्र तक नहीं किया।'

मैं हँसकर बोला, "उसकी सहेली, उसके अब्बाजान ही थे रहीम! तभी तो मैं कहता हूँ कि तुम उस औरत के सामने अभी बच्चे हो चार दिन के।

ऐसा न हो कि कहीं किसी दिन वह किसी और औरत के हाथों तुम्हें बेच डाले।"

रहीम शरमा गया मेरी बात सुनकर। उसे क्या पता था कि मुझे उसके और उस औरत के विषय में इतनी जानकारी है।

वह जरा घबराकर बोला, "बाबूजी ताल्लुकात बड़े ही वसीह हैं उस औरत के।"

मैं उसी तरह हँसता हुआ बोला, "ऐसी औरतों के ताल्लुकात वसीह हुआ ही करते हैं। ताल्लुकात वसीह न हों तो इनका कारोबार ही नहीं चल सकता।'

"कैसा कारोबार बाबू जी ?" रहीम ने सादगी से पूछा।

"ऐसा ही जैसा तुम्हारा मालिश करने का और तुम्हारे अब्बा का रिक्शा चलाने का है।" मैंने सादगी से कहा।

रहीम चुप था। उसका मन अन्दर-ही-अन्दर भयभीत-सा हो उठा था। उसके मस्तक पर स्वेद-बिन्दु झलक आये थे।

मैं उसकी शक्ल देखकर मुस्कराता हुआ बोला, "मेरे विचार से वह औरत बहुत गहरी है रहीम! केवल तुम्हारी औरत ही नहीं है, वह अपना कारोबार चलाती है। तुम्हारे पास भी एक ठिकाना बना लिया है उसने ठहरने का। उसके दिल्ली के कारोबार का दफ्तर है वह।"

मोटर पूरी रफ्तार से आगे बढ़ी जा रही थी। खिड़की से हवा

आकर रहीम के माथे से टकराई तो उसके घुंघराले बाल हवा में उड़ने लगे। मैंने मजाक में पूछा, "रहीम अच्छा तू बतला, तुझे कैसी लगती है वह औरत ?"

रहीम सरलतापूर्वक बोला, "चालाक तो वह है ही बाबूजी ! लेकिन उसकी चालाकी को अगर आप उसकी होशियारी मानलें तो क्या हर्ज है ?

फिर मेरे साथ आज तक उसने कोई दग़ा नहीं किया। आपको बतलाता हूँ सच-सच कि अब्बा ने जो पांच सौ रुपया उसके अब्बा को अपना खेत बेचकर दिये थे वे भी वह किसी हिकमत से अपने साथ उड़ा लाई और मेरे हवाले कर दिये।

आप ही कहिए फिर कैसे उसे चालाक औरत कहूँ ? मेरे साथ तो उसने कोई चालाकी नहीं की।"

रहीम की बात सुनकर मेरा अन्दाज उस औरत के विषय में ग़लत होने लगा। मैं सोचने लगा कि अगर करीम खाँ की वही बात सच है कि इस औरत का पेशा हीय ही है कि यह भोले भाले लोगों पर डोरे डाल कर उन्हें वश में कर लेती है और फिर यह और इसके अब्बा मिलकर उससे पैसा ऐंठने की चाल चलते हैं तो क्यों यह पांच सौ रुपये अपने अब्बा के पास से चुराकर लाई ?

तभी रहीम ने मुझसे एक अजीब-सा प्रश्न पूछा। वह बोला, "बाबू जी ! यह औरत पेंठ में मिट्टी के बर्तन बेचने आया करती थी। मैं भी हर जुम्मे को पेंठ में जाता था। वहीं मेरी इससे दीद-शनीद हो गई। रफ्ता-रफ्ता यह दीद-शनीद आपसी मुहब्बत में बदल गई।

एक दिन इसने अपनी दर्द भरी कहना मुझे सुनाई तो उसे सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये क्योंकि मुहब्बत हो गई थी उससे इसलिए बड़ा तरस आया। आप सच जानिये बाबू जी मैं रोने लगा उसकी कहानी सुनकर।

मुझे रोता देखा तो उसने अपनी ओढ़नी से आँखें पोंछी मेरी और मुस्कराकर कहा, "रहीम ! यह तो मैं किस्सा सुना रहा रही हूं। इस वक्त नहीं गुजर रही है यह मुसीबत मुझ पर। अब तो मैं काफी

आजाद हूँ। अब्बा से डरती हूँ जरा और यह भी इसलिये कि इनके पुलिस में बड़े गहरे ताल्लुकात हैं।"

फिर हँसकर बोली, "लेकिन रहीम, उसकी भी परवाह न करो तुम। हापुड़ के एक थानेदार साहब से मैंने भी इस बार बड़े अच्छे ताल्लुकात बना लिये हैं और दिल्ली में तो कई थानेदारों से मेरा अच्छा सम्बन्ध बन गया है। अब मैं अब्बा से भी नहीं डरूंगी।

किसी तरह एक बार उनके चंगुल से निकल भागूं, बस यही सोच रही हूँ।"

मैंने सरलतापूर्वक पूछा, "तो रहीम! क्या तुम्हारे विचार से वह औरत बुरी नहीं है ?"

रहीम बोला, "बिलकुल बुरी नहीं है, बाबूजी! बड़ी ही नेक औरत है। मुझे मालूम है कि जब हम दोनों दिल्ली आकर बसे तो कैसे उसने अपना और मेरा खर्चा चलाया। बड़ी मेहनती, खुशदिल और होशियार औरत है।"

मैं बोला, "तेरे वालिद करीम खाँ कह रहे थे कि इसका पेशा ही ऐसी शादियाँ करना है जैसी इसने मुझसे की। यह इसी तरह लोगों का रुपया ठगती है।

ऐसा क्यों कहा उसने ?"

मेरी बात सुनकर रहीम बोला, "उनका कहना तो सच ही है बाबूजी! उनका रुपया तो ठगा ही गया इसे बीच में डालकर। चाहे वह इसने ठगा या इसके अब्बा ने।

यह बतला रही थी मुझसे भी कि उसके अब्बा ने इसी तरह चार पांच मर्तबा उसे किसी-किसी को बेच दिया लेकिन वह ठहरी नहीं किसी के भी घर और ना ही अपने शरीर को छूने दिया उसने किसी को। अब इसे आप उसकी चालाकी कह लीजिये या होशियारी। मैं तो इसे इसकी होशियारी कहूँगा।"

मैंने ध्यानपूर्वक रहीम के चेहरे पर देखा।

रहीम ने दूसरा प्रश्न किया मुझसे। वह बोला, "बाबूजी! एक बात पूछूं आपसे ? बेलिहाज होकर जवाब दीजियेगा आप।"

मैं बोला, "पूछो ! मैं बिला पक्षपात के अपना सही मत प्रकट करूंगा।"

वह बोला, "अब्बा की उम्र इस समय पचपन साल की है। इस निकाह से पहले भी अब्बा के चार और निकाह पढ़े जा चुके हैं। फिर आप ही कहिये कि इस वक्त मेरा निकाह पढ़ने का वक्त था या अब्बा-जान के।"

मैं बोला, "यह वाकई करीम खाँ की गलती थी। उसे इस उम्र में शादी नहीं करनी चाहिए थी। शादी करनी थी तो तेरी ही करनी चाहिए थी।"

रहीम ने पूछा, "अब दूसरी बात पूछता हूँ आप से। अब्बा को निकाह पढ़ने से पहले यह पता चल चुका था कि उस औरत को मुझसे मुहब्बत है। मैं उसे प्यार करता हूँ।

यह जानकर भी अब्बा ने उससे निकाह पढ़ा तो आप कहिये कि अब्बा ने बेटे की औरत को बदनीयती से देखा या मैंने ? यह सच है कि अब्बा के साथ उसका निकाह मौलवी साहब ने पढ़वाया था लेकिन उससे बहुत दिन पहले वह औरत मेरी हो चुकी थी और मैं अपने को उसका मान चुका था।"

फिर जरा ठहरकर बोला, "दिल के मामले में बाबू जी ! मैं किसी कायदे-कानून को नहीं मानता। अब्बा जान समझ रहे हैं कि मैंने उनके साथ जियादती की और मैं समझ रहा हूँ कि मुझे वह जियादती तब करनी पड़ी जब बाप ने औलाद के दिल पर अपना पैर रख दिया। उन्होंने मेरे दिल को कुचलने की कोशिश की।"

रहीम की बात को मैंने गहराई से सोचा तो मुझे गलती करीम खाँ की ही दिखाई दी। जब उसे मालूम हो गया था कि रहीम का उस औरत से दिल लगा हुआ है तो उसने क्यों उस औरत के अब्बा की बात मानकर अपने निकाह की रज़ामन्दी दी ?

मैंने रहीम के चेहरे पर देखा तो मुझे मासूमी के लक्षण दिखाई दिये। मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "अब तुम्हारी और तुम्हारे अब्बाजान दोनों की बातों को सुनकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस मामले में कमजोरी करीम खाँ की ही रही। उसे उस औरत से अपने निकाह की रजामन्दी

नहीं देनी चाहिए थी बल्कि उसके अब्बा से यही कहना चाहिए था कि वह उसका निकाह तुम्हारे साथ पढ़ा दे ।"

मेरी बात सुनकर रहीम के दिल को बड़ा भारी संतोष हुआ । वह जरा ठहरकर बोला, "घर छोड़कर भागने में मुझपर कितना ज़ोर पड़ा होगा बाबूजी, इसका अन्दाज आप नहीं लगा सकते । मैं आज भी अपने अब्बा के लिये अपने दिल में उतनी ही इज्जत रखता हूँ जितनी पहले थी लेकिन कुछ हालात ही ऐसे बन गये कि मुझे भागना ही पड़ा घर छोड़कर ।"

मैं बोला, "तुम्हारी स्थिति को मैंने अच्छी तरह समझ लिया है रहीम । मुझे इस बात की हार्दिक प्रसन्नता है कि तुम मेरे कहने से अब्बा से मिलने चल रहे हो । बुढ़ापे के दिन हैं बेचारे के । इन दिनों में तुम्हें अपना फर्ज देखना चाहिए, करीम खाँ की भूलें नहीं ।

रहीम ने मेरी बात का कोई जवाब नहीं दिया । वह चुपचाप सीट पर गर्दन झुकाये बैठा रहा ।

मोटर पिलखवे से छूट चुकी थी । मैं बोला, "लो हापुड़ भी अब आने ही वाला है । तुम्हारे अब्बा शायद यहीं मिल जायेंगे रिक्शा के अड्डे पर ।"

मोटर थोड़ी देर में हापुड़ के अड्डे पर पहुंच गई । मैं और रहीम मोटर से उतरे । कुछ आगे बढ़े तो बायें हाथ पर तहसील थी । मैं बोला, "ये कागज जरा मुखत्यार साहब को दे दूं । फिर चलते हैं आगे ।"

रहीम बोला, "दे दीजिये बाबूजी ।"

तहसील में जाकर मैंने अपने दीवानी के फैसले की नकल मुखत्यार साहब को देकर कहा, "यह लीजिये वह नकल जिसे कल मांग रहे थे आप ।"

मुखत्यार साहब हँसकर बोले, "यह अच्छा किया आपने कि आप इसे ले आये वरना मुझे खुद ही आना होता अब दिल्ली इसे लेने के लिये ।"

नकल उन्हें देकर मैं बोला, "अच्छा, अब इजाजत ! मुझे शायद गाँव तक जाना पडे और आज ही दिल्ली भी लौट जाना है ।"

मैं और रहीम वहाँ से चलकर अपने गाँव को जाने वाली रिक्शाओं

के अड्डे पर पहुँचे तो वहाँ सन्नाटा सा हो रहा था।

मैंने एक रिक्शा वाले से पूछा, "करीम खाँ तो नहीं आया अभी अपनी रिक्शा लेकर।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया मेरी बात का।

मैंने फिर पूछा, "बोलते क्यों नहीं तुम। चन्दू आया है क्या ?"

वह बोला, "बाबूजी करीम खाँ बेचारे के तो बड़ी आ गई कल। हापुड़ से गाँव को रिक्शा लेकर जा रहा था। उसके हाथ लड़खड़ा गये और मोटर से टक्कर हो गई रिक्शा की।"

मेरी और रहीम की जबान से एक साथ निकला, "मोटर से ?"

"हाँ बाबूजी, मोटर से। वह तो गनीमत हुई कि रिक्शा खाली थी इसलिये किसी और को भी चोट नहीं आई। बेचारा करीम खाँ सड़क पर गिर पडा और बेहोश हो गया।

उसके पीछे कोई दो फर्लांग की दूरी पर चन्दू आ रहा था अपनी रिक्शा लिये। उसने करीम खाँ को देखा तो वह घबरा गया लेकिन बड़ी हिम्मत से काम लिया उसने। अकेले ने करीम खाँ को उठाकर अपनी रिक्शा में डाला और किसी तरह पैदल चलता हुआ गाँव के अड्डे पर आया।

वहां और भी गाँव के लोग मिल गये। एक-दो ने मिलकर उसे कुए की हरट के चबूतरे पर लिटाया।

अभी तक होश नहीं आया उसे।

प्याऊ वाली औरत यह देखकर एक लोटा पानी भर लाई और उसने करीम खाँ के मुंह पर छिडका तो एक सुबकी ली उसने।

फिर थोड़ी देर में आँखें खोलीं, लेकिन बाबू जी चोट बहुत आई है बेचारे को।

वहां से गाँव तक चन्दू ही ले गया उसे और बेचारा कल से उसकी ही तीमारदारी में लगा है।" इतना कहकर वह चुप हो गया।

रहीम की आँखों में आँसू भर आये यह सुनकर। वह उस रिक्शा वाले से बोला, "भय्या हमें गाँव तक पहुँचा दे ज़रा तेजी से।"

रिक्शा वाला बोला, "बैठिए, लेकिन रुपया पूरा डेढ़ लूँगा।"

मैं बोला, "डेढ़ ही लेना लेकिन रिक्शा तेजी से चलानी होगी, यह समझलो तुम।"

वह बोला, "हवा कर दूंगा बाबूजी! फिकर न करें आप। अब पहुँचाया आपको गाँव में।"

मैं और रहीम रिक्शा में बैठ गए। रिक्शा नई थी और चलाने वाला पहलवान पट्ठा था, कसाई का नया-नया छोकरा।

मैंने उससे पूछा, "तूने कब देखा था करीम खाँ को?"

वह बोला, "आज ही सुबह देखा था।"

मैंने पूछा, "कैसी हालत थी?"

वह बोला, "अच्छी नहीं थी बाबूजी! यों जी तो रहा ही है अभी, लेकिन मरे के ही बराबर है। हड्डी-पसली सब चूर-चूर हो गई हैं।"

मैंने पूछा, "क्या हस्पताल ले जाने के काबिल भी नहीं रहा?"

वह बोला, "ले कहीं भी जाओ, लेकिन रखा कुछ नहीं है उसमें। वह तो पहले ही मुर्दा था बेचारा और उसपर खुदा की यह मार आ पड़ी। चूरा-चूरा कर दिया उसका।"

रहीम माथे को पकड़े बैठा था मेरा सहारा लेकर। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। बोला नहीं गया उससे एक भी शब्द। उसने पूछा भी नहीं कुछ रिक्शा वाले से।

रिक्शा उस लड़के ने वाकई कमाल की चलाई। ऐसा लग रहा था कि मानो रिक्शा को लेकर हवा पर उड़ रहा है।

रिक्शा आधे घण्टे में ही गाँव के अड्डे पर पहुँच गई। वहाँ पहुँच कर वह बोला, "एक बीड़ी सुलगा लूँ बाबूजी। दम फूल गया। बहुत तेज लाया हूँ आपको। सिर्फ इसीलिए कि कहीं ऐसा न हो कि आपके पहुँचने से पहले ही बेचारा करीम खाँ इस दुनिया को छोड़ दे।"

मैं बोला, "जल्दी सिलगालो बीड़ी। इस समय एक सेकिंड भी देर बुरी लग रही है। करीम खाँ ने मेरे करे-धरे पर पानी फेर दिया। मैं तो सोच रहा था कि किसी तरह उसका बुढ़ापा सुधर जाये लेकिन उसने तो उसकी जरूरत ही नहीं समझी। मेरे लौटने से पहले ही भाग जाने की तैयारी कर ली। मेरे आने तक की तो इन्तजार करता।"

रहीम रोता हुआ मुझसे लिपटकर बोला, "बाबू जी ! अब्बा नहीं मिलेंगे क्या ?"

मैं उसे तसल्ली दिलाता हुआ बोला, "रहीम तसल्ली रख। जरूर मिलेंगे तुझे तेरे अब्बा।"

रिक्शा वाले ने बीड़ी सुलगाकर रिक्शा संभाल ली और फिर गाँव की ओर कच्चे रास्ते में बढ़ लिया। रास्ता खराब था लेकिन फिर भी वह काफी तेज रफ्तार से गाड़ी चला रहा था।

ज्यों-ज्यों गाँव नजदीक आता जाता था त्यों-त्यों रहीम के दिल की धड़कन बढ़ती जाती। मैं देख रहा था, उसके चेहरे को। जब से उसने अपने अब्बा की चोट का हाल सुना था, उसकी आँखों से आँसू गिरने बन्द नहीं हुए थे।

वह बराबर रोता ही आ रहा था मेरे पास बैठा और मैं उसे तसल्ली दे रहा था।

गाँव के पास आकर वह मुझसे लिपटकर बोला, "बाबूजी, अब्बा की सूरत देखनी नसीब भी होगी या नहीं ?"

मैं बोला, "धीरज से काम लो रहीम ! परमात्मा की मर्जी के सामने इन्सान की ताकत नहीं चलती। करीम खाँ की परेशानी को देख कर ही मैं आज तुम्हारे साथ आया हूँ। मुझे क्या पता था कि मेरे किये-धरे पर इस तरह पानी फिर जायगा।

चल रहे हैं और गाँव भी आ गया सामने। अपने अब्बा के तुम्हें दर्शन होने होंगे तो अवश्य होंगे।"

रहीम सुबकियां लेकर रोता रहा। रिक्शा आगे बढ़ती रही। और पाँच मिनट के अन्दर ही रिक्शा जाकर करीम खाँ के दरवाजे पर ठहर गई।

वहां का वातावरण एकदम शांत था। गाँव के लोग-बाग सब अपने-अपने काम से आ जा रहे थे। किसी को कोई विशेष परवाह भी नहीं थी कि उस सामने की झोंपड़ी में क्या हो रहा था।

रिक्शा रुकवाकर मैं और रहीम झोंपड़ी में गए। चन्दू बैठा पंखा झल रहा था और करीम खाँ एक टूटी खटिया पर पड़ा सो रहा था।

हमें देखकर चन्दू ने होटों पर खड़ी उंगली रखी, न बोलने का संकेत करते हुए और फिर झोंपड़ी से बाहर आकर बोला, "बोलना मत बाबू जी ! बड़ी मुश्किल से अभी पाँच मिनट हुए आँख झपी है ।"

मैंने धीरे से पूछा, "कैसी हालत है अब ?"

वह बोला, "हालत तो ठीक नहीं है लेकिन परमात्मा बचाये तो शायद बच जाए । चोट बहुत आई है ।"

फिर चन्दू रहीम की ओर देखकर बोला, "रहीम तुम आ गये, यह तुमने बहुत अच्छा किया। इसकी आत्मा तुझ में ही अटकी हुई है । रात कराह कराह कर बस यही कह रहा था कि कोई मेरे रहीम को दिखा दे एक बार मुझे ।"

रहीम रो पड़ा चन्दू की बात सुनकर और गिड़गिड़ाकर बोला, "चचा, अब नहीं जाऊंगा कहीं । परवरदिगार किसी तरह मेरे अब्वा की जिन्दगी लौटा दें ।"

मैं बोला, "दुआ मांगो रहीम परमात्मा से। उससे बड़ी ताकत और किसी के पास नहीं है ।"

और फिर मैंने चन्दू से पूछा, "किसी को दिखाया था क्या करीम खाँ को ?"

चन्दू बोला, "शहर तक जाने की तो इसमें जान नहीं थी बाबूजी ! गांव के डाक्टर साहब को ही दिखाया था। बेचारे दो बार खुद ही आकर देख गए थे। दवा भी दी है उन्होंने और इन्जेक्शन भी लगाया है ।"

मैं बोला, "तो ठीक है। अब आराम करने दो इसे। बोलना नहीं कोई ।"

रहीम चुपके से जाकर करीम खाँ की खाट के पाये से लगकर बैठ गया और पंखे से हवा करने लगा ।

मैंने रहीम को धीरे से बाहर बुलाकर कहा, "अब तुम यहीं रहो । मैं घर जा रहा हूं । जब करीम खाँ की नींद खुले तो मुझे बुला लेना ।"

और फिर चन्दू से बोला, "चन्दू तुमने करीम खाँ की देख भाल करके इंसानियत का हक़ अदा कर दिया। अब रहीम आ गया है, तुम भी थोड़ी-

बहुत देर के लिए कहीं जाना चाहो तो जा सकते हो ।"

चन्दू बोला, "मुझे कहीं नहीं जाना है बाबूजी ! जरा एक बीड़ी का बंडल ले आता हूँ ।"

मैंने कहा, "ले आओ ।"

मैं अपने घर की ओर बढ़ गया और चन्दू बीड़ी का बंडल लेने ।

मुझे अचानक ही आया देखकर माताजी ने घबराकर पूछा, 'कुशल तो है ?"

मैं बोला, "सब ठीक है । कोई चिन्ता की बात नहीं ।"

मुझे घर में घुसते हुए दुलारी भाभी ने भी देख लिया और वह भी तुरन्त उधर को ही लपकी चली आईं । उन्होंने भी वही प्रश्न किया जो माताजी ने किया था ।

मैं बोला, "सब ठीक है भाभी !" और फिर मैंने अपने आने का सब हाल उन्हें कह सुनाया ।

दुलारी भाभी बोलीं, "तो आगया रहीम ?"

मैं बोला, "हाँ, आगया । मेरे साथ ही आया है ।"

दुलारी भाभी बोलीं "यह तुमने बहुत अच्छा किया लालाजी ! वरना करीम खाँ की आत्मा तड़पती ही चली जाती रहीम के लिए । कल चन्दू थोड़ा दूध माँग कर ले गया था मुझसे तो कह रहा था कि करीम खाँ तड़प-तड़प कर बार-बार रहीम को ही पुकारता है ।"

मैं बोला, "भाग्य की बात है भाभी ! कल करीम खाँ हापुड़ तक मुझसे यूँ ही रोता गया कि मैं किसी तरह रहीम को तालाश करके उसके पास भेज दूं । उसके मिलने में भी देर नहीं लगी । कम्बख्त कल संध्या को ही मिल गया गांधी पार्क में और उसे लेकर आने में भी देर नहीं की, लेकिन उसका सुख उसके भाग्य में ही नहीं बदा था ।"

भाभी गम्भीरतापूर्वक बोली, "कुछ भी हो लालाजी लेकिन तुम उसे ले आए यह तुमने बड़े ही उपकार का काम किया । अब अगर करीम खाँ मर भी गया तो उसके दिल को शान्ति अवश्य रहेगी । तुम्हें बहुत-बहुत आशीश देगा बेचारा ।"

मैं हँसकर बोला, "आशीश वह दे चाहे न दे भाभी ! मैं तो यही

कहता हूं कि बेचारा बच जाए किसी तरह ।"

माताजी बोलीं, "बेटा ! आदमी अच्छा है करीम खाँ ! मेरे काम को तो बेचारे ने कभी आज तक मना नहीं की । कभी था हमारे यहां मुलाजिम, जब था लेकिन इतना मानता है कि कुछ कहने की बात नहीं। हफ्ते में एक दो बार तो जरूर ही आकर पूछ जाता था कि मुझे शहर से कोई चीज तो नहीं मंगानी है । मेरी शहर से लाने की हर चीज लाकर दे जाता है ।"

मैं बोला, "आदमी वाकई बड़ा नेक है माता जी ! लेकिन शरीर में उसके रहा कुछ नहीं अब । हड्डियों का पिंजर मात्र रह गया है और फिर यह दमे की बीमारी छोड़ते ही कहाँ है शरीर में जान ?"

माता जी बोलीं, "जान कहां से रहे बेटा ! जब खाने को ही न मिले आदमी को । अपने जवानी पहरे में, मुझे खूब याद है, यह पानी के हाथ की बारह रोटियाँ खाया करता था । मैं खुद अपने हाथ से देती थी इसे और उस पर एक लोटा मट्ठा सुबह और एक लोटा मट्ठा शाम को । खूराक से ही आदमी का शरीर चलता है ।"

तभी सामने से मंगलू की माँ आगई । मुझे देखकर बोली, "क्या दिल्ली नहीं गये तुम ?"

मैं बोला, "गया था मंगलू की माँ ! अभी आ रहा हूं दिल्ली से । कुछ काम था ऐसा ही ।"

मंगलू की माँ बोली, "कहीं दिखाई दिया मेरा मंगलू ?"

मैं मुस्कराकर बोला, "कल गया था और आज सुबह लौट आया । इतनी जल्दी मंगलू कहाँ मिल जाता मंगलू की माँ ! इस बार जाकर तलाश कराऊंगा ।"

मंगलू की माँ को साँस चढ़ा हुआ था और पसीना आ रहा था उसे । मैंने उसकी शक्ल देखकर पूछा, "ऐसी परेशान सी क्यों दीख रही हो मंगलू की माँ ?"

वह बोली, "परेशान सी क्या दीख रही हूं । अभी-अभी करीम खाँ की तरफ होकर आ रही हूं । मोटर से टकरा गया मरा । पता नहीं बचेगा कि नहीं । कल तुम न छुड़वा देते उसे तो मैं कल ही तीन रुपये

वसूल करके छोड़ती उससे। तुम्हें जाना था उसकी रिक्शा में इसीलिये मैंने कल उसे डेढ़ रुपया लेकर छोड़ दिया था।"

मैं उसकी शक्ल देखकर बोला, "तो क्या तुम अब भी उम्मीद कर रही हो कि तुम्हें डेढ़ रुपया मिल जायगा ? उस बेचारे की तो जान जा रही है और तुम्हें अपने डेढ़ रुपए की पड़ी है। कुछ तो हमदर्दी बरतो मंगलू की माँ।"

मंगलू की माँ बोली, "मर जाय तो मर जाय मरा, पर मेरा डेढ़ रुपया क्यों मर जाय ?"

मंगलू की माँ की बात सुनकर दुलारी भाभी को क्रोध आ गया। बोलीं, "इसीलिये तो तुझे डायन कहती हूं मैं मंगलू की माँ ! तू पैसे की ऐसी लोभिन है कि समय-बेसमय कुछ भी नहीं देखती।

कल जो तू उसकी खाट के पास टर-टर कर रही थी तो मुझे ऐसी लग रही थी कि तेरी शक्ल जिन्दगी भर कभी न देखूं। तूने दो ही रुपये तो दिये थे उस बेचारे को और डेढ़ रुपया तुझे मिल गया। अब अठन्नी रही तेरी सो तू मुझसे ले जाना।"

मंगलू की माँ गुस्से में भरकर बोली, "बड़ी आई है देने वाली मैं कोई भीख मांगती हूं किसी से ? अपना पैसा वसूल करने गई थी तो क्या गजब कर दिया मैंने ? और ऐसा कौन मरा है गांव भरे में जो अपना पैसा छोड़ देता है ?

मंगलू के बाप ने मरने के बाद तुझे याद नहीं है क्या कि इसी करीम खाँ को मैंने पाँच रुपए दिये थे।"

दुलारी भाभी पुरानी बात याद करके बोलीं, "तूने मंगलू के बाप के मरने के बाद जैसा लोगों का रूपया दिया वह सब जानती हूं मैं मंगलू की माँ ! बस रहने दे। क्यों दबी बातें उखड़वाती है मुझसे ? किसी का एक छदाम भी नहीं दिया। वह बेचारी दीना की बहू मर ही गई अपनी चीजों के दहाके में। एक छल्ला भी नहीं लौटाया तूने उसका। आई है बड़ी साहूकारनी की बच्ची बनकर।"

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "मंगलू की माँ ! तू फिक्र न कर। तेरा डेढ़ रुपया कहीं नहीं जायेगा। करीम खाँ का बेटा रहीम आ गया है।

मैं तेरा डेढ़ रुपया उससे दिला दूंगा तुझे ।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ की बांछें खिल गई। वह बोली, "क्या सच ? रहीम आ गया है तो अब मुझे कोई चिंता नहीं । मेरा डेढ़ रुपया अब कहीं मरने वाला नहीं ।

मैं अब एक बार भी नहीं जाऊंगी उसकी झोपड़ी पर ।"

मैं बोला, "बस दया कर उस गरीब पर अब तू ! तू वहाँ न जाना । मैं दिल्ली जाने से पहले ही तेरा डेढ़ रुपया तुझे दिला दूंगा ।"

तभी सामने से मैंने चंदू को आते देखा । मेरे ही पास आ रहा था वह । मैं उसे देखकर बोला, "क्या हाल है अब करीम खाँ का ?"

वह बोला, 'हाल तो वैसा ही है बाबू जी ! लेकिन याद कर रहा है आपको ।"

मैंने पूछा, "रहीम से बोला कुछ ?"

चन्दू ने कहा "बड़े ही प्यार से मिले दोनों बाप बेटे बाबू जी ! दोनों आँखों में आंसू भर कर । आपके बाल बच्चों को लाख-लाख आशीर्षे दे रहा था बेचारा ।

आपने उसकी जिन्दगी का आखीर संवार दिया बाबू जी ! अब वह मर भी जाये, तो कोई बात नहीं । लेकिन सच जानिये बाबू जी अगर करीम खाँ मर गया तो इस गाँव का एक बहुत ही नेक आदमी चला जायगा । इस गरीबी में भी उसने मेरे साथ वह-वह भलाइयां की हैं जो कोई बाप नहीं कर सकता अपने बेटे के साथ ।"

मैं बोला, "बैठ जा चन्दू ! अभी चलता हूं एक मिनट में ।"

चन्दू बैठ गया सामने पड़ी खाट पर और उसने अपने कुर्ते की जेब से बीड़ी का बंडल निकालकर एक बीड़ी सिलगाई ।

मैंने अपना कुर्त्ता, जो खूंटी पर टांग दिया था, उतार कर फिर गले में डाल लिया और चप्पलें पहनकर बोला, "चलो, चलें चन्दू ।"

चन्दू रास्ते में बोला, "बाबू जी पारसाल मुझे एक दिन हैजा हो गया था । अचानक गांव के अड्डे पर ही कै-दस्त हो गये । एक घंटे में ही मेरे शरीर का पानी हो गया ।

कोई पास नहीं आया मेरे । मेरी रिक्शा एक तरफ खड़ी थी और

रात के आठ बज गये थे। तभी यह हापुड़ से रिक्शा लेकर आया।

सवारियां अड्डे पर उतारकर उसने मेरी रिक्शा खड़ी देखी। मैं कुए की हरट के चबूतरे पर पड़ा था। उठने की ताकत नहीं थी मुझमें और कै-दस्त बन्द नहीं हो रहे थे।

मेरे चचा, जो मेरी रिक्शा में बैठकर आये थे, मुझे इसी दशा में छोड़कर गांव को चले आये।

करीम खाँ ने इधर-उधर देखा तो मैं दिखाई दिया उसे। वह मेरे पास आया। मेरे सब कपड़े कै-दस्त में सने थे।

इसने हरट का पाट बड़ी मुश्किल से घुमाकर कुए से पानी निकाला। फिर मेरे कपड़े धोकर साफ किये। अपना तेहमद मेरे बांधा और अपने कुर्ते का लंगोट अपने बांधा।

फिर पास के एक खेत से आठ-दस गंठियाँ पाड़कर लाया और उन्हें कुए की मन पर पत्थर से कुचलकर बड़ के पत्ते में उनका रस निकाल कर मेरे हलक़ में डाला।

परमात्मा की ऐसी करनी हुई बाबू जी कि उसी अरक से मेरे कै-दस्त बन्द हो गये।

बाबू जी! रात भर अकेला ही वहाँ जंगल में मुझे लिये बैठा रहा। जाने कहाँ-कहाँ से फूस-पतारा लाकर आग सिलगाई। उसी के सहारे सारी रात काटी।

सर्दी के दिन थे बाबू जी!

बस यह समझ लीजिये कि जान बच गई मेरी वरना उस दिन खत्म ही हो गया था मैं।"

चन्दू की बात सुनता-सुनता मैं करीम खाँ की झोपड़ी तक आ गया। रहीम पंखा झल रहा था उसे और वह धीरे-धीरे कराह रहा था।

मैं झोपड़ी में घुसकर बोला, "करीम खाँ!"

करीम खाँ ने मेरी आवाज सुनकर आँखें खोलीं।

मैं बोला, "मेरे आने की भी इंतजार नहीं की करीम खाँ! इतनी जल्दी की तूने इस दुनिया से भाग जाने की।"

करीम खाँ की आँखों में आँसू भर आये। वह हाथ जोड़कर बोला,

"बाबूजी ! आपने रहीम को लाकर दिखला दिया मुझे, जिसकी कोई उम्मीद नहीं थी मुझे । अब मैं मर भी जाऊँ तो कोई फिक्र नहीं है ।"

मैं उसे तसल्ली देता हुआ बोला, "मर क्यों जाओगे तुम करीम खाँ ? डाक्टर दवा दे रहा है । ठीक हो जाओगे ।"

मेरी बात सुनकर करीम खाँ, दर्द भरी मुस्कराहट चेहरे पर लाकर बोला, "बाबूजी ! डाक्टर बेचारा खुदा से बड़ा नहीं है । जब वह बुला रहा है तो डाक्टर बेचारा कैसे रोक सकता है ? अब कुछ रह नहीं गया है इस शरीर में ।

भला हो बेचारे इस चन्दू का जो मुझे मेरी इस झोपड़ी तक उठा लाया और इसी की बदौलत मुझ में इतना दम आ गया कि मैं आपके दर्शन कर सका ।

मेरी हड्डी-हड्डी चूरा हो चुकी है । बड़ा दर्द है सारे जिस्म में ।"

मैं बोला, "तुम आराम करो करीम खाँ ! ज्यादा बोलो नहीं । बोलने से जोर पड़ता है ।"

करीम खाँ बोला, "बोलूँगा नहीं तो बाबूजी मेरे दिल की बातें दिल में ही मुंदी चली जायेंगी । मरने की घड़ी तो टलेगी नहीं ।"

मैंने कहा, "कोई खास बात कहनी हो तो कहदो । लेकिन कम बोलो ।"

करीम खाँ बोला, "बाबूजी ! मेरे रहीम का ख़याल रखना ! और मेरी गलती को माफ कर देना । मैं पागल था जो मैंने उस लड़की से निकाह पढ़ा । मुझे रहीम के साथ ही उसका निकाह पढ़वाना चाहिए था ।

अगर मैं न रहा तो आप उससे रहीम का निकाह पढ़वा देना ।"

कहते-कहते करीम खाँ का हलक़ सूख गया । चन्दू ने पास में रखी बाल्टी से पानी लेकर उसके हलक़ में चार-पांच बूंदें डाली । उसे ज़रा शांति मिली ।

मैं थोड़ी देर वहाँ और रहा । करीम खाँ ने रहीम को कुल पन्द्रह रुपए का हिसाब बतलाया, जो उसे देना था । इनमें पांच रुपए चन्दू के और डेढ़ रुपया मंगलू की माँ का भी था ।

चन्दू के रुपयों का करीम खाँ ने नाम लिया तो चन्दू की आँखों में

आँसू भर आये।

चन्दू बोला, "करीम खाँ ! मेरे पाँच रुपए नहीं भूला तू ! मुझे तुझ से कुछ नहीं लेना। तूने वह एहसान किया है मुझपर जिसका बदला मैं तुझे चुका नहीं पा रहा हूं। परमात्मा तुझे इस बार बचा दें तो शायद मैं समझ सकूं कि मैंने वह बदला चुका दिया।"

चन्दू की बात सुनकर करीम खाँ की आँखों में भी आँसू भर आये।

तभी डाक्टर साहब आ गये। उन्होंने करीम खाँ को देखा। दवा दी और इंजैक्शन भी लगाया।

मैंने झोपड़ी से बाहर जाकर उनसे अकेले में बातें कीं। वह बोले, "नो होप।"

मैं चुप हो गया। डाक्टर साहब चले गये।

रहीम ने मुझसे अलहदा में ही पूछा, "क्या कहते थे बाबू जी डाक्टर साहब ?"

मैंने कहा, "तकलीफ ज्यादा है रहीम ! जो कुछ तुमसे सेवा बने करते रहो। परमात्मा ने चाहा तो ठीक हो जायगा।"

इंजैक्शन लगने से जरा नींद-सी आ गई करीम खाँ को। मैं चन्दू और रहीम को वहीं छोड़कर घर चला आया।

दुलारी भाभी तब तक माता जी के पास ही बैठी थीं। करीम खाँ के ही विषय में बातें कर रही थीं दोनों।

मुझे देखकर दुलारी भाभी ने पूछा, "कैसी हालत है करीम खाँ की ?"

मैंने कहा, "ठीक नहीं है। चोट बहुत आई है उसे।"

दुलारी भाभी बोली, "चोट क्या आई है, हड्डी-हड्डी टूट गई है। सारा शरीर बेकार हो गया है। वह तो प्राण ही अटके रह गये जाने कहाँ, वरना वहीं खत्म हो जाता।"

माता जी लम्बा साँस खींचकर बोलीं, "काल के आगे किसी की पार नहीं बसाती। सब डाक्टर और उनके इलाजों को बेकार कर देती है मौत। बड़ी ही खतरनाक है यह मौत भी।"

करीम खाँ की जो दशा मैं देखकर आया था उससे मेरा मन अशांत

सा हो उठा था। मैं खड़ा होकर बाहर अपने चबूतरे पर चला आया और घूमता रहा काफ़ी देर तक।

किसी से कोई बात करने के लिये मन नहीं हो रहा था।

सूरज छिप गया था और रात्रि का अंधकार चारों ओर घिर आया था। मैं फिर अपने घर के सहन में आकर खाट पर बैठ गया।

तभी मंगलू की माँ फिर आई और वह कुछ बातें करना चाहती थी परन्तु मैं बोला नहीं कुछ। उसे अपने मंगलू की ही धुन थी। किसी दूसरे के मरने जीने की उसे चिंता नहीं थी।

वह बोली, "मेरा मंगलू······"

मैं उठकर खड़ा होता हुआ बोला, "मंगलू की माँ! अब तुम जाओ। इस समय मैं कुछ नहीं सुन सकूंगा तुम्हारे मंगलू के विषय में। मेरा मन ठीक नहीं है।" और इतना कह कर मैं खड़ा होकर फिर अपने चबूतरे पर चला आया।

थोड़ी देर में चाँद निकल आया और उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया। आकाश में बादल भी था कुछ परन्तु चाँद पर छाया हुआ नहीं था। परवा हवा चल रही थी, बड़ी सुहावनी।

मैं घूमता रहा चबूतरे पर इधर-से-उधर। मेरा मन करीम खाँ में ही पड़ा हुआ था।

तभी मैंने देखा कि चन्दू लपका हुआ चला आ रहा था। उसे देखकर मैं बोला, "चन्दू!"

उसने कहा, "हाँ बाबू जी।"

मैंने पूछा, "कहाँ जा रहे हो?"

वह बोला, "ज़रा डाक्टर के पास जा रहा हूं। बड़ी तकलीफ़ है करीम खाँ को। चोट के दर्द से चिल्ला रहा है।"

मैंने कहा, "जल्दी बुला लाओ। मैं चलकर देखता हूं उसे।"

चन्दू डाक्टर की तरफ़ चला गया और मैं करीम खाँ की झोंपड़ी की ओर बढ़ा।

रहीम खड़ा-खड़ा रो रहा था।

मुझे देखकर उसे ज़रा तसल्ली हुई। मैं बोला, "रोने का समय

नहीं है यह रहीम । धीरज से काम लो । परमात्मा को जो मंजूर है, उसमें किसीका कोई चारा नहीं ।"

मेरी आवाज़ पहचानकर करीम खाँ बोला, "बाबू जी बड़ा दर्द है । तमाम बदन जकड़ा जा रहा है ।"

मैंने उसका हाथ छूकर देखा तो ठंडा पड़ गया था उसका शरीर । नब्ज़ पर उंगलियाँ रखीं तो, उसकी रफ़तार बहुत धीमी पड़ चुकी थी ।

मैं बोला, "करीम खाँ ! परमात्मा का नाम लो । वही तुम्हारी तकलीफ़ दूर कर सकता है इस समय ।"

करीम खाँ की दबी ज़बान से निकला, "या खुदा ! मुझे उठाले अब ।"

तब तक चन्दू भी डाक्टर को लेकर आ गया ।

मैंने उनसे कहा, "डाक्टर साहब इसे मॉफिया का इंजैक्शन लगा दो । उससे इसे नींद आ जायेगी और दर्द में भी आराम होगा ज़रा ।"

डाक्टर मुस्कराकर बोला, "यही कर रहा हूं । और कोई तो इलाज़ ही क्या हो सकता है इस समय ?"

डाक्टर इंजैक्शन लगाकर चला गया ।

करीम खाँ को फिर नींद आगई ।

मैं झोपड़ी से बाहर आया तो चन्दू ने मेरे पास आकर पूछा, "बाबू जी क्या कहते थे डाक्टर साहब ?"

मैं दबी ज़बान से बोला, "चन्दू ! अब ज्यादा देर का मेहमान नहीं है करीम खाँ । इसका सांस लम्बा पड़ चुका है और गले से खरखराहट की आवाज़ आने लगी है ।

जो इंजैक्शन अभी लगाया है डाक्टर ने इससे नींद आगई है इसे । नींद क्या है, बेहोशी सी है यह । इससे दर्द नहीं होगा इसे ।"

चन्दू फिर अन्दर चला गया ।

मैं फिर घूमता हुआ अपने घर की तरफ चला आया ।

माता जी चबूतरे पर ही खड़ी थीं और उनके पास ही दुलारी भाभी खड़ी थीं ।

दुलारी भाभी ने पूछा, "क्या हाल है लाला जी ?

मैं बोला, "कुछ हाल नहीं है भाभी ! आखरी सांस गिन रहा है

बेचारा।"

मैं भाभी और माताजी के साथ घर में चला आया।

माताजी बोलीं, "कुछ खाना खाले बेटा !"

मैं बोला, "कुछ खाने का मन नहीं हो रहा माताजी ! पता नहीं क्यों कुछ ऐसी तबियत हो गई है कि दिल ही नहीं लग रहा किसी चीज़ में।"

माताजी कुछ बोली नहीं फिर।

मैं खाट पर लेट गया। माता जी और दुलारी भाभी आपस में कुछ और बातें करने लगीं।

बहुत रात तक नींद नहीं आई। मन में यही रहा कि चन्दू अब आया और उसने अब आकर करीम खाँ के मरने की सूचना दी।

आधी रात से अधिक समय हो गया। दुलारी भाभी कब चली गई और माताजी कब आकर मेरे पास वाली खाट पर सो गई, इसका मुझे पता ही नहीं चला।

लगभग चार बजे होंगे जब किसी के पैरों की आवाज़ मुझे अपने दरवाज़े पर सुनाई दी।

मैं उठकर खड़ा हो गया। दरवाज़े के पास जाकर कुंडी खोली तो कोई नहीं था वहाँ। जाने कौन था उधर से गुज़रने वाला।

मैं कुंडी बंद करके फिर अपनी खाट पर आ लेटा।

सोचता रहा कि जाने क्यों मुझे करीम खाँ से इतनी उन्सियत हो गई। क्यों मैं सोना चाहने पर भी नहीं सो पा रहा।

तमाम गाँव सो रहा था और मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैं फिर खाट से उठा तो माताजी की भी आँख खुल गई।

वह बोलीं, "तू सोया नहीं बेटा !"

मैंने कहा, "नींद ही नहीं आई माता जी ! कई बार आँखें झपकाने की कोशिश की लेकिन सब बेकार ही रहा।"

मैं खाट से खड़ा होकर थोड़ी देर तो इधर-उधर घूमा और फिर माता जी से बोला, "ज़रा कुंडी तो बन्द कर लेना माता जी ! मैं देख ऊं करीम खाँ को जाकर।"

माताजी बोलीं, "इतनी रात को ?"

मैंने चन्दा की चांदनी में अपनी कलाई में बंधी घड़ी पर देखते हुए कहा, "रात नहीं है अब। चार बज रहे हैं। अभी आता हूं जरा उसे देखकर।"

माताजी बोली, "सुबह चले जाना बेटा ! गाँव बड़ा खराब है यह। तेरे खानदान के लोग तेरे खून के प्यासे हैं। वे हर समय इसी ताक-झांक में लगे रहते हैं कि तुझे अकेला देखकर तुझ पर हमला कर दें।"

मैं हँसकर बोला, "माताजी चून का बना हुआ नहीं हूं मैं। मुझ पर हमला करने की ताकत नहीं है किसी में भी।"

यह कहता हुआ मैं दरवाजे की ओर बढ़ गया। कुंडी खोली और घर से बाहर हो गया। माताजी घरसे बाहर आकर चबूतरे पर खड़ी हो गईं और मुझे करीम खाँ की झोंपड़ी की ओर जाता देखती रहीं।

थोड़ी ही दूर बढ़ा था मैं कि सामने से चन्दू आता दिखाई दिया।

वह बोला, "आपके ही पास आ रहा था बाबूजी !"

मैंने पूछा, "खैरियत तो है ?"

वह लम्बा सांस लेकर बोला, "बस आखिरी सांस है बाबूजी !"

मैंने झोपड़ी में जाकर देखा तो करीम खाँ का शरीर ठंडा पड़ चुका था। उसमें कुछ भी शेष नहीं था।

मैं बाहर निकल आया। रहीम जोर-जोर से "अब्बा-अब्बा" कहकर रो पड़ा और आकर मुझसे लिपट गया।

मैं बोला, "घबराओ नहीं रहीम ! जो आया है इस दुनिया में वह एक दिन जरूर जाएगा। करीम खाँ की मिट्टी तुम्हारे हाथों से संगवाई जायगी इसी बात का मुझे सन्तोष है और तेरे यहां आजाने से यह भी संतोष के साथ मर सका। वरना इसकी आत्मा तुझसे मिलने के लिए तड़पती ही रह जाती।"

चन्दू की आँखों भी आंसू भर आए।

मैं चन्दू से बोला, "चन्दू ! तुमने इन्सानियत का हक़ अदा कर दिया। समय पड़ने पर इन्सान ही इन्सान के काम आता है। तुम्हारा एक बुजुर्ग साथी तुम लोगों के बीच से भगवान् ने उठा लिया। तुमने

आखरी समय में जो इसकी सेवा की, इसे देखकर मैं समझ सका कि मेरा गाँव इन्सानों से खाली नहीं है ।"

करीम खाँ खत्म हो गया । उसका शव गाँव के कब्रिस्तान में दफना दिया गया । मैं भी जनाज़े के साथ गया ।

दस बजे हम लोग उसे दफ़नाकर लौटे ।

घर आकर मैंने स्नान किया ।

माताजी बोलीं, "बेचारे करीम खाँ की झोपड़ी भी खाली हो गई । जब मैं ब्याही हुई आई थी यहाँ तो बेटा यही मेरे रथ को हाँक कर लाया था । बड़ा ही हँसमुख आदमी था । उन दिनों बड़ा पूरा परिवार था इसका । दो बीवियाँ थीं और तीन बच्चे । उन सब में से केवल करीम खाँ और रहीम ही बचे थे पिछली ताऊन की बीमारी में । आज करीम खाँ भी बेचारा चल बसा ।"

माताजी ने खाना परोसा परन्तु कुछ खाया नहीं गया मुझसे । रह-रहकर मुझे करीम खाँ का ध्यान आ रहा था । मैं सोच रहा था अपने मन में कि कैसे आराम के दिन लौटते-लौटते खत्म हो जाते हैं ।

रहीम को अपने साथ लाया था इसलिए कि करीम खाँ को कुछ आराम मिलेगा । लेकिन आराम था ही नहीं उस बदनसीब की किस्मत में । मेरे आने से पहले ही मोटर से टकराकर चकनाचूर हो गया ।

तभी दुलारी भाभी आ गईं । उन्हें भी दुःख था करीम खाँ के गुजर जाने का । वह बोलीं, "करीम खाँ की आखिरी मंजिल पूरी करा आए लालाजी ! बेचारा रहीम झोपड़ी में बैठा दहाड़ें मार-मार कर रो रहा था ।"

मैं बोला, "समझ जाएगा भाभी ! जिसे जाना था वह चला गया । मरने वाला क्या रुकता है किसी के रोकने से । यह ऐसा समय है जो टाले नहीं टलता ।

आदमी चला जाता है और उसके कारनामे रह जाते हैं दुनिया में । भला होता है तो उसके बाद भी चार आदमियों की जबान पर आ जाता है उसका नाम और बद होता है तो कोई नाम भी नहीं लेता उसका ।"

तभी सामने से मंगलू की माँ आ गई। वह मुस्कराकर बोली, "गड़ुवा आए मरे करीम खाँ को। अच्छा हुआ कम्बख्त मर गया। आए दिन दो रुपये मांगने आ खड़ा होता था घर की चौखट पर, पता नहीं किस-किस के रुपये खाकर मरा होगा। बस मारे ही गए सब बेचारों के। अब रहीम क्या देगा उसके बाद?"

मैंने मंगलू की माँ के चेहरे पर दृष्टि डाली तो वह मेरी नजरों को पहचानकर बोली, "सच कह रही हूं भय्या! इस मरे को रुपये कर्ज माँगने में शर्म ही नहीं आती थी। दाँत निकालकर ऐसे गिड़गिड़ाता था कि देने ही पड़ जाते थे मुझे।"

तभी मैंने क्या देखा कि रहीम मेरे घर का दरवाजा खोलकर अन्दर चला आया।

मैं दूर से ही देखकर स्नेह भरे स्वर में बोला, "आजाओ रहीम! खड़े कैसे रह गए?"

रहीम और आगे बढ़ आया और आकर मेरी खाट के पास ही जमीन पर उकड़ू बैठ गया।

इस समय बहुत गम्भीर थी उसकी मुद्रा। उसने अपनी जेब से पन्द्रह रुपये निकाले और मेरी तरफ को करके बोला, "बाबूजी! अब्बा ने जो पन्द्रह रुपये का कर्ज बतलाया था वह आप अदा करा दें।"

मैंने कहा, "हो जाएगा रहीम! ऐसी जल्दी क्या थी?"

रहीम बोला, "बाबूजी इस गाँव के आदमियों को आप नहीं जानते। मैं जानता हूं सबको। आप ये रुपये ले लीजिए और पाई-पाई चुकता करा दीजिए अपने सामने। यह काम आप करा देंगे तो मैं अब्बा के बतलाए हुए एक काम से निजात पा जाऊँगा।"

मैंने रुपये अपने हाथ में ले लिए और उनमें से दो रुपये मंगलू की माँ की ओर करके बोला, "ले मंगलू की माँ! अपना डेढ़ रुपया काट ले और अठन्नी वापस कर।"

मंगलू की माँ ने झट अपने लहंगे के जालीदार कमरबन्द की गाँठ में से खरीज निकालकर आठ आने मुझे देते हुए दो रुपये ले लिए और फिर प्रसन्नतापूर्वक रहीम से बोली, "ऐसी जल्दी क्या थी रे रहीम!

मेरे रुपये क्या कहीं मरे जाते थे ?"

और फिर मुझसे बोली, "बड़ा ही ईमानदार आदमी था बेचारा करीम खाँ ! गरीब जरूर था लेकिन ईमान को कभी हाथ से नहीं जाने दिया उसने।

और ऐसा ही यह उसका बेटा रहीम भी है।"

फिर रहीम की ओर मुँह करके वे दो रुपये आगे बढ़ाकर बोली, "तुझे जरूरत हो तो तू रखले रहीम ! मेरे रुपये आयेंगे। मुझे क्या कुछ ऐसी जल्दी है इन रुपयों की।"

रहीम बोला नहीं एक भी शब्द भी अपनी ज़बान से। केवल देखता भर रहा मंगलू की माँ के चेहरे पर।

मंगलू की माँ की ये बातें दुलारी भाभी को क़तन पसन्द नहीं आईं। वह जरा गुस्से में उससे बोलीं, "अब रख क्यों नहीं लेती है इन्हें मंगलू की माँ ! तेरी ये ही बातें मुझे पसन्द नहीं आतीं। अभी रो रही थी डेढ़ रुपये के लिए और अब मिल गये तो बड़ी दानी बन रही है।"

रहीम ने डबडबाये नेत्रों से दुलारी भाभी के चेहरे पर देखा और धीरे-धीरे बोला, "मैंने एक-एक लफ्ज सुना है जो इसने कहा था। मैं दरवाजे पर खड़ा हुआ सब कुछ सुन रहा था।"

मैंने देखा कि रहीम की आँखें क्रोध से लाल हो गई थीं इस समय। वह मंगलू की माँ की ओर देख कर बोला, "मंगलू की माँ ! तू जितनी ईमानदार है वह बाबूजी नहीं जानते। लेकिन तू समझती है कि क्या मैं भी नहीं जानता ?"

भंगो भंगिन की चमक चूड़ियाँ तूने मारलीं, कल्ली चमारी के कान के बुन्दे तू हज्म कर गई; सिल्लो कुम्हारी की झाँवरें तूने बेच खाईं। ननका धोबी के चाँदी के बटन तू सटक गई, मुनवा लुहार की अंगूठी तेरे पेट में उतर गई। बोल ! और गिनाऊं ?"

मंगलू की माँ रहीम की बात सुनकर मुस्करा रही थी। उसी मुस्कराहट में ढूंगे झटकाकर बोली, "बस रहने दे रहीम ! तेरा बाप मरा है आज ही, मैं कुछ कहती नहीं तुझसे। वरना······"

रहीम बोला, "वरना क्या करती तू मंगलू की माँ ? तेरा कुछ और

निकलता हो तो वह भी मांगले तू । अब्बा ही तो मर गए, मैं नहीं मरा हूँ अभी । अपने अब्बा के कर्ज का मैं देनदार हूं । मेरा ईमान सलामत है । मैं तेरी तरह नहीं करूंगा कि मंगलू के बाप ने जो कुछ खा लिया था लोगों का वह सब हज्म कर गई तू और डकार भी नहीं ली तूने । तेरे कारनामों को सारा गाँव जानता है । तभी तो कोई पास नहीं बैठने देता तुझे अपने गाँव भरे में । पता नहीं बाबू जी ने कैसे बैठ जाने दिया है तुझे अपने पास । यह बेचारे जानते नहीं हैं तुझे । कभी गाँव में आते नहीं हैं, किसी के पास उठते-बैठते नहीं हैं, इसीलिए नहीं जानते तुझे ।"

मंगलू की माँ उठकर चली गई वहाँ से। उसने बात को आगे बढ़ाना बेकार समझा । उसे अपने डेढ़ रुपये की दरकार थी और वे उसे मिल चुके थे ।

वह चली गई तो मैं बोला, "शायद बुरा मान गई मंगलू की माँ ।"

दुलारी भाभी बोलीं, "बुरा-वुरा किसी का नहीं मानती है यह लाला जी ! और फिर यह सब तो सच है जो रहीम ने बतलाया । यह मुँह से चाहे न कहे लेकिन दिल तो जानता है इसका ।"

माता जी मुँह चढ़ाकर बोली, "ऐसी तो है ही यह मंगलू की माँ बेटा ! गाँव में सब इसे बेईमान समझते हैं । कोई गिरवी तो अब एक पैसे की चीज नहीं रखता इसके पास। और जब किसी को कहीं पर भी रुपया मिलने का आसरा नहीं रहता गाँव भर में तब वह इसके पास आता है । बस ऐसी ही साहूकारनी है यह गाँव की ।"

मेरा दिल दहल गया माता जी की बात सुनकर । मैं सोच रहा कि कितनी गरीबी है अभी हमारे देश के देहात में और कितनी दिक्कत है गरीब मजदूर को ।

रहीम के पन्द्रह रुपये मैंने उन-उन लोगों को बुला कर दे दिए जिन्हें देने के लिए करीम खाँ कह गया था ।

चन्दू ने पाँच रुपये नहीं लिए । मैं देने लगा तो उसकी आँखों में आँसू भर आए । वह बोला, "बाबू जी जब करीम खाँ ही नहीं रहा तो ये पाँच रुपये कैसे । वह रहता और देता अपने हाथ से तो मैं खुशी-खुशी ले लेता । लेकिन अब नहीं लूंगा । मुझे आप शरमिन्दा न करें ।"

मैंने अधिक जोर नहीं दिया। रहीम को वापस पाँच रुपये लौटाकर बोला, "रहीम ! चन्दू पर तू इस गाँव में विश्वास कर सकता है। यही एक आदमी है जो दिल से तो तेरा हमदर्द है।"

रहीम की आँखों में भी आंसू भर आये।

संध्या को मैंने क्या देखा कि मंगलू की माँ फिर चली आ रही है।

उसे देखकर मैं हँसकर बोला, "आजा मंगलू की माँ ! और सुना क्या हाल-चाल है तेरा ?"

मंगलू की माँ मेरे पास आकर पीढ़े पर बैठ गई और बोली, "हाल-चाल कुछ नहीं है भय्या ! ऐसा लगता है कि अब मंगलू देखने को नहीं मिलेगा। वह डायन उसे गाँव में नहीं आने देगी।"

मैंने हँसकर कहा, "तो तू ही चली जा उनके पास। खुद जाकर अपने मंगलू को देख आ। तू जाकर खड़ी हो जायेगी उनके घर में तो क्या तुझे वह धक्के देकर घर से निकाल देंगे ?"

मंगलू की माँ बोली, "मैं उस डायन के घर में पैर नहीं रख सकती भय्या ! मरती मर जाऊंगी लेकिन खुशामद नहीं करूंगी उसकी। अपनी दुर्गत्ति कराने इस बुढ़ापे में मैं उसके पास जाऊँ, यह नामुमकिन है।"

मैं मुस्कराकर बोला, "ऐसा दृढ़ संकल्प कर लिया है तो फिर खाक डाल उन पर। तू ही क्यों मरती है उनके लिये ? दान-पुन्न कर कुछ ! अपने बुढ़ापे को सुधारना चाहती है तो अपना पैसा किसी नेक काम में लगा। लड़कियों की पाठशाला खुलवादे अपने नाम से गाँव में। जो कन्याएँ उसमें पढ़ेंगी, तेरा नाम लेंगी।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "भय्या ! गाँव वाले तो हँसी करते ही है मेरी इस बुढ़ापे में, तूने भी हँसी करने की ठान ली। मेरे पास पैसा होता तो मैं मंगलू को ही क्यों याद करती !"

मैं बोला, "मंगलू को याद करने से पैसे का क्या संबंध ? वह बेटा है तेरा, उसे तो तू याद करेगी ही। तेरे पास पैसे की क्या कमी है। मंगलू की बहू का सब जेवर तेरे ही पास है। तेरे खाने के लायक अनाज रामदीन तुझे घर बैठे ही तेरे खेतों से कमा कर दे देता है। तुझे पैसे के लिए मंगलू की दरकार नहीं है।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ खिन्नाकर बोली, "तुम्हारे कान ऐसा लगता है कि वह दुलारी भर गई है। उसी ने गलत सलत बातें तुम्हें बतलादी हैं। मेरे पास जेवर जरूर है मंगलू की बहू का लेकिन उस से क्या पेट भरता है ? खेतों में जो कुछ पैदा होता है उसमें से एक दाना भी मैं खाती हूं तो कसम ले लो।"

मैंने पूछा, "क्यों नहीं खाती तू ?"

मंगलू की माँ बोली, "भय्या ! कच्ची बात क्यों निकलवाते हो मेरी जबान से। पर्दा ही पड़ा रहने दो मेरी आबरू पर।"

मैं बोला, "ऐसी क्या बात है ! सुनूं भी तो। मैं क्या कहने जाता हूं किसी से। तुम जानती ही हो कि मैं किसी के पास उठता-बैठता नहीं हूं।"

वह बोली, "सुनना ही चाहते हो तो सुन लो। लड़की की शादी में जो रुपया खर्च हुआ था उसमें से पंद्रहसौ रुपया अभी मुझे और देना बाकी है। खेतों में जो कुछ पैदा होता है वह सब उसी कर्ज को पाटने में चला जाता है। अपना खर्च तो में यूं हीं रुपया-धेली किसी को उधार देकर उसके सूद से चलाती हूं। लेकिन यह गाँव इतना बद है कि जो ले लेता है वह देने का नाम ही नहीं लेता।"

मैं बोला, "तो क्या सचमुच ही तू खाली है मंगलू की माँ ?"

वह रुआंसी-सी होकर बोली, "इसीलिये तो मंगलू की बहू मुझे अपने पैर की जूती भी नहीं समझती। मेरे पास पैसा होता तो नौ बार नाक रगड़ती मेरे सामने आकर।"

मैं बोला, "मंगलू की माँ ! तू पैसे को जितना महत्व देती है जिंदगी में उतने महत्व की चीज़ पैसा नहीं है। पैसा बड़ी चीज है जिन्दगी को चलाने के लिये लेकिन उसी के दबाव में यह दुनिया चलती हो ऐसा मैं नहीं मानता। आदमी के जीवन को सुखमय और शांतिपूर्ण बनाने के लिये प्रेम पूर्ण व्यवहार की आवश्यकता है। प्रेम पूर्ण व्यवहार से अपने ही नहीं पराये भी अपने हो जाते हैं।

परसों जब मैं रहीम को साथ लेकर दिल्ली से लौटा और करीम खाँ की झोपड़ी में गया तो मैंने देखा कि चन्दू उसकी इस तरह सेवा में लगा था कि क्या किसी का सगा बेटा कोई कर सकेगा। मैं पूछता हूं तुझ से

कि चन्दू करीम खाँ का क्या लगता है ?"

मेरी बात का मंगलू की माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मैं बोला, "तू मंगलू के लिए परेशान है। पगली सी हो गई है तू। तुझे होश नहीं है अपने तन-वदन की। लेकिन अब भी यदि वह यहाँ आ जाये तो मुझे विश्वास नहीं होता कि तू उससे नर्मी के साथ बर्ताव करेगी। तूने उसे पाला-पोसा और बड़ा किया, इस एहसान का तू अनुचित दबाव डालना चाहेगी उसपर। उसके दिल और दिमाग की शांति को तू नष्ट करना चाहेगी। उसके दिल को छील देने वाली बातें करेगी।"

"मैं कुछ नहीं करूंगी भय्या! मै कुछ नहीं करूंगी, तू सच जान मैं कुछ नहीं करूंगी। तू किसी तरह एक बार मेरे मंगलू को लाकर मुझे दिखा दे।" मंगलू की माँ बोली।

मैंने मुस्कराकर पूछा, "केवल मंगलू को ही ? या उसी बहू और उसके बेटे को भी ?"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ ने मेरे चेहरे पर बड़े ही ध्यान के साथ देखा।

मैंने देखा कि उसका स्वाँस तेजी से ऊपर नीचे को चल रहा था। उसकी त्यौरी बदल रही थी।

वह बोली नहीं एक शब्द भी और फिर अचानक ही बड़े जोर से खिलखिला कर हँस पड़ी। कितनी बुरी हँसी थी उसकी कि मैं क्या कहूं।

माता जी ने इधर-उधर देखा तो वह मंगलू की माँ को डाट कर बोली, "क्या पगली हो गई है मंगलू की माँ। तू जा यहाँ से। आज लाला का मन ठीक नहीं है। जाने कैसी हँसती है तू कि मुझे डर लगने लगता है।"

तब तक मंगलू की माँ की हँसी बन्द हो चुकी थी। वह लजा कर बोली, "बीबी माफ कर दो मुझे। मैं हँसना जरा भी नहीं चाहती पर जाने कैसी हँसी आती है कभी-कभी कि मैं रोकने पर भी उसे रोक नहीं पाती।

अभी भय्या ने उस डायन मंगलू की बहू का नाम लिया तो मुझे इतना क्रोध आया इतना क्रोध आया कि मैं संभाल ही न सकी अपने को।

मेर सिर झनझना उठा और जाने कैसे हँसने लगी मैं ?"

माता जी बोलीं, "मुझे तेरा इस तरह हँसना बिलकुल पसंद नहीं है मंगलू की माँ ! मेरे घर आकर तू इस तरह न हँसा कर ।"

मंगलू की माँ की मनोदशा को मैं समझ रहा था । मैं माता जी से बोला, "यह जानकर नहीं हँसती माता जी ! इसकी मनोदशा ठीक नहीं है । इसीलिये जब यह अपने मस्तिष्क पर पड़ने वाले विचारों के भार को सँभालने में लाचार हो जाती है तो हँसने के अलावा और कोई चारा ही नहीं रहता इसके पास । ऐसी दशा में यह रो भी सकती है ।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की माँ बोली, "रोती भी हूँ कभी-कभी भय्या ! और घंटों रोती रहती हूँ । मुझे पता ही नहीं रहता अपना । आँखों में आँसू एक नहीं होता और गला चिपचिपाने लगता है और बदन में कंपकपी आ जाती है ।"

मैंने और अधिक बातें करना उचित नहीं समझा मंगलू की माँ से । मैं बोला, "अब तू जा मंगलू की माँ ! और मन को शांत रखने की कोशिश कर । तूने अपनी यह दशा अपने आप खराब की है, इसे तू ही ठीक कर सकती है । मैं किसी दिन मंगलू को बुलाकर समझाने का प्रयत्न करूंगा कि वह यहाँ आये और तेरी खैर-खबर ले ।"

मंगलू की माँ गिड़गिड़ाकर बोली, "भय्या ! जीते जी तुम्हारा एह-सान मानूँगी । जब तुम रहीम को ढूँढ़ लाये तो क्या मेरे मंगलू को नहीं ला सकोगे ?"

इतना कहकर मंगलू की माँ चली गई ।

थोड़ी ही देर में मैंने क्या देखा कि मंगलू की माँ की ताई अपने छोटे लड़के कनूक को लेकर आ पहुँची ।

उसे देखकर मैं बोला, "आजा ताई ! बैठ जा । उस दिन सुबह तो मैं तेरा इंतजार ही करता रहा ।"

ताई बोली, "बेटा उस दिन यह तेरा भय्या कनकू कहीं बाहर चला गया । इसीलिए नहीं आई । बड़ा तो आज भी नहीं है गाँव में ।"

दुलारी भाभी ने मुझे आते ही सूचना दे दी थी कि उस दिन पुलिस ताई के दोनों लड़कों को अवैध शराब तय्यार करने के जुर्म में पकड़ कर

ले गई थी। फिर पीछे से छोटे लड़के कनकू को तो छोड़ दिया था और बड़े को जेल भेज दिया।

मैंने झुंझलाकर पूछा, "कहाँ चले गये थे ये ताई ?"

ताई बात छिपाकर बोली, "अपने मामा के घर चले गये थे बेटा।"

ताई की बात सुनकर मैं मन-ही-मन मुस्कराया और फिर कनकू की शक्ल देखी। कुर्ता दोनों कंधों पर से फटा हुआ था और मैल से काला पड़ गया था। धोती भी जीर-जीर हो रही थी उसकी, लेकिन अपनी जून में मस्त दिखलाई दे रहा था वह।

गर्दन नीची ही किये बैठ गया वह उकड़ू जमीन पर और ताई को माता जी ने पीढ़ा दे दिया।

मैंने कनकू से पूछा, "क्यों रे कनकू ! तूने मंगलू की माँ के खेत को जोतना क्यों बन्द कर दिया था ? क्या कोई और अच्छा काम मिल गया था तुझे ?"

मेरी बात सुनकर कनकू को पुरानी बात याद आ गई। उसे याद आया कि वह कैसे आराम से खेती करता था। अपने मटर के खेत के डौले पर बैठ कर कितनी आजादी से कच्ची-कच्ची मटर की फलियाँ खाता था। एक क्यारी में जो गाजर और मूली वह बोता था उन्हें खोद खोद कर खाने में उसे कितना आनंद आता था। एक बार उसने दो क्यारी शकरकंदी भी बोई थी और बहुत मीठी हुई थीं उसके खेत की शकरकंदियां। खेत के एक किनारे पर दो केले के पेड़ भी उसने लगाये थे और उन पर छोटी-मोटी दो गहल भी आई थीं जिनमें से एक मंगलू की माँ को दे आया था वह और एक उसने अपने ही घर माल में दबा दी थी। कितना बढ़िय निकला था वह केला, मीठा शहद।

वह सब स्वप्न था आज। उसकी दृष्टि ताई की ओर गई और मैंने देखा कि देखते-देखते ही उसकी आँखें लाल हो गईं। कुछ कहना चाहता था वह लेकिन मन की बात को मन में ही दबाकर रह गया।

मैंने पुरानी बात को फिर उकसा कर पूछा, "क्या मंगलू की माँ ने ही छुड़ा लिये थे तुमसे अपने खेत ?"

मेरी बात सुनकर ताई बीच में ही बोली, "उस कलमुंही का नाम

मत लो मेरे सामने बेटा ! ना जाने कहाँ से वह कलंकिनी आ गई इस खानदान में कि सब चौपट हो गया। मंगलू का बाप बेचारा बड़ा ही नेक था। अपने ताऊ से बिना पूछे कोई काम नहीं करता था। कनकू और इसके भय्या को अपने सगे भय्यों के समान समझता था।"

मैंने अपना रुख फिर कनकू की ओर किया और उससे पूछा, "क्यों भाई कनकू ! तुम्हारी भाभी से क्यों नहीं पटी ?"

कनकू ने तब भी मेरी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह चुप-चाप नीची गर्दन करके बैठा रहा।

ताई थोड़ी देर में उठकर चली गई। आज ताऊ की तबियत बहुत खराब थी।

ताई के चले जाने पर कनकू गम्भीरतापूर्वक बोला, "भय्या ! दोस सब हमारा ही है। भाभी का कोई कसूर नहीं। भगवान् को जान देनी है, झूठ नहीं बोलूँगा आपसे। हमारी माँ की ही करतूतों से आज हमें यह दिन देखना नसीब हुआ है। इसने कभी हमें गलत रास्ते पर चलने से नहीं रोका।"

कनकू की सत्यवादिता ने मुझे प्रभावित किया। मैंने उससे पूछा, "तो कनकू सच-सच बता कि क्या तुमने मंगलू की माँ को उसके विधवा होने पर एकांत में जाकर छेड़ा था ?"

कनकू बोला, "छेड़ा था भय्या ! उसके मन की लेनी चाही थी। उस पर वह आग-बबूला हो उठी और कुल्हाड़ी लेकर बड़े भय्या के सामने आई। मैं पहले ही आ चुका था वहाँ से।"

मैंने पूछा, "जब तुमने इसकी जमीन जोतनी बन्द कर दी तो फिर क्या पेशा अख्तियार किया ?"

कनकू बोला, "पेशा क्या रह गया फिर ? मजदूरी या चोरी ! यही करते रहे हम। जैसा भी दाव लगा वैसा ही किया। बापू ने अपनी जिन्दगी में फली नहीं फोड़ी। सदा खाट पर बैठकर ही खाई है। पहले दो भय्या कमाने वाले थे फिर दो बेटे हो गये।

इसमें भी कोई घाटा न आता अगर माँ और बापू ने भाभी के खेत हमसे न छुड़वा दिये होते। खेतों के हाथ से जाते ही हम बेसहारा हो

गये। ताई और बड़े भय्या ने सोचा था कि खेती बन्द होने पर मंगलू की माँ तंग आकर बड़े भय्या के घर में बैठ जायगी। लेकिन हुआ वह सब कुछ भी नहीं। भाभी को रामदीन को सहारा मिल गया।"

कहता-कहता कनकू रुक गया। वह लम्बा सांस खींचकर बोला, "रामदीन का सहारा न मिलता भाभी को तो उसे झक मारकर भय्या के घर में बैठना ही पड़ता। और जाती ही कहाँ वह ? दुकान का आसरा बांधती तो भय्या किसी दिन भी रात-बिरात में उसका टंडीरा निकलवा देते। यों बेसहारा होकर उसे भय्या के घर में ही सहारा मिलता।"

कनकू की बात सुनकर मैं मुस्कराकर बोला, "तो तुम्हारा सब जाल केवल रामदीन ने ही काट कर रख दिया।"

"अकेले रामदीन ने !" कनकू बोला, "उसपर पार नहीं बसाई हमारी। और सच बात पूछो तो वह आदमी भी बड़ा नेक है। माँ और भय्या के कहने से मैंने उसके खेत में कई बार चोरी की थी। वह जानता भी था इस बात को लेकिन अभी तीन दिन हुए वही मेरी जमानत कराके मुझे छुड़ाकर लाया है।"

मैंने पूछा, "कैसी ज़मानत ?"

कनकू नीची गर्दन करके बोला, "भय्या ! अभी-अभी माँ जो कह रही थी कि मैं मामा के घर चला गया था, सो मामा-बामा के घर नहीं गया था, पुलिस ले गई थी पकड़कर। मुझे रामदीन ज़मानत पर छुड़ा लाया और भय्या की गाँव भरे में किसी ने जमानत नहीं दी। उसे जेल भेज दिया गया।"

मैं कनकू की बातों से बहुत प्रभावित होता जा रहा था। सचाई थी उसकी हर बात में। वह मुझसे छिपाकर कोई बात नहीं कर रहा था। जो कुछ जैसा-भी घटा था उसके जीवन में उसे स्पष्ट कहने में उसे संकोच नहीं था।

मैंने पूछा "कनकू ! सच-सच बता अब क्या इरादा है तेरा ? मेरे पास तू क्या सोचकर आया है ?"

कनकू बोला, "भय्या ! लाख बुरा हूँ मैं और अच्छाई मुझमें कोई

है ही नहीं पर तुम्हारे साथ दगा नहीं करूंगा। जिस काम पर भी लगवा दोगे जी तोड़कर मेहनत करूंगा। गाँव की जिन्दगी से तंग आ गया हूँ मैं।"

तभी दुलारी भाभी भी आ गई और कनकू को बैठा देख कर ऐसे चौंकी जैसे ततैये ने काट लिया हो उन्हें।

उन्होंने आगे बढ़कर कनकू से पूछा, "कैसा हाल है रे कनकू तेरे बापू का? पता नहीं कौन कह रहा था कि कल से तबियत बहुत खराब है।"

कनकू बोला, "है तो खराब ही भाभी।"

भाभी बोली, "कनकू तो अब अपने बापू को इस दशा में छोड़कर शहर जाने की बात मत सोचना। तेरा बड़ा भय्या तो जेल में बैठा है और पता नहीं क्या बने उसका। ऐसे में अगर तू भी चला गया तो तेरे बापू का क्या होगा?"

दुलारी भाभी की बात को मैं मन-ही-मन समझकर अन्दर-ही-अन्दर मुस्कराया। कितनी समझदार हैं भाभी कि वह मुझे कनकू के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहतीं। बात सीधी न कह कर उन्होंने इस प्रकार कही।

कनकू लम्बा साँस खींचकर बोला, "भाभी! कह तो तुम सच ही रही हो लेकिन मैं यहाँ रहकर भी क्या करूंगा? बेकार आदमी किसी के क्या काम आ सकता है। माँ-बाप की सेवा भी क्या बिला पैसे के की जा सकती है? घर में एक छाक खाने को अन्न के दाने भी नहीं हैं तो......"

कहते-कहते मैंने देखा कि उसकी आंखें डबडबा आईं। वह बोला नहीं कुछ और।

थोड़ी देर में अपने को संभालकर उसने कहा, "भाभी! तुम से क्या छिपा है कुछ? गलतियाँ सब हमारी ही हैं। चोर-उचक्कों की संगत में बैठकर हमने अपना सत्यानाश कर लिया। बड़े भय्या और माँ ने मुझे भी किसी दीन का नहीं छोड़ा।"

कनकू की बात सुनकर दुलारी भाभी ने अपने मन में सोचा कि

देखो कैसा मक्कारी से भरी बातें कर रहा है यह लड़का। अपनी गलतियाँ मान-मान कर यह लालाजी के दिल में घर करता जा रहा है।

दुलारी भाभी बोलीं, "कनकू! यह समय नहीं है तेरा गाँव से जाने का। कोई क्या थूकेगा तेरे जनम में कि मरते बाप को भी छोड़कर चला गया। यहीं पर कोई काम करले। काम की क्या कमी है आज-कल? दो रुपये रोज़ तो सड़क पर मिट्टी डालने वाले कमा लाते हैं। रि शा जोतने लगे तो उसमें भी दो-ढाई रुपये पैदा कर सकता है तू। करने वाले को काम का घाटा नहीं है कहीं भी।"

भाभी ने रिक्शा चलाने का नाम लिया तो करीम खाँ मेरी आँखों के सामने आकर खड़ा हो गया। कनकू और उसके भय्या के हाथों से मंगलू की माँ के खेत चले गये तो क्या हुआ? करीम खाँ ने भी तो अपने पागल-पन में अपना खेत बेच दिया था। लेकिन उसने इनकी तरह चोरी में ध्यान नहीं लगाया। देसी शराब बनानी शुरु नहीं की। जीवन के अंतिम दिन तक मज़दूरी करता रहा और इज्जत के साथ रहता रहा गाँव में। पुलिस उसे कभी पकड़कर नहीं ले गई।

भाभी की इस बात का कोई जवाब नहीं था कनकू के पास।

माताजी भी, जो अब तक चुपचाप सारी बातें सुन रही थीं, बोलीं, "दुलारी ठीक कह रही है बेटा कनकू। बूढ़े बाप को इस तरह छोड़कर तुम्हें शहर जाने की बात नहीं सोचनी चाहिए। जिसने तुम्हें जन्म दिया है उस बाप की तरफ से ऐसी बेरुखी करना बहुत बुरी बात है।"

कनकू नीची गर्दन किये ही उठकर चला गया वहाँ से। मैं सोचता रहा अपने मन में कि क्या वाक़ई यह आज भी शहर में जाकर सुधर सकता है? हो सकता है यहाँ के चोर-उचक्कों की चौकड़ी छूट जाने पर इसका जीवन बदल जाये।

मेरी गम्भीर मुद्रा को देखकर दुलारी भाभी हँसकर बोलीं, "लालाजी! तुम्हें यहाँ के आदमियों को समझने में अभी देर लगेगी। जिस आदमी ने जनमभर हराम की खाई हो तो उससे इस उम्र में क्या तुम समझते हो कि मेहनत होगी? भूलकर भी इसे अपने साथ शहर ले जाने की बात न सोचना। यह कहीं-न-कहीं ऐसा फंसा देगा तुम्हें कि जिन्दगी भर

याद रखोगे।"

दुलारी भाभी की बात सुनकर माताजी गम्भीरतापूर्वक बोलीं, "ना बेटा ! न ! खबरदार जो तूने इसे अपने साथ ले जाने की बात सोची। यह तो तेरे ही साथ जाये और तेरे ही घर में चोरी कर लाये, ऐसा आदमी है। और क्या ख़बर है कि तेरे भय्यों ने ही कोई चाल-पट्टी रचकर इसे यहाँ भेजा हो।"

माताजी ने मेरे भाई लोगों का नाम लिया तो सचमुच ही मैं काँप उठा। मुझे ग़ाज़ियाबाद में अपने घर के अन्दर हुई चोरी की याद आगई। कितनी खतरनाक थी वह चोरी ! वह तो ग़नीमत ही हुई कि सब सोते रहे वरना मेरी पत्नी की आँख खुल गई होती तो अवश्य ही खतरनाक हादसा हो जाता। वह बचती भी या नहीं, इसमें भी सदेह था मुझे।

मैंने मन में सोचा कि आखिर सभी का दुख दर्द दूर करने का क्या मैंने ठेका लिया है। मैं क्यों ऐसे ख़तरनाक आदमी को अपने साथ लेजाऊं ?

मैं हँसकर बोला, "भाभी ! तुम न आतीं इस समय तो मैं सचमुच ही अपने मन में इसे साथ लेजाने का इरादा कर बैठा था। इसने अपने जीवन की बातें ऐसी सचाई के साथ स्वीकार कीं कि मेरा मन खिंच गया था इसकी ओर।"

भाभी हँसकर बोलीं, "लालाजी ! ऐसा ही पाजी तो है यह कनकू का बच्चा। मैं इसकी नस-नस को पहचानती हूं। इसकी जिन बातों को सब जानते हैं उन्हें यह बड़ी ही सफ़ाई के साथ स्वीकार कर लेता है। लेकिन जिन्हें कोई जानता नहीं, उन्हें कोई जान तो ले इससे। आप तो क्या पुलिस के अफसर भी इसकी उन गहरी चालों को नहीं जान पाते। बड़ा घाघ है यह, इसे सीधा समझने की भूल न करना तुम।"

दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह मैं दिल्ली के लिए रवाना हुआ। रहीम मेरे साथ था।

आज पक्की सड़क तक हम दोनों पैदल ही आये सुबह ठंडक में। पक्की सड़क के अड्डे पर चन्दू मिल गया अपनी रिक्शा लिये। उसी में बैठकर हापुड़ आये।

मोटर में बैठने लगे तो चन्दू रहीम से बोला, "रहीम गाँव को भूल मत जाना।"

रहीम बोला, "चन्दू, गाँव को भले ही भूल जाऊं लेकिन चन्दू को कभी नहीं भूल सकूंगा मैं। गाँव आने के लिये गाँव चाहे कभी न आता मैं लेकिन चन्दू से मिलने के लिये ज़रूर आया करूंगा।"

मैं मोटर में बैठकर बोला, "चन्दू! अब जिस दिन हम रहीम का निकाह पढ़वायेंगे तो तुझे भी चिट्ठी आयेगी। आना ज़रूर।"

चन्दू बोला, "ज़रूर आऊंगा बाबूजी।"

मोटर चलदी और चन्दू अपनी रिक्शा का हैंडिल संभाले हमारी ओर देखता रहा। मोटर की रफ़्तार तेज़ पड़ी और वह नज़रों से ओझल हो गया।

रहीम की आंखों में आँसू थे इस समय। उसने जेब से रुमाल निकाल कर आँखें पोंछते हुए कहा, "बाबूजी! चन्दू ने हक अदा कर दिया याराने का। मेरा बचपन का यार है यह। हम दोनों ने एक ही साथ लंगोटियाँ बाँधनी सीखी थीं। दोनों साथ-साथ ढोरों को चराने जंगल को जाते थे।

कमाल का गुल्लीडंडा खेलता था यह और कबड्डी मैं बड़ी प्यारी खेलता था। आम और जामुन के पेड़ की डाली-डाली पर बन्दर की तरह घूम आता था यह और मैं चादर में इसके गिराये हुए फलों को इकट्ठा कर लेता था। फिर मौज से बैठकर दोनों खाते थे उन्हें।

वे दिन याद आजाते हैं तो ऐसा लगता है कि वही ज़िन्दगी थी बस। उसके बाद ज्यों-ज्यों जिन्दगी आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों परेशानियाँ भी बढ़ती गईं लेकिन साथ नहीं छूटा कभी हम दोनों का।

अब्बा बड़ा प्यार करते थे चन्दू को। एक बार खसरा माता निकल आई थी इसे तो अब्बा ने जाने किस-किस फ़क़ीर को लाकर झड़वाया था इसे। जब यह अच्छा हो गया था, तभी चैन की सांस ली थी उन्होंने।

भरे गाँव में बस एक ही आदमी है यह। अलमस्त आदमी है। किसी का कोई एहसान कभी अपने सिर पर नहीं आने देता और वक्त पड़ने

पर हर आदमी के काम आता है। इसकी नज़र न कभी किसी की ज़ात को देखती है न बिरादरी को। यह हर तकलीफ में पड़े हुए आदमी का साथी है। अपना सब काम-धंधा छोड़कर उसके पीछे पागल हो जाता है।"

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "चन्दू वाक़ई नेक आदमी है। ऐसे आदमी कम मिलते हैं दुनिया में।"

"मिलते ही नहीं बाबूजी !" रहीम बोला, "ऐसे आदमी कहाँ मिलते हैं ? आदमी मिलते हैं ऐसे जैसी मंगलू की माँ देखी आपने या फिर उसकी ताई है। ताई के दोनों लड़के हैं और कहाँ तक गिनाऊँ आपको, जिसे न देखिये वही ठीक है बस।"

बातों-बातों में गाजियाबाद आ गया।

मैंने रहीम से पूछा, "रहीम ! मंगलू भी तो कहीं रहता है ?"

रहीम बोला, "हाँ बाबूजी ! रहता यहीं है और काम दिल्ली में करता है एक कपड़े की कोठी में।"

मैंने पूछा, "कभी मिलता भी है तुझे ?"

रहीम बोला, "अक्सर मिल जाता है बाबूजी ! आजकल अच्छा काम है उसका। पहले वह मुनीमगीरी करता था और अब दलाली करने लगा है। दलाली में चार पैसे अच्छे बना लेता है।"

मोटर चल पड़ी। मैंने और कुछ नहीं पूछा रहीम से।

थोड़ी देर में रहीम खुद ही बोला, "मंगलू भी अच्छा आदमी है बाबूजी ! जब मैं दिल्ली आया था तो बेचारे ने बड़ी मदद की थी मेरी।"

मैंने पूछा, "और उसकी कैसी बहू कैसी है ?"

"बहू तो मंगलू से भी नेक है बाबूजी ! सोने में सुहागा मिल गया है बस ! अक्सर आती है वह भी दिल्ली ! पढ़ी लिखी है। दिल की बड़ी अच्छी है।"

दिल्ली में रहीम नई सड़क तक मेरे साथ आया और वहाँ से वह जामा मस्जिद की ओर को सीधा चला गया। चलते समय मैंने देखा कि उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं। वह बोला, "बाबूजी आपकी बदौलत अब्बा के

आखरी दरसन हो गये। वरना जिन्दगी भर तड़पता ही रहता। अब्बा की मिट्टी भी अपने हाथ से ठिकाने न लगा सका इसका अरमान ही रह जाता दिल में।"

मैं घर पहुँचा तो श्रीमती जी मुस्कराकर बोलीं, "कहाँ तो आप गाँव जाते ही नहीं थे और जाने का सिलसिला लगाया है तो यह पूरा सप्ताह गाँव में ही बिता दिया। आपकी जमीन का यह मुकदमा मुझे तो ऐसा लगता है कि आपकी जिन्दगी में भी खत्म होने वाला नहीं।"

मैं हँसकर बोला, "इस बार तो सचमुच ऐसा ही हुआ। पूरा सप्ताह गाँव की ही चक्करबाजी में निकल गया! लेकिन यह सच जानो कि मैंने मुकदमे का कोई विशेष काम नहीं किया।"

श्रीमती जी हँसकर बोलीं, "तब फिर वहाँ क्या करते रहे आप! कह गये थे कि संध्या तक लौट आओगे और आज तीसरा दिन है। आप नहीं जानते कि जब आप गाँव चले जाते हैं तो मेरी चिंता कितनी बढ़ जाती है। मुझे आपके परिवार वालों का तनिक भी विश्वास नहीं है। वे सब-कुछ कर सकते हैं आपके साथ।"

मैं बोला, "चिंता तुम्हारी ठीक ही है और मैं भी काफी सतर्क होकर जाता हूँ गाँव को। किसी से मिलता-जुलता भी नहीं। अपने ही घर में रहता हूं। लेकिन डरकर बैठ रहने से भी दुनिया में काम नहीं चलता। तुम जित ा किसी से डरोगे उतना ही वह तुम्हारे सिर पर पैर रखने का प्रयत्न करेगा।"

श्रीमती जी ने बात का रुख बदलकर पूछा, "रहीम क्या वहीं रह गया गाँव में? करीम खाँ को तो बड़ी खुशी हुई होगी जब आप उसे अपने साथ लेकर गये होंगे?"

मैं बोला, "खुशी तो बहुत हुई लेकिन वह खुशी को संभाल नहीं सका बेचारा!"

श्रीमती जी सकपकाकर बोलीं, "क्यों? ऐसी क्या बात हुई? ठीक तो है करीम खाँ?"

मैंने लम्बा साँस खींचकर कहा, "कल सुबह चार बजे चलता बना बेचारा! यही अच्छा हुआ कि रहीम वहां पहुँच गया। बाप-बेटों

की अन्तिम भेंट हो गई। वरना दोनों के दिल तड़पते ही रह जाते। यह रहीम से मिलने को तड़पता चला जाता और इसके लिये जिन्दगी भर का पछतावा रह जाता।" इसके पश्चात और बातें होती रहीं।

आज से चौथे दिन जेठ का दशहरा था। दशहरे पर जमना का स्नान करने आस-पास के देहातों से लाखों आदमी आते हैं। शहर के बाजारों में भीड़ के ठट्ठ-के-ठट्ठ जुड़ जाते हैं।

: २५ :

मैं सुबह-ही-ही-सुबह श्रीमती जी से बोला, "आज के दिन हमारी भाभी ने आने का वायदा किया था। देखो आती हैं या नहीं ?"

श्रीमती जी बोलीं, "वह तो ऐसी ही हैं बस ! हर साल कह देती हैं आने को और फिर कुछ-न-कुछ बहाना बना देती हैं। घर से निकलने की फुर्सत ही नहीं मिलती उन्हें।"

श्रीमती जी यह कह ही रही थीं कि तभी हमारे मकान के जीने पर चढ़ने वाले पैरों की आवाज आई। मेरे कान जीने की आवाज से जा लगे।

आने वाली दुलारी भाभी ही थीं। उनके साथ एक स्त्री, एक बच्चा और एक पुरुष और था। मैंने ध्यान से उस दूसरी स्त्री को देखा तो पह-चानने में अधिक देर नहीं लगी और वह बच्चा भी मैंने तुरन्त पहचान लिया। वे ही तो थे जो एक बार दिल्ली से मेरे साथ मोटर में बैठकर गाजियाबाद तक गये थे और फिर दूसरे दिन गाजियाबाद से बैठकर दिल्ली तक आये थे।

दुलारी भाभी का आगे बढ़कर मैंने और श्रीमती ने स्वागत किया। वह हँसकर अपने साथ आने वाले व्यक्ति की ओर संकेत करके बोलीं, "यह मंगलू है लालाजी और यह इसकी बहू है। गाजियाबाद मोटर रुकी तो ये दोनों भी दिल्ली आ रहे थे। मैंने सोचा चलो इन्हें भी तुम से मिलादूँ।"

मैं बोला, "यह तो बहुत अच्छा किया तुमने भाभी ! मैं तो खुद ही

इसे बुलवाने की सोच रहा था। कल इसकी माँ बहुत देर तक बैठी रही, कहती रही कि यह उसके पास जाता ही नहीं।"

दुलारी भाभी, मंगलू की बहू और श्रीमती जी चटाई बिछाकर उस पर बैठ गये। मंगलू मेरे पास पड़ी कुर्सी पर आ बैठा।

मंगलू बोला, "बाबूजी जाऊं क्या माँ से मिलने ? जाता हूं तो ऐसी बेसिर-पैर की बातें करती है जैसे कोई पागल आदमी करता है।"

मैं बोला, "सब ठीक है मंगलू लेकिन है तो तेरी माँ ही। मैं जानता हूं कि वह बहुत सी बेहूदा बातें करती रहती है और उसका दिमाग भी ठीक नही है लेकिन क्या तू इस बात से भी इंकार कर सकता है कि वह तेरी माँ है ?"

मेरी बात सुनकर मंगलू चुप हो गया।

उसे चुप देखकर उसकी बहू बोली, "उनके माँ होने से इंकार कैसे किया जा सकता है बाबू जी ! लेकिन अगर माँ पगली होकर हमें खाने दौड़े तो क्या हम अपने को बचायें भी नहीं ?"

मंगलू की बहू की बात सुनकर मुझे हँसी आ गई। मैं हँसता हुआ ही बोला, "बचाओ जरूर बहू। इसके लिये मैं मना नहीं करता लेकिन उस पगली का तो कोई इलाज करो। उसका इलाज करने वाले भी तो तुम ही हो।"

मेरी बात सुनकर बहू बोली, "उनका इलाज ! उनका इलाज कोई क्या करेगा बाबूजी। वह तो औरों का इलाज करके भी उसका पीछा न छोड़ें।"

मंगलू की बहू की बात सुनकर दुलारी भाभी और श्रीमती जी खूब हँसी। मंगलू चुपचाप बैठा रहा मेरे पास।

मैं बोला, "तुम लोगों के आपसी सम्बन्धों को खराब करने की जिम्मेदारी मंगलू की माँ पर ही है, यह मैं जानता भी हूँ और मानता भी हूँ लेकिन अगर अपनी गलती से वह कुएं में गिर जाये तो क्या तुम लोगों का यह फर्ज नहीं है कि उसे कुएं से निकालो ? क्या तुम कुएं की मन पर खड़े होकर यही कहोगे कि, 'मरने दो इसे, हमने थोड़े ही डाला है इसे कुएं में। यह तो अपनी ही गलती से गिरी है।'"

मेरी यह बात सुनकर मंगलू की बहू पर भी जवाब नहीं बन पड़ा। उसने गर्दन नीची करली।

दुलारी भाभी बोलीं, "अब छोड़ो इस किस्से को लाला जी! चलो जमना नहाने चलें। ये बातें नहा-धोकर ठंडे दिमाग से करेंगे। खाना खा-पीकर जब आराम करेंगे तो और होगा ही क्या अपने पास? मंगलू की माँ ने तो सारा किस्सा सुना ही दिया तुम्हें, अब जरा बेचारी बहू की जबान से भी तो सुनना उसे। उसके दुख-दर्द की कहानी से इसके दुख-दर्द की कहानी कुछ कम नहीं है।"

मैं हँसकर बोला, "अच्छा चलो जमना नहला लाये तुम्हें।"

"और तुम नहीं नहाओगे क्या?" दुलारी भाभी ने पूछा।

श्रीमती जी मुस्कराकर बोलीं, "आज आपकी बदौलत हम भी जमना की शक्ल देख लेंगे। वरना दस वर्ष हो गए आज दिल्ली आए, पूछ लो इनसे जो एक बार भी जमना की शक्ल देखी हो।"

मैं हँसकर बोला, "बिलकुल झूठ! शक्ल तो तुमने सैंकड़ों बार देखी है। जब-जब भी मोटर या रेल में बैठ कर जमना का पुल पार किया है तब-तब देखी है। हाँ, नहाई नहीं कभी, बात सच है, मान लेता हूँ मैं।"

मेरी बात सुनकर सभी लोग हँस पड़े।

मैं बोला, "भाभी सच बात यह है कि मुझे इन चीजों का शौक नहीं है। तीन वर्ष प्रयाग में रहा और कभी संगम पर स्नान नहीं किया। इन लोगों को भी इलाहाबाद और बनारस की सैर करा लाया परन्तु नहाये ये लोग भी नहीं। बात दरअसल यह है कि मुझे अपने पाप और पुण्य दोनों से ही बड़ा मोह है। गंगा-जमना में नहाने से मेरे पाप धुल गये तो मैं अधूरा ही रह जाऊंगा।"

भाभी बहुत हँसीं मेरी बात सुनकर। वह बोलीं, "बातें बड़ी लच्छेदार करते हो लाला जी! इन्हीं बातों में लुभा-लुभा कर तो तुमने बेचारी बहू को भी नहीं स्नान करने दिया गंगा जमना में।"

मैं हँसकर बोला, "यह बात गलत है भाभी! मैं किसी दूसरे को मना कभी नहीं करता उसके पाप धोने के लिए। इनसे पूछ सकती हैं आप कि क्या मैंने कभी मना किया है। यह स्वयं ही नहीं नहाईं कभी।

यह कहती हैं कि जब मैं ही अपने पापों से मुक्ति नहीं पाना चाहता तो यही क्यों चाहें। मुझसे हल्की होकर यही क्यों रहें ?"

मेरी बात सुनकर सब हँस पड़े एक साथ।

मंगलू की बहू बोली, "चलिए आज हम लोग मिलकर आप दोनों को हल्का कर देते हैं। बुढ़ापा आ रहा है सामने से। आखिर कहाँ तक यह बोझा ढोते रहोगे ?"

मैं बोला, "चलो आज मंगलू की बहू कह रही है तो चला चलता हूँ तुम लोगों के साथ।"

: २६ :

हम सब यमुना स्नान करके ठीक बारह बजे घर लौटे। भाभी, श्रीमती जी और मंगलू की बहू ने मिलकर खाना तय्यार किया और फिर सब खा-पीकर निश्चिन्त हो गये।

सब लोग आराम से बैठ गए तो दुलारी भाभी बोलीं, "अब फुर्सत से बैठकर मंगलू की बहू का किस्सा सुन लो तुम लाला जी !"

मैं बोला, "भाभी किस्सा कोई नया नहीं है मंगलू की बहू का, वही है जो देश के घर-घर में मौजूद है। लेकिन यह बहुत ही गलत है जो हो रहा है। इसमें दोष उस फैले हुए ढाँचे का है जिसमें सास और बहू आपस में आकर मिलती हैं।"

दुलारी भाभी बड़ी ही समझदारी के साथ बोलीं, "लेकिन लाला जी वह ढाँचा भी तो कहीं से बनकर नहीं आया है। उसे हमने ही तो बनाया है। फिर ठीक क्यों नहीं कर सकते उसे हम ?"

मैं बोला, "ठीक तो करना ही चाहिए भाभी ! उसे ठीक किए बिना तो हमारे पारिवारिक जीवन में आनन्द, सुख और शाँति के साम्राज्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती।"

"तब कौन करे उसे ठीक ?" दुलारी भाभी ने प्रश्न किया।

मैं बोला, "जो समझदार हो भाभी ! वही ठीक करे। जिसका मस्तिष्क सही काम कर रहा हो वही ठीक करे। यह ठीक है कि जिम्मेदारी बड़ों पर ही है सब चीज की लेकिन जहाँ बड़े जिम्मेदारी अनुभव न करें या अनुभव करने में असमर्थ हो वहाँ यह कार्य छोटों को ही करना होगा क्योंकि उन्हें ही तो बड़ा बनना है आगामी दस पाँच वर्ष में।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की बहू गम्भीरतापूर्वक बोली, "और जहाँ बड़े-छोटों की शक्ल से भी नफरत करें, उन्हें जहर देकर मार डालना चाहें, उनके बच्चों को समाप्त कर देना चाहें, उन्हें रात-दिन कोसते और गालियाँ फटकारते हुए गाँव के घर-घर में फिरें वहाँ क्या करें छोटे ?"

प्रश्न गम्भीर था मंगलू की बहू का। मैंने सुना और जरा सोचकर बोला, "तुम्हारा प्रश्न तुम्हारी परिस्थितियों के अनुसार बहुत ठीक है बहू ! लेकिन ऐसी परिस्थिति आ जाने पर भी इसका यह हल नहीं है जो तुमने सोचा हुआ है। माँ-बाप की कठोर प्रवृत्तियों पर तुम्हें विजय प्राप्त करनी चाहिए अपने सद्व्यवहार से। उनकी गलत बातों का विरोध करना चाहिए परन्तु इतना कठोर बनकर नहीं कि वे पागल ही हो जायें। उनका क्रोध उनके स्नेह की प्रतिक्रिया है। उनकी प्रकृति बदल नहीं सकती अब। उन्हें समझाना भी व्यर्थ है लेकिन फिर भी उनकी बुढ़ापे में देख-भाल करना तुम्हारा फर्ज है।"

सब चुप हो गए मेरी बात सुनकर।

दुलारी भाभी बोलीं, "फर्ज-वर्ज को जाने भी दो लाला जी ! तुम जरा किस्सा तो सुनो इस बेचारी का। बड़ा ही दिलचस्प है। लो मैं कहती हूँ मंगलू मिल आएगा अपनी माँ से जाकर। बस ! या और कुछ चाहते हो तुम !"

मैं मुस्कराकर बोला, "अच्छा सुनाओ बहू ! तुम अपना किस्सा सुनाओ। जब दुलारी भाभी इतना जोर दे रही है उस पर तो वह अवश्य ही बहुत दिलचस्प होगा।"

बहू जरा लजाकर बोली, "भाभी तो यूँ ही कहा करती है। मेरा कोई किस्सा-विस्सा नहीं है। मैं तो जरा भी नहीं चाहती कि माँ जी का जी दुखाऊँ लेकिन उन्हें मैं भाती ही नहीं फूटी आँखों भी।"

मैं मुस्कराकर भाभी से बोला, "यह मंगलू की बहू ऐसे नहीं सुनाएगी अपना किस्सा भाभी ! लो मैं सुनाता हूँ तुम्हें एक छोटा-सा किस्सा !"

मैंने इतना कहा तो सब मेरे मुँह की ओर देखने लगे।

मैं बोला, "भाभी तुम समझ रही होगी कि मंगलू की बहू का हमसे परिचय तुमने ही कराया है लेकिन बात ऐसी नहीं है।"

मेरी बात सुनकर मंगलू की बहू ने मुस्करा कर अपनी गर्दन नीचे को कर ली और दुलारी भाभी ने आश्चर्यचकित होकर मेरे चेहरे पर देखा। मंगलू की समझ में भी कुछ नहीं आया।

मैं बोला, "आज से पूर्व मंगलू की बहू की हम से दो बार भेंट हो चुकी है, क्यों बहू ! याद है न तुम्हें ?"

मंगलू की बहू गर्दन झुकाए हुए ही मुस्कराती रही।

मंगलू कुछ-कुछ समझ कर बोला, "तो छः सात दिन हुए आप ही इसे रिक्शा में बिठलाकर चाँदनी चौक तक छोड़ आये थे ?"

मैंने कहा, "हाँ ! लेकिन मुझे पता नहीं था कि यही मंगलू की बहू है। वरना सीधा घर ही ले आता इसे और तभी इससे सारा किस्सा सुन लेता इसका।"

लेकिन ठीक ही रहा जो उस दिन नहीं सुना। आज आपके सामने सुनने में जो आनन्द आएगा वह अकेले सुनने में नहीं आता।

दुलारी भाभी जरा मटककर बोलीं, "वह क्यों ?"

मैंने कहा, "तब वह किस्सा बिला नमक-मिर्च लगा ही रह जाता। आज आप उसमें साथ-साथ नमक-मिर्च लगाती जायेंगी तो उसमें और अधिक आनन्द आएगा।

फिर मंगलू की माँ का किस्सा भी उस दिन अधूरा ही था। और अब वह पूरा हो गया है।

मेरी बात सुनकर बहू बोली, "माँ जी ने खूब बुराई की होगी मेरी आपसे।"

मैं बोला, "बुराई क्या करती बेचारी, वह तो रोना रो रही थी अपना। कह रही थी कि एक डायन लिपट गई है उसके बेटे मंगलू को,

जो उसे उससे मिलने ही नहीं देती ।"

मेरे मुँह से डायन शब्द का निकलना था कि मंगलू की बहू का स्वाँस तेजी से ऊपर-नीचे को चलने लगा । वह लम्बा सांस लेकर बोली, "हूँ तो सचमुच मैं ही डायन बाबूजी जो मैंने उनसे उनका लाडला बेटा छीन लिया । लेकिन धन दौलत तो कुछ नहीं ली उनको । वह सब तो उन्हीं के पास है । और यह भी बैठे हैं आपके सामने, पूछलो इनसे जो कभी मैंने इन्हें उनके पास जाने से रोका हो । अपनी जान बचाकर यहाँ जरूर चली आई हूँ । अगर यही मेरा कसूर है तो यह मैंने अपने प्राण बचाने के लिए अवश्य किया है ।"

मैंने मंगलू से पूछा, "क्यों मंगलू ! क्या सच कह रही है बहू ? इसने तो तुम्हें कभी तुम्हारी माँ के पास जाने से मना नहीं किया ?"

मं लू बोला, "यह सच कह रही है बाबूजी ! बल्कि कई बार जाने के लिए ही कहा है, इसने तो लेकिन मेरा ही मन नहीं होता जाने को । जो माँ बेटे का विश्वास नहीं करती, उसके पास क्या जाकर करूँ मैं ? जिन दिन उसने मुझसे यह कहा कि मैं अपने बेटे को जहर देकर मार दूँ, बस उस दिन से मेरा मन खट्टा हो गया उसकी तरफ से ।"

मैंने पूछा, "इसी बच्चे को, जिसे मैंने शंतरा खिलाया था ?"

मंगलू की बहू बोली, "जी हाँ ! इस बच्चे को । माँ जी ने तो चाहा था कि दाई से पैदा होते ही मरवादें लेकिन भली थी वह दाई कि जिसने यह पाप नहीं कमाया ।

मेरे पास अपने बाप के घर की एक अंगूठी थी जो मैंने चुपके से उस दाई को दे दी थी और उससे कह दिया था कि वह उस हर बात की सूचना मुझे देती रहे जो माँ जी उससे कहें । उस अंगूठी के लालच में उसने एक-एक बात मुझे बतला दी ।

मैंने उसी दाई के जरिए सब बातें इनसे कहलवाईं तो यह मुझे दो दिन की जच्चा को ही लेकर गाँव से चल पड़े ।

उस समय का रूप आप माँ जी का देखते तो दाँतों में उँगली दबा लेते । एक फटी धोती थी मेरे पास और एक फटी जाखट । यह भी जो कपड़े पहने हुए थे बस वे ही पहने हुए थे इन्होंने ।

हम चले तो माँ जी ने इनकी खाना तलाशी। दो रुपये थे इनकी जेब में, तो वे भी निकलवाकर रखवा लिए।"

कहते-कहते वहू की आँखों में आँसू आ गए। वह धोती के पल्ले से आँखें पोंछकर बोली, "मैं दो दिन की जच्चा इस फूल-से बच्चे को छाती से लगाकर इनके साथ घर से निकल पड़ी।

रास्ते में भाभी का मकान पड़ता था। आपके चबूतरे के सामने मैंने रुककर इनसे कहा, "जरा ठहर जाओ मैं चलते समय भाभी से मिल लूँ एक बार।"

मैं उस दशा में इनके पास पहुँचीं तो यह देखकर हक्की-बक्की रह गईं मुझे। इन्हें बहुत क्रोध आया माँ जी पर और मुझसे बोलीं, "मंगलू की बहू तूने गजब कर दिया।"

मैंने कहा, "भाभी! प्राण बचाकर जा रही हूँ अपने और अपने बच्चे के। आप कुछ मदद कर सकें तो आपका एहसान नहीं भूलूँगी जन्म-भर।"

इन्होंने लाख रोकने का प्रयत्न किया मुझे और कहा कि यह दस-पन्द्रह दिन मुझे अपने घर पर ही रखेंगी परन्तु मुझे लग रहा था अब उस गाँव में मेरे और मेरे बच्चे के प्राणों की रक्षा सम्भव नहीं थी। मैं रुक जाती इनके यहाँ तो माँ जी वहीं आकर कोहराम मचातीं।

भाभी रोने लगीं मेरी दशा को देखकर और फिर तुरन्त ही इन्होंने पच्चीस रुपये मुझे लाकर दिये।

मैं चुपके से वे रुपये लेकर इनके पास आ गई आपके चबूतरे के सामने। वहीं बेचारा करीम खाँ मिल गया अपनी रिक्शा लिये। उसी में बैठकर हम दोनों हापुड़ आये और हापुड़ से दिल्ली।

यहाँ आते-आते मेरी दशा बहुत खराब हो गई थी। कहीं कोई साया भी नहीं था सिर छिपाने को।" कहती-कहती मंगलू की बहू चुप हो गई।

मंगलू बोला, "वह दिन बाबू जी जिन्दगी में ऐसा आया था कि आज भी जब याद आजाती है उसकी तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

यह सुनकर श्रीमती जी दर्द भरे स्वर में बोलीं, "बड़ी बेरहम औरत है मंगलू तेरी माँ! दूसरे की बेटी को इस दशा में घर से निकालते शर्म

नहीं आई उसे और अब कहती है कि कोई जाकर खबर ही नहीं लेता उसकी। यह बेचारी उसी दिन मर जाती तो कौन...... "

श्रीमती जी की इतनी बात सुनकर दुलारी भाभी बीच में ही हँसकर बोल उठीं, "मर जाती, तो मर जाती। इसे मार डालना तो चाहती ही थी वह। मर जाती तो उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाती। वह अपने मंगलू का दूसरा ब्याह कर लेती। रुपये पैसे और जेवर की कुछ कमी थोड़े ही थी उसके पास।"

मंगलू की गर्दन झुक गई अपनी माँ की काली करतूत सुनकर। वह बोली, "बाबू जी ! वह पहला ही दिन था मेरा इतने बड़े शहर में आने का। मोटर से उतरकर हम दोनों गाँधी ग्राउंड में उस छतरी के पास पेड़ की छाया में बैठ गये। रास्ते में मोटर की हाल लगने से इसका बदन चूर-चूर हो गया था और यह बच्चा तो कुम्हला..र ऐसा हो गया था कि मानो प्राण ही नहीं रहे इसमें।"

मंगलू की बहू बोली, "तभी भाग्य से दो नर्स घूमती हुई आगई वहाँ। उनके कपड़ों को देखकर मैंने पहचान लिया कि वे किसी हस्पताल की नर्सें हैं। जब पिता जी मेरी माँ का इलाज कराने के लिए मेरठ के हस्पताल में ले गये थे तो मैंने इनका यह रूप देखा था।

मैं आगे बढ़कर उनके पास गई और उनसे अपनी पूरी कहानी कह सुनाई।

बेचारियों ने बड़ी दया की मुझ पर। मुझे और मेरे बच्चे को अपने साथ ले गई और मछली वालों के जनाने हस्पताल में भर्ती करा दिया।"

मंगलू बोला, "बाबू जी बस परमात्मा ने ही मदद की उस दिन वरना कोई नहीं था हमारा। यह हस्पताल में भर्ती हो गई तो मेरी जरा जान में जान आई।

मैं वहाँ से सीधा चाँदनी चौक में आया और दूकान-दूकान पर पूछता फिरा कि मुझे कोई अपने यहाँ नौकर रखले।

घूमते-घूमते थक गया था मैं। ज़रा देर आराम करने के लिए मैं मारवाड़ी कटरे के दरवाजे पर पड़े एक तख्त पर बैठ गया। एक छोले वाले से चार पैसे के छोले लेकर खाये, सामने की प्याऊ पर पानी पिया

और फिर जाकर उसी तख्त पर बैठ गया।

कटरे के किनारे वाले पनवाड़ी की दूकान से मैंने दो पैसे की बीड़ी लीं और उसी से पूछा, "क्यों भय्या ! क्या यहाँ कोई नौकरी नहीं मिल सकती मुझे ?"

उसने पूछा, "कहाँ का रहने वाला है तू ?"

मैंने कहा, "देहात का हूं भय्या !"

उसने पूछा, "कोई जमानती है तेरा दिल्ली में ?"

मैंने कहा, "जमानती यहाँ कौन रखा है भय्या ! लेकिन ईमानदारी से काम करूंगा।"

पता नहीं क्यों दया आ गई उसे मुझ पर बाबू जी ! उसने पूछा, "कुछ लिखना पढ़ना भी जानता है ?"

मैं बोला, "वही खाता लिखना जानता हू मुंडी में। हिन्दी भी जानता हूं मिडिल तक।"

उसकी कुछ समझ में आ गया और वह मुझे कटरे में ही एक दूकान पर लेजाकर बोला, "सेठ जी ! आप जैसा आदमी चाहते थे, यह ले आया हूं मैं आपके लिये निहायत ईमानदार और मेहनती। बही खाता लिखना जानता है और तुम्हारे पर्चे भी चुका लायेगा। दिल्ली का रहने वाला नहीं है इसलिए दो-चार दिन कुछ दिक्कत हो तो हो। फिर सब समझ जायेगा।"

सेठ ज़ी ने पूछा, "तनखा क्या लेगा ?"

मैंने कहा, "जो आप दे देंगे।"

उन्होंने गौर से मेरी ओर देखकर कहा, "चालीस रुपया मिलेगा। दुकान पर ठीक आठ बजे आना होगा और रात को आठ बजे छुट्टी मिलेगी।"

मैंने मंजूर कर लिया बाबूजी !

उस दिन उस नौकरी मिलने की मुझे कितनी खुशी हुई कितनी खुशी हुई कि बयान नहीं कर सकता आपसे।

वह दिन है और आज का दिन है बाबूजी कि मैं उस दुकान को अपने बाप की दुकान समझता हूँ। और सेठ का भी मुझपर इतना

यकीन है कि दस-दस बीस-बीस हज़ार रुपये यों ही सौंप देता है मेरे हाथों में।"

मैं बोला, "दियानतदारी बहुत बड़ी चीज़ है मंगलू ! यह न हो तो दुनिया के सब कारोबार ही ठप्प हो जायें।"

मंगलू की बहू बोली, "संध्या को चार बजे हस्पताल में मिलने वाले आते थे। तभी यह भी आये तो इनके हाथ में दो धोतियां थीं और दो ब्लाउज़।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये इन्हें देखकर।

उसी समय उन दोनों नर्सों में से एक नर्स भी उधर आ गई। इन्हें देखकर वह इनसे बोली, "तुम्हारी औरत को बचा दिया हमने ! तुमने बहुत सख्त ग़लती की जो इसे इस हालत में गाँव से लेकर चल पड़े। अब कोई ख़तरे की बात नहीं है।"

यह रो पड़े नर्स की बात सुनकर और बोले, "आपने बड़ा एहसान किया मुझपर ! मैं मौत के मुंह में से ही निकालकर लाया था इसे। आपने बचा लिया इसे लेकिन अगर यह वहाँ रह जाती तो शायद अब खत्म हो चुकी होती।"

"क्यों ?" नर्स ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

नर्स की इस बात का कोई जवाब नहीं दिया इन्होंने। यह कातर दृष्टि से उसके चेहरे की तरफ देखते रहे।

मैंने बात बदलकर कहा, "मेरी दशा ही ऐसी खराब हो चली थी और गाँव में कोई प्रबन्ध नहीं था।"

"अच्छा," कहकर नर्स चली गई।

संक्षेप में यही किस्सा है हमारे गाँव से शहर आने का। पता नहीं माँ जी ने आपके सामने किस रूप में रखा होगा इसे।"

मैं हँसकर बोला, "यह तो किस्सा हुआ तुम्हारे गाँव से आने का। सचमुच बड़ा दर्दनाक है। बड़े कठोर दिल की है मंगलू तुम्हारी माँ ! आखिर अपने बाप की ही तो बेटी है। दया नाम की चीज़ उसके जीवन में आ ही नहीं सकी और पैसे की लोभिन वह शुरू से ही है। अपने पिता के घर से चार हज़ार रुपये चुराकर न लाती तो क्यों

तुम्हारे पिता में और उसके पिता में इतना वैमनस्य बढता कि वह तुम्हारे पिता को ज़हर देकर मार डालते ।

तुम्हारे पिता ज़िन्दा रहते तो चार हज़ार क्या चालीस हज़ार पैदा कर लेते ।"

मेरी यह बात मंगलू और उसकी बहू की समझ में नहीं आई। उन्होंने कुछ उड़ती-उड़ती हवा सी सुनी थी इन बातों की, पूरी कहानी का उन्हें कुछ पता नहीं था। दुलारी भाभी के कानों में भी इस किस्से की हवा पड़ी थी, सिलसिलेवार यह किस्सा कभी मंगलू की माँ ने उन्हें सुनाया हो ऐसी बात नहीं थी ।

मैंने मंगलू से पूछा, "तो तुम्हारा एक ही बच्चा है यह या कोई और भी हुआ था? "

मंगलू बोला, "एक और हुआ था इससे पहले ।"

मंगलू की बहू बोली, "वह होता तो आज पाँच वर्ष का होता। जब हुआ था वह तो मेरे पिताजी ने अपना दूसरा विवाह नहीं किया था। उसका छूचक भी बड़ी शान का भेजा था उन्होने । और माँ जी भी मेरी कम कदर नहीं करती थीं उन दिनों । उनकी ज़बान पर हर समय मेरी तारीफों के पुल बँधे रहते थे। गाँव में जिस किसी के घर भी जाती थीं तो मेरी ही तारीफ़ करने से उनका मतलब रहता था।

हज़ार औरतों में बैठकर कहती थीं, "बहू हो तो ऐसी हो जैसी मेरी । बातें भी करती है तो फूल झड़ते हैं उसके मुंह से । चेहरा भी ऐसा है जैसे गुलाब का फूल । पढ़ी-लिखी है । सीना-पिरोना भी ऐसा जानती है कि क्या कोई गाँव की बहू बेटी जानेगी । गाने बजाने में भी बहुत होशियार है ।

लेकिन पिताजी के दूसरी शादी करते ही मेरे सब गुण अवगुणों में बदल गये ।

मैं समझ ही न पाई कुछ दिन तक । मेरे ऊपर जो उनका प्यार था वह काफूर की तरह उड़ गया ।

मैंने एक दिन इनसे रात को कहा, "माँ जी आजकल मुझसे बड़ी नाराज़ सी रहती हैं । पता नहीं क्या कसूर हो गया है मुझसे ?"

यह अपनी अलमस्ती में बोले, "माँ की तो ऐसी ही आदत है। ठीक हो जायेगी कुछ दिनों में।"

मैं गम्भीरतापूर्वक बोली, "ऐसी बात नहीं है। तुम गम्भीर बातों को भी यूँ ही टाल-मटोल में उड़ा देना चाहते हो। कुछ दाल में जरूर काला है।"

यह बोले, "काला है तो वह सामने तो आयेगा ही। तुझसे नहीं तो मुझसे तो कहेगी मेरी माँ।"

मैंने कहा, "पता नहीं कब कहेंगी लेकिन मेरे साथ तो उनका व्यवहार बहुत बुरा होता जा रहा है। कल किसी के धान खोटने के लिये उठा लाईं और मुझसे कहा खोट इन्हें। मैंने खोट तो दिये लेकिन मेरे दोनों हाथों में छाले पड़ गये और लड़का पड़ा-पड़ा रोता रहा। उसे दूध पिलाने को भी दो घड़ी आराम नहीं करने दिया उन्होंने।"

मेरी यह बात सुनकर यह ज़रा तिलमिलाये और बोले, "मैं कल जा रहा हूँ। कोई नौकरी मिल गई तो तुझे अपने साथ ले चलूँगा।"

मैं बोली, "वह तो देखा जायगा लेकिन माजी से उनके इस व्यवहार का कुछ कारण तो ज्ञात हो। आप पूछेंगे तो मेरा खयाल है कि वह आपको अवश्य बतला देंगी।

आजकल हाल तो मुझसे बोलती ही नहीं और बोलती भी हैं तो ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करती हैं कि मैं रोती ही रह जाती हूं उन्हें सुनकर। मेरा तमाम दिन रोते-रोते बीत जाता है और उस पर वह काम भी करना पड़ता है मुझे जो वह गाँव में से जाने कहाँ-कहाँ से बटोर लाती हैं।"

"गाँव का काम ?" इन्होंने स्वप्न से जागकर पूछा।

मैंने कहा, "हाँ गाँव का काम। घर का नहीं। यही तो मैं कह रही हूँ आपसे। आप समझ ही नहीं रहे मेरी बात।"

दूसरे दिन सवेरे-ही-सवेरे यह घर से निकलकर चुपचाप जाने कहाँ चले गये। और पूरे चालीस दिन पश्चात मैंने इनकी शक्ल देखी।"

कहती-कहती मंगलू की बहू रुक गई। मैंने देखा उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

श्रीमतीजी प्यार से बहू को अपनी गोद में भरकर बोलीं, "पगली कहीं की! अरी रो क्यों रही है अब? किस्सा सुना रही है पुराना, रो मत। बीते दिनों के ग़म की कहानी भी हँसकर ही कहनी चाहिए। तेरे दिन भगवान् ने फेर दिये। तुझे पति अच्छा मिल गया, जिसने तेरे दुख-दर्द को महसूस कर लिया। तुझे अब किस चीज़ की चिंता है?"

भाभी बोलीं, "लालाजी। इस बेचारी ने भी सचमुच बड़ा ही कष्ट सहा है। मंगलू की माँ की यह बदलती हुई दशा मैंने अपनी आँखों से देखी है। बहुत दिन तक मैं स्वयं नहीं समझ पाई इसका कारण।"

मंगलू की बहू बोली, "यह गाँव से चले गये तो माँजी का कोप मुझपर कड़कड़ता हुआ बादल बनकर मुझपर टूट पड़ा। एक दिन उन्होंने मुझे इतना मारा इतना मारा कि बस क्या कहूँ आपसे। यह छोटा मुन्ना आठ महीने का था उस समय मेरे पेट में।

उस दिन अगर भाभी न आजातीं वहाँ तो जाने मेरे मार मारकर प्राण ही निकाल देतीं वह।

मेरा कसूर इतना ही था बस कि मैं उनका गाँव से किसी के यहाँ का लाया हुआ कुछ काम करना बन्द करके अपने बच्चे के पास खाट पर लेट गई थी।

बच्चे को चेचक निकल आई थी और मियादी बुखार था। वह बार-बार माँ-माँ कहकर चिल्ला रहा था। मेरा उस काम में मन नहीं लग रहा था जो वह कराना चाहती थीं।

आखिर उसी बीमारी में एक दिन मेरा वह लड़का चल बसा और जब चालीस दिन पश्चात यह घर लौटे तो वह इन्हें नहीं मिला।"

मंगलू बोला, "मैंने घर में घुसकर चारों ओर नजर दौड़ाई तो मुन्ना कहीं दिखाई नहीं दिया मुझे। यह खाट में पड़ी कराह रही थी।

मैं सीधा इसके पास गया। यह पड़ी-पड़ी रोती रही। उठी मुझे देखकर।

मैंने फिर पूछा, "मुन्नू कहाँ है?"

मेरी बात सुनकर यह और जोर-जोर से रो पड़ी।

मैंने इसके पास खाट पर बैठकर इसके आँसू पोंछे और प्यार से

इसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया। मैंने पूछा, "क्या बहुत दर्द है ? तू समझती होगी कि मैं तुझे अकेली छोड़कर चला गया लेकिन मैं गया था नौकरी की तालाश में। इतने दिन इधर-उधर भटक कर चला आया लेकिन कहीं कोई नौकरी नहीं मिली।"

यह बराबर रोती रही उसी तरह। इसकी जवान से एक शब्द भी नहीं निकला।

मैंने फिर पूछा, "मुन्नू क्या अपनी दादी के साथ गया है कहीं ?"

तब किसी तरह यह अपने को सँभालकर बोली, "मुन्नू अब गया आपका।"

मैंने घबराकर पूछा, "कहाँ ?"

यह बोली, "मुन्नू छोड़ गया हमें।"

मैं बैठा का बैठा रह गया। पसीनों में लथ-पथ। हक्का-बक्का सा। मेरा सिर चकराने लगा। मेरी जबान बन्द हो गई।

मैंने पूछा, "क्या हुआ था उसे ?"

यह बोली, "माता निकली थी बड़ी और मियादी बुखार था।"

उस दिन रात को इसने अपने जिस्म की वे चोटें भी मुझे दिखलाईं जो माँ की मार से इसके बदन पर आई थीं और उसी रात को हमारे इस बच्चे का जन्म हुआ जो आपके बच्चों में बैठा खेल रहा है। गनीमत ही समझिये कि जो उस दिन मैं लौट आया बाहर से नहीं तो शायद अपने बड़े लड़के की तरह मुझे यह और छोटा बच्चा भी देखने को नसीब न होते।"

मंगलू की बात समाप्त होने पर दुलारी भाभी मुस्कराकर बोलीं, "सुना तुमने मंगलू की बहू का किस्सा लालाजी ! यह तो अपनी जान हथेली पर रखकर आई थी यहाँ बेचारी। मंगलू भला न होता तो इसका आज कहीं पता भी न होता दुनिया में।"

मेरी जबान बन्द होगई मंगलू की बहू का किस्सा सुनकर।

मैं सोचता रहा मंगलू की माँ के विषय में। उसकी जबान से निकलनेवाला एक-एक शब्द मेरे कानों में गूँज रहा था। कभी-कभी आवेश में आकर मंगलू, मंगलू की बहू और उसके बच्चे को वह जिस बुरी तरह

कोसती थी वह मैं सुन रहा था इस समय अपने कानों से। मुझे लग रहा था कि मानो वह मेरे सामने पीढ़े पर बैठी हुई इन्हें कोस-कोस कर कह रही है—"मैं तो चाहती हूँ कि मंगलू का बेटा उसकी आँखों के सामने मरे और मंगलू तड़पे अपने बेटे के लिए उसी तरह जैसे मैं तड़प रही हूँ उसके लिए। और उसकी डायन बहू के सामने यह मंगलू भी मर जाय जिससे वह रांड बनी फिरे ऐसे ही जैसे मैं फिर रही हूँ।"

मेरे तमाम बदन के रोंगटे खड़े हो गए थे। मेरे माथे से पसीना छूटने लगा था। मैं घबरा उठा। मुझे भय लगने लगा मंगलू को यह सुझाव देने में कि वह गाँव में जाय और अपनी माँ की देख-भाल करे। मैं भयभीत होकर सोचने लगा कि मंगलू की माँ ने यदि मंगलू की बहू की डाह में मंगलू को जहर देकर मार डाला तो उसका सारा दोष मेरे सिर पर आ जायगा। तब मैं मंगलू की बहू को कैसे मुंह दिखा सकूँगा? मैं व्यर्थ ही इस अनर्थ का भागीदार बन जाऊँगा। जब एक ससुर अपने दामाद को ज़हर दे सकता है, एक बहनोई अपने सगे साले को जहर दिलवा सकता है, तो माँ क्यों अपने बेटे को ज़हर नहीं दे सकती? मैं सोचता रहा, सोचता रहा और अन्त में मं .लू की माँ के वे अंतिम शब्द भी मेरे कानों में गूँजे जिनमें उससे एक बार मंगलू को उसे लाकर दिखलाने के लिए गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की थी। मेरा सशंकित मन शांत हो गया उन्हें सुनकर। मैंने देखा वह माँ थी और माँ की आँखें तरस रही थीं अपने बेटे को देखने के लिए!

श्रीमती जी मेरी दशा को देखकर दुलारी भाभी से बोलीं, "जरा देखिए अपने लाला जी की दशा। पसीनों में नीचे से ऊपर तक सराबोर हैं। इस समय शब्द नहीं आ रहा है इनकी जबान पर। मंगलू की बहू की सारी आपत्ति का भार इस समय आकर लद गया है इनके कंधों पर। इनका दिल और दिमाग इस समय जाकर मिल गया है मंगलू की बहू के दिल और दिमाग से।"

मेरी दशा देखकर दुलारी भाभी स्थिति को समझती हुई बात का रुख बदलकर बोलीं, "लाला जी! लो मैं तो भूल ही गई तुमसे कहना और सोचकर घर से चली थी कि तुमसे मिलते ही पहले यही बात

कहूँगी।"

भाभी की बात ने मुझे स्वप्न के सागर में डूबते-डूबते ऊपर को उभार लिया। मैंने उनके चेहरे पर देखकर पूछा, "क्या बात बतलाना मुझे भूल गईं तुम ? क्या माता जी ने कहा है कुछ ?"

वह बोलीं, "जिस कनकू को तुम अपने साथ ला रहे थे, जिस दिन तुम आये थे उसी दिन रात को उसने रामदीन के घर में कूमल किया, उसी रामदीन के घर में जो तीन दिन पहले उसकी जमानत करके उसे पुलिस के पंजे से छुड़ाकर लाया था। वह तो भाग्य अच्छा था बेचारे रामदीन का कि चमेली की आँख खुल गई और उसने रामदीन को जगा दिया। रामदीन ने उठकर अँधेरे में ही इतने जोर से लाठी फेंक कर मारी कि कनकू महाशय वहीं गिर पड़े लाठी की चोट खाकर। एक ही बार में पाली उतर गई घुटने की। फिर भागता कैसे ? एक कदम भी आगे नहीं रख सका।

रामदीन ने लपक कर ऐसे पकड़ लिया जैसे बिल्ली चुहिया के बच्चे को दबोच लेती है। दूसरे दिन सुबह पुलिस आई और ले गई महाशय जी को हथकड़ियाँ डाल कर। ऐसा उधम मचाया हुआ था इन दोनों भय्यों ने गाँव भर में कि सारे गाँव की नींद हराम करदी थी।"

मैंने मुस्कराकर पूछा, "सच भाभी ?"

"सच नहीं तो क्या झूठ बोल रही हूँ मैं ? जेलखाने की हवा खा रहे हैं मियाँ कनकू ! जाओ बचा दिया तुम्हें वरना वह रानी की सब टूम-टाम यहाँ से निकालकर कभी का रफ़ूचक्कर हो गया होता।" भाभी मुस्कराकर बोलीं।

मैं बोला, "तब तो सचमुच ही तुमने बचा दिया मुझे भाभी ! वरना मैं तो उसे अपने साथ लाने का विचार कर ही बैठा था।"

इन बातों को सुनकर श्रीमती जी घबराकर बोलीं, "यह तो ऐसे ही काम करते हैं जिठानी जी ! जहाँ कहीं कोई रोया और गिड़गिड़ाया इनके सामने आकर और यह पसीजे। झट सोचने लगते हैं कि कैसे इसकी मदद करूँ। मैं तो कह-कह कर हार गई कि जमाना ही नहीं है किसी की मदद करने का।"

श्रीमती जी की बात का समर्थन करती हुई दुलारी भाभी बोलीं, "बहू सच कह रही है लाला जी ! आजकल बहुत फूँक-फूंक कर कदम रखने की जरूरत है जिन्दगी में। दुनिया ऐसी बुरी होती जा रही है कि जिस हाँडी में खाती है उसी में छेद करने की कोशिश करती है।"

मंगलू बोला, "तो कनकू महाशय भी गए ? अभी परसों कोई गाँव का आदमी कह रहा था कि कनकू का बड़ा भाई जेलखाने की हवा खा रहा है।"

दुलारी भाभी बोलीं, "दोनों गए और अब ताऊ के जाने की चला-चली लग रही है। मैं तो समझती हूँ कि जब तक मैं गाँव में लौटूँगी ताऊ की हड्डियाँ भी चुआनों में पहुँच चुकी होंगी। बेचारे राम-दीन को ही ठिकाने लगानी पड़ेगी उसकी तो मिट्टी। तू होता गाँव में तो तू भी एक कंधा लगा देता उसकी अर्थी को।"

मंगलू हँसकर बोला, "कंधा लगाने वालों की कमी नहीं रहती गाँव में भाभी ! बस इतना ही अन्तर रह गया है अब गाँव और शहर में।"

मैं बोला, "तो ताऊ भी कूच कर रहे हैं दुनिया से ? सुना है यह आदमी भी अपने जवानी पहरे में बड़ा रौब-दाब का आदमी रहा है।"

दुलारी भाभी मुस्कराकर बोलीं, "कभी कमा कर तो खाया नहीं इसने लालाजी ! दूसरों की कमाई पर मूछें मरोड़ी हैं। दो भाई थे इसके जवान पट्ठे और सौ बीघे जमीन थी। जब तक वे कमाते रहे तो यह भी ऐश करता रहा। फिर इस जमीन को बेच-बेचकर खाया। ताई और ताऊ दोनों ने खूब गुलछर्रे उड़ाए। जब तक लड़के जवान हुए तब तक जमीन का एक खुड भी नहीं बचा। फिर मंगलू के बाप ने दो खेत खरीद कर दे दिए उन्हें जोतने बोने के लिए। वे इन्होंने अपनी मंगलू की माँ से बिगाड़ खाता करके खो दिए। बस उसके बात की जिन्दगी तो ताऊ की मुसीबत में ही कटी है। लड़के दोनों चोर-उचक्के बना दिए, अपना भी बुढ़ापा खराब कर लिया और दोनों लड़कों को भी किसी दीन का नहीं छोड़ा।

ताऊ की नीयत हमेशा से दूसरों की कमाई पर ही निगाह रखने की रही। जब तक इसमें कामयाबी मिली, मजे के दिन कटे; जब नाकाम-याबी रही, खाने-पहनने के भी लाले-पड़ गए। अच्छे-खासे बने-बनाये

घर को उट्ट-मिट्ट कर दिया ।"

मैं बोला, "भाभी ! आज के जमाने में जो मेहनत नहीं करेगा वह आराम नहीं पा सकता। और अभी तो कुछ दिन और चलेंगे कि जिनमें बिला काम करने वाले कुछ कर सकेंगे लेकिन जमाना वह आ रहा है जब हर आदमी को काम करना ही होगा। आखिर क्यों कोई आदमी बिना काम किए अच्छा खाये पिये। यदि कोई आदमी बिला काम किये अच्छा खाता-पीता है तो वह निश्चित रूप से किसी काम करने वाले का हिस्सा खा-पी रहा है ।"

मेरी बात भाभी की कुछ कम समझ में आई और वह प्रश्न भी करतीं इसे समझने के लिए यदि उसी समय रहीम अपनी औरत को साथ लेकर न आ गया होता।

रहीम के साथ आने वाली औरत ने मुझे देखा तो वह पहचान कर मुस्कराती हुई बोली, "बाबू जी सलाम !"

मैंने कहा, "सलाम ! कहो, खुश तो हो ?"

वह मुस्कराकर ही बोली, "नवाजिश है आपकी। सब इनायत है परवरदिगार की ।"

मैं भी मुस्कराकर बोला, "नवाजिश मेरी है और इनायत परवरदिगार की। बेचारे रहीम का कुछ भी नहीं है, जो मेहनत करके तुम्हें खुश रखने में अपनी सारी जिन्दगी सर्फ रहा है ?"

वह कुछ लजा-सी गई मेरी बात सुनकर। मैं फिर बोला, "खड़ी कैसे रह गईं। बैठ जाओ चटाई पर अपने गाँव की बहुओं के बीच में। यह दुलारी भाभी हैं, यह हमारी श्रीमती जी और यह इनके बीच में मंगलू की बहू बैठी है।" मैंने दोनों की ओर संकेत करके कहा और फिर भाभी तथा श्रीमती जी को भी उसका परिचय दिया।

रहीम ने मंगलू की ओर देखा तो मैंने देखा कि दोनों ने आँखों-ही-आंखों में कुछ बातें कीं।

मैं रहीम से बोला, "कहो भाई रहीम ! तुमने अपने निकाह का दिन निश्चित किया ? हमारे नजदीक की जो मस्जिद है उसके मौलवी साहब से हमने कह दिया है तुम्हारा निकाह पढ़वाने के लिये ।"

रहीम ने गर्दन नीची कर ली।

मैं दुलारी भाभी से बोला, "भाभी ! करीम खाँ मरते समय यह भार मुझ पर डाल गया था कि मैं इन दोनों का निकाह शरियत के अनुसार पढ़वा दूं। इनका निकाह पढ़ा जायेगा तो छुआरे तुम लोगों को भी खाने को मिलेंगे। और कुछ मिठाई-विठाई की बात पक्की करनी हो तो इनसे कर लो, यह बैठी है तुम्हारे पास।"

दुलारी भाभी उस औरत को पहचानकर बोलीं, "क्यों री ! तू भूल गई क्या मुझे ? आज तो बड़े ठाठ-बाट में है तू। पूरी पंजाबिन छोकरी बनी हुई है।"

वह शरमाकर बोली, "आपको कैसे भूल जाऊँगी चौधरन जी ! आपके हाथों तो कितनी ही बार मैंने मिट्टी के मटके बेचे हैं। एक दिन किसी त्यौहार पर आपने मुझे खीर खिलाई थी और अब्बा के लिये चार पूड़ियां भी दी थीं। मट्ठा तो मेरा जब कभी जी किया आप से माँगकर ले जाती रही थी।"

दुलारी भाभी उसकी सच्ची बातें सुनकर मुग्ध हो उठीं। वह मुस्कराकर बोलीं, "लाला जी रहीम के साथ इसका निकाह जरूर पढ़ा दो तुम। बड़ी अच्छी लड़की है। दोनों की अच्छी जोड़ी रहेगी।" और फिर आँखे तरेर कर उससे बोलीं, "देख री ! तेरी सिफारिश कर रही हूं लाला जी से, हमारे गाँव के लौंडे रहीम को धोखा न देना कभी।"

दुलारी भाभी की बात सुनकर वह लजा-सी गई कुछ। मैं देख रहा था कि उस लड़की के आज और उस दिन के व्यवहार में आकाश-पाताल का अंनर था। जिस दिन वह मुझे हापुड़ में मिली थी उस दिन वह जितना उच्छश्रृंखल थी, उतनी ही आज शीलपूर्ण मालूम दे रही थी।

मैं मंगलू से बोला, "मंगलू, रहीम के निकाह में तुम भी शरीक होना।" फिर रहीम से कहा, "अपने यार चन्दू को भी चिट्ठी लिखी है या नहीं ?"

रहीम ने लजाकर नीची गर्दन किये हुए कहा, "लिख तो दी है बाबू जी। देखिये आता है या नहीं।"

मैं बोला, "जरूर आयेगा वह। तेरे निकाह में शरीक हुए बिना वह नहीं रहेगा।" और फिर उससे पूछा, "तो फिर कौन-सा दिन निश्चित

किया है तूने ?"

रहीम बोला, "जुम्मे का दिन ठीक रहेगा बाबू जी ।"

मैं बोला, "ठीक है जो तुमने सोच लिया । मैं मौलवी साहब से कह दूंगा । जुम्मे को सुबह-ही-सुबह आजाना तुम । मैं और तुम्हारी भाभी भी चलेंगी तुम्हारे साथ ।"

मेरी बात सुनकर रहीम खुश हो गया । वह बोला, "चन्दू को मैंने आपका ही पता लिख दिया है बाबू जी ! यहीं आयेगा वह, अगर आया तो ।"

मैं बोला "मंगलू और मंगलू की बहू को भी न्योता दिया या नहीं तूने और हमारी दुलारी भाभी को भी रोक ले । दो दिन बाद चली जायेंगी गाँव को । ऐसा क्या काम है इन्हें वहाँ ? यह मौका क्या बार-बार आयेगा ?"

वह लड़की बोली, "चौधरन जी को क्या मैं अब यूंही चली जाने दूंगी ? खुदा के फजल से, जाने कैसे आ गई यह । अब तो इन्हें मेरे निकाह में शामिल होना ही पड़ेगा ।"

रहीम मंगलू की ओर मुँह करके बोला, "हम दोनों इस वक्त तुम्हारे ही घर से आ रहे हैं । सुबह की मोटर से गये थे दोनों गाजियाबाद । वहाँ जाकर देखा तो घर पर ताला पड़ा था । हमें क्या पता था कि तुमसे यहीं मुलाकात होनी है ।

भूलना मत मंगलू ! मेरी खुशी में शरीक होने वाले तुम ही लोग हो । मय बाल-बच्चों के आना परसों सुबह यहीं बाबू जी के मकान पर ।"

मंगलू हँसकर बोला, "अवश्य आयेंगे रहीम ! तेरे निकाह में शामिल क्यों नहीं होंगे, जरूर शामिल होंगे ।

मैं उस लड़की की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था और वह भी कभी-कभी गर्दन उठाकर मुझे देख लेती थी । मैंने उससे उसका नाम पूछा तो वह धीरे से बोली, "लतीफ़न ।"

मैंने पूछा, "लतीफ़न ! तुम असल रहने वाली कहाँ की हो ?"

वह बोली, "दिल्ली की ही हूं बाबू जी ।"

मैंने पूछा, "और वह अब्बा कहाँ है तुम्हारे ?"

वह बोली, "वह भी खुदा के घर चले गये बाबू जी।"

मैंने पूछा, "कब ?"

"करीब दो महीने हुए। एक दिन रात को बस चार हुचकियां लीं और चलते बने। हम दोनों देखते-के-देखते ही रह गये।" दर्द भरे स्वर में उसने कहा।

मेरी बात सुनकर मैंने देखा कि उसके नेत्र पसीज गये। वह धीरे से बोली, "सगे से भी ज्यादा थे बाबू जी !"

मैंने पूछा, "वह कैसे ?"

वह बोली, "वह न होते तो आज लतीफ़न का कहीं पता न होता।"

मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "क्यों ?"

वह बोली, "बाबू जी ! बड़ा दर्दनाक किस्सा है यह। क्या सुनकर करेंगे आप ?"

मैं बोला, "फिर भी तो ! जब तुमसे सम्बन्ध ही जुड़ने जा रहा है हमारा तो तुम्हारे दर्द में क्यों शरीक न हों हम ?"

वह बोली, "बाबू जी मेरे वालिद एक छापेखाने में मुलाजिम थे। किनारी बाजार में एक राजधानी प्रेस था, उसी में काम करते थे वह।"

मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "फिर।"

वह बोली, "सन् सैंतालीस की बातें कर रही हूं मैं बाबू जी ! मेरी अम्मा थीं, दो छोटे भाई थे और वालिद। पाँच आदमी थे हम अपने खानदान के। मोतिया खान में अब्बा ने एक छोटा-सा घर भी बना लिया था अपना। उसी में रहते थे हम।

हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े चल रहे थे। इधर-उधर से रोज मार-काट की खबरें आती थीं। हमारे दिल दहल जाते थे उन्हें सुनकर। वालिद ने कई बार कहा कि चलो पाकिस्तान को ही चलें। लेकिन अम्मा अपना घर छोड़कर कहीं जाने को राजी नहीं हुईं।

एक दिन वह खतरनाक रात आई जब हमने देखा कि हमारा मुहल्ला का मुहल्ला भक्क-भक्क करके जल रहा था और आग की लपटें हमारे घर के चारों ओर छा गई थीं।

एक कोहराम मच गया था चारों ओर। लोगों की चीख़-पुकार से

कान फटे जाते थे। चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार था।

उसी अंधकार में एक भीड़ ने हमारे घर पर भी हमला बोल दिया। मेरे अब्बा और अम्मा को मेरी आँखों के सामने कत्ल कर दिया। मेरे छोटे-छोटे भाइयों की टांगों पर टांगें रखकर चीर दी उन्होंने। और मुझे घसीट कर ले चले अपने साथ।

मेरे जैसी कई लड़कियाँ थीं उनके साथ जिन्हें छुरे दिखला-दिखला कर वे भगाये लिये जा रहे थे।" कहते-कहते उसका गला रुँध गया।

मैंने दर्द भरे दिल से पूछा, "फिर।"

वह बोली, "हम थोड़ा ही आगे बढ़े होंगे कि तभी फौजी जवानों के चार ट्रक सामने से आ गए। उन्हें देखकर हमें घसीटकर ले जाने वालों के छक्के छूट गये। फौजी जवानों ने उनमें से बहुत-सों को पकड़ लिया।

उनके पंजे से छूट कर मैं कहीं छिप जाने की जगह तालाश करने लगी। मेरा तमाम बदन लोहुलुहान हो चुका था और दौड़ने-भागने की मुझमें ताकत नहीं थी।

मैंने देखा कि वहाँ एक कबाड़िये की दुकान में एक टूटी-फूटी मोटर लारी का ढाँचा पड़ा था। मैं उसी के अन्दर अपने को छिपाने को घुस गई।

मोटर के उस ढाँचे में दुबककर मैंने गौर से देखा तो कुछ कम्बल में लिपटा हुआ पड़ा था। उसे देखकर मैं जरा डरी।

वह कम्बल जरा हिला और उसके अन्दर से दो आँखें मुझे चमकीं।

मैंने देखा कि वह कोई आदमी था।

वह धीरे से फुसफुसाया, "आजा बेटी, कम्बल के अन्दर आजा।"

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मेरा शरीर सिकुड़ा जा रहा था। मैं कम्बल के अन्दर को सरक गई।

रात भर मैंने वहीं काटी। कैसी लम्बी और खतरनाक थी वह रात। आज भी जब कभी याद आ जाती है तो घण्टों तक आँखें नहीं झपकतीं।

सुबह हुआ और सूरज की रोशनी चारों ओर फैली तो मैं उठी। वह आदमी भी उठा जिसने अपने कम्बल में मुझे पनाह दी थी। वही आदमी मेरे यह अब्बा थे।

पूरे मुहल्ले भर में फौजी पहरा था। चारों ओर सन्नाटा ही सन्नाटा

था। जले हुए मकानों से बदबू आ रही थी। मैं अब्बा के साथ अपने घर की ओर बढ़ी लेकिन फौजी सिपाहियों ने हमें उस ओर नहीं जाने दिया।

हम लौट आए। मेरी उम्र सिर्फ बारह साल की की थी तब और आज चौबीस साल की हूँ मैं। यह बारह साल मैंने अब्बा के साथ ही रह कर काटे। इन बारह सालों में मैं उनकी जिन्दगी का सहारा रही और वह मेरी जिन्दगी के।

इस दौरान में खानाबदोशों की जिन्दगी रही हमारी और खाना-बदोश ही रहकर मैं अपनी जिन्दगी काट देती अगर यह न मिले होते मुझे।" रहीम की ओर को इशारा करके उसने कहा।

मैंने पूछा, "लतीफ़न! तुम्हारे वालिद का नाम लतीफ़ तो नहीं था?"

मेरे मुँह से लतीफ़ का नाम सुनकर लतीफ़न के नेत्र छलछला उठे। वह मेरी ओर देखकर बोली, "हाँ लतीफ़ ही था बाबूजी! और अपने ही नाम से मिलता-जुलता उन्होंने मेरा नाम लतीफ़न रखा था।" वह देख रही थी मेरी ओर यह जानने के लिए कि आखिर मैं कैसे जानता था उसके वालिद को।

मैं श्रीमती जी से बोला, "यह लतीफ़ मशीनमैन की लड़की है। तुम्हें याद है एक दिन जब वह छुट्टी माँगने आया था तो इसे अपने साथ लाया था।"

श्रीमती जी बोली, "मैं भी यही सोच रही थी कि हो-न-हो यह लतीफ़ की ही लड़की मालूम देती है।" इतना कहकर उन्होंने स्नेह से उसे अपनी गोद में भर कर प्यार किया।

मैं भाभी की ओर मुँह करके बोला, "भाभी!"लतीफ़ बड़ा अच्छा कारीगर था सचमुच और वफादार भी बहुत था। जब तक वह मेरे प्रेस में रहा कभी कोई शिकायत का मौका नहीं दिया उसने मुझे। मेहनती भी गजब का था। रात को रात और दिन को दिन नहीं समझता था।"

लतीफ़न ध्यान से मेरी ओर देखकर बोली, "बाबूजी! मैं कुछ-कुछ पहचान तो रही थी आपको लेकिन तब यह मकान नहीं था आपका और अब बाल भी आपके सफेद हो गए हैं।

मैं मुस्कराकर बोला, "दिन भी तो बहुत हो गए लतीफ़न! तब

तुम बारह वर्ष की थीं और अब चौवीस वर्ष की। बारह वर्ष की बात हो गई। जमाना बदल गया तब से तो।"

मैं दुलारी भाभी से बोला, "*भाभी अब तो तुम्हें ठहरना ही पड़ेगा* लतीफ़न के निकाह तक। कल की ही तो बात है, परसों जुम्मा है। तुम परसों दोपहर बाद चली जाना।"

दुलारी भाभी ने मेरी बात मान ली।

समय काफी हो गया था बातों ही बातों में। मंगलू बोला, "अच्छा बाबू जी अब मैं चलूँगा। हम लोग परसों सुबह रहीम के निकाह की रस्म में अवश्य शामिल होंगे।"

रहीम और लतीफ़न मंगलू की बहू को छोड़ने के लिए स्टेशन तक गए।

उनके चले जाने के बाद मैं दुलारी भाभी से बोला, "भाभी! यह मंगलू की माँ तो सचमुच ही बड़ी बुरी औरत है। बेचारी बहू का तो मुझे कुछ भी दोप दिखाई नहीं देता।"

दुलारी भाभी बोलीं, "लाला जी तुम इनके चक्कर में बिलकुल न पड़ना। मैं कहे देती हूं तुमसे। वह इतनी डायन है कि इससे बेचारी बहू से बदला लेने के लिए वह अपने बेटे मंगलू को भी ज़हर दे सकती है। उसका दिमाग ठीक नहीं है आजकल। तुम किसी भी दिन सुन लेना कि मंगलू की माँ पागल हो गई।"

दुलारी भाभी की बात सुनकर श्रीमती जी बोलीं, "जिठानी जी ठीक कह रही हैं। आप मंगलू पर जोर न डालना जरा भी गाँव जाने के लिए। कहीं कोई दुर्घटना घट गई तो सारा दोष हमारे ही सिर पर आजाएगा। हमारा तो गाँव में वैसे ही आना-जाना नहीं और उसपर यह बदनामी का टीका भी लग जाएगा हमारे माथे पर।"

भाभी और श्रीमती जी की बातें सुनकर मैं बोला, "क्यों भाभी! क्या माँ भी अपने बेटे को जहर दे सकती है?"

भाभी बोलीं, "क्यों नहीं दे सकती? सास-बहुओं के आपसी द्वेष को आप नहीं समझते। माँ बेटे को अपनी मिल्कियत समझती है। नौ महीने उसे पेट में रखती है। उसे पाल-पोस कर बड़ा बनाती है, तो क्या इसलिए कि कहीं से कोई दूसरी औरत आकर उस पर कब्जा कर

उसके हाथों से इस तरह छीनकर ले जाय कि मानो उसका उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा ?

मैं तुम्हें दस मिसालें दे सकती हूँ ऐसी जिनमें माँओं ने अपने बेटों को इसलिए मार दिया कि उनकी बहुएँ बेवा हो जायें।"

मेरा दिल दहल गया भाभी की बात सुनकर। मैं गम्भीरतापूर्वक बोला "तो क्या तुम्हारा ख्याल है कि मंगलू की माँ ऐसा भी कर सकती है ?"

दुलारी भाभी बोलीं, "हजार बार कर सकती है। वह किस बाप की औलाद है क्या तुमसे छिपी है यह बात ?"

मैं बोला, "छिपी तो नहीं है भाभी ! पर······"

श्रीमती जी मुंह चढ़ाकर बीच ही में बोल उठीं, "पर-वर कुछ नहीं। आपको मंगलू और उसकी माँ के झगड़े में पड़ने की जरूरत नहीं है। अगर आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं आज ही चिट्ठी लिख दूँगी माता जी को।"

मैं हँसकर बोला, "अच्छा भाई अच्छा ! मैं नहीं पड़ता किसी के झगड़े में। लेकिन यह तो सच ही है कि अगर मंगलू नहीं जाएगा तो इसकी माँ पागल हो जाएगी।"

श्रीमती जी बोलीं, "हो जाने दो मरी को पागल ! उसे पागल हो ही जाना चाहिए। आखिर क्यों उसने बेचारी दो दिन की जच्चा अपनी बहू को घर से निकाला ? अगर वह रास्ते में ही मर जाती और उसका बच्चा भी मर जाता तो उसका क्या बिगड़ जाता ? मंगलू दो-चार दिन इधर-उधर घूमघाम कर घर चला जाता और वह इसका दूसरा विवाह रचा लेती।

ठंडक पड़ जाती उस डायन के कलेजे में। ऐसी बेदर्द औरत का पागल हो जाना ही ठीक है। उसे भी तो जरा मजा चख लेने दीजिए उसकी करतूत का।"

मैं मुस्करकर बोला, "भाभी ! यह सब ठीक है कि दोष अधिक मंगलू की माँ का ही······"

श्रीमती जी तिलमिलाकर बोलीं, "आप अधिक कह रहे हैं, मैं कहती हूं सब दोष उसी का है। बहू बेचारी का क्या दोष है ? उसका यही दोष है ना कि उसके पिता ने अपनी दूसरी शादी कर ली और अब

वह नालायक बाप उसकी कुछ खैर-खबर नहीं लेता।"

मैं बोला, "यह बहू बेचारी का दोष नहीं है। मंगलू की माँ के मन का लोभ ही है जिसने उसे पागल बना दिया है। वह पैसे की बहुत लोभिन है। इसी पैसे के लोभ ने उसे अपने बेटे और बहू से दूर कर दिया। अब वह बैठी है अपने जेवर और पैसे को लिये और मंगलू जाता भी नहीं उसके पास। मंगलू का भी दोप बहुत कम ही मालूम देता है।"

दुलारी भाभी बोलीं, "मंगलू बड़ा नेक लड़का है। दो-चार बार तुमसे मिले-जुलेगा तो तुम देखोगे कि कितना प्रेम है उसमें। और इससे भी अच्छी इसकी बहू है। बिलकुल बेज़बान है बेचारी लालाजी! कभी एक शब्द नहीं कहा उसने मंगलू की माँ के सामने।"

मैं सोचता रहा बहुत देर तक भाभी और अपनी श्रीमती जी की बातों पर और मेरा मन उलझा रहा मंगलू की माँ में ही। मेरा मन गवाही नहीं दे रहा था इस बात के लिये कि मंगलू की माँ अपने इस इकलौते बेटे को ज़हर दे सकती है जिसे उसने इतनी मुसीबत से पाला था।

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला, "भाभी मंगलू की माँ में लोभ बहुत है रुपये का और मंगलू की बहू के लिये उसके दिल में जगह भी नहीं है लेकिन ये दोनों चीजें ठीक हो सकती हैं। उसकी आत्मा इस समय तड़प रही है अपने बेटे से मिलने के लिये। इसीलिये उसकी मनोदशा भी खराब है। लेकिन इतना होने पर भी वह कितनी सतर्क है अपने फ़र्ज की अदायगी में। रुपये पैसे का सही लेन-देन ही वह जीवन के फ़र्ज की सही अदायगी समझती है। इसीलिये तो अपने खेती की कुल आमदनी अपनी बेटी के ब्याह में लिये गये कर्ज में भर रही है।"

दुलारी भाभी बोली, "सब झूठ! यह मंगलू की माँ क्या तुम सोचते हो कि सब ठीक-ही-ठीक बतलाती है? इसके पास बहुत धन है अभी।"

भाभी की बात सुनकर मैं हँसता हुआ बोला, "भाभी! दूसरे का धन घना-ही-घना लगता है। वैसे किसी को क्या पता है कि उसकी आर्थिक स्थिति क्या है। आज की दुनिया के जीवन में कितनी पोल है इसका सही अंदाज लगाना कठिन है। ऊपर की सुफेदी के नीचे कितने गहरे-गहरे घाव छिपे हुए हैं, इसका अन्दाज लगाना कठिन है।

अपनी दशा को मंगलू की माँ ही सही समझ सकती है। हो सकता है कि अपनी लड़की की शादी में उसने जो कर्ज कर लिया हो वह इसी आशा से लिया हो कि मंगलू की शादी में जो धन उसे प्राप्त होगा इससे वह उसे पाट देगी। और जब मंगलू की बहू के बाप ने अपनी दूसरी शादी करके उसे हरी झंडी दिखलादी तो उसके मस्तिष्क का संतुलन खराब हो गया हो। वरना वही तो यह मंगलू की माँ थी जो अपनी बहू की गाँव के घर-घर में तारीफ करते हुई नहीं थकती थी और वही फिर इतनी डायन बन गई कि उसके प्राण लेने पर उतारू हो गई।

आखिर यह सब क्यों हुआ ? क्यों उसने गाँव भर का काम ला-ला कर अपनी बहू के सिर थोपा ? वह स्वयं भी कोई फिजूलखर्च औरत नहीं है। अपनी अय्याशी पर उसने कभी एक कौड़ी खर्च नहीं की, यह तुम भी मानती हो। हो सकता है उस पर कर्ज का दबाव पड़ा हो और उसकी अपनी आबरू खतरे में पड़ गई हो। यही उसके दिमाग की खराबी का कारण बन गया।

बहू की चीजें बेचकर वह कर्ज को पाट सकती थी। लेकिन इन्हें वह अपने पति की अमानत समझती है। वे दो हजार रुपये जो उसके पास थे वे भी मंगलू के बाप की अमानत थे। उन्हें वह ज्यों-का-त्यों मंगलू को सौंप कर मरना चाहती है।

अपने दिल की परेशानी को वह अपने दिल में ही घोंटती रही है। इसी परेशानी की बौखलाहट ने उसकी दानवीय प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दे दिया और वे यहाँ तक आगे बढ़ीं कि वह अपनी बहू और पोते तक की हत्या पर आमादा हो गई।

उसे रुपया मिल जाता और वह अपने कर्ज को पाट पाती तो शायद यह परिस्थिति उसके जीवन में कभी उत्पन्न ही न होती। उसकी बहू उसे उतनी ही प्यारी बनी रहती जितने स्नेह और दुलार से उसने उसे अपने घर में स्थान दिया था।

इन सब दुर्घटनाओं के मूल में मुझे पैसे की कमी ही दिखलाई देती है।

लड़की की शादी में मंगलू की माँ को इतना रुपया खर्च नहीं करना चाहिए था। इतना रुपया खर्च करके ही उसने अपना दिमाग खराब कर

लिया। उस समय शान में आकर कर तो गई लेकिन बाद में उस शान ने उसके भावी जीवन की शांति नष्ट कर दी।

बहू बेटे के घर से चले जाने पर उसकी यह उम्मीद भी टूट गई कि मंगलू ही उसे सहारा देगा। और सच बात तो यह है कि उसने कभी मंगलू से चाहा भी नहीं कुछ। उसका बाप मंगलू के लिये जो अमानत उसे सौंप गया था, उसे भी हाथ से नहीं जाने दिया उसने। लड़की की शादी में जो कर्ज किया था उसे जमीन की कमाई से ही पाटती जा रही थी वह और अपना खर्च इधर-उधर की आमदनी से चला रही थी।

मंगलू की बहू के बाप ने अपनी लड़की का रिश्ता मंगलू से करते समय अवश्य कुछ आश्वासन दिया होगा मंगलू की माँ को और उसने उसे बाद में पूरा नहीं किया। मंगलू की बहू की ओर से उसका मन फिर जाने का एक मात्र यही कारण है।

इसके अतिरिक्त और कुछ मेरी समझ में नहीं आता। मंगलू के घर में इस अशांति का बीज बोने की जिम्मेदारी इस समय मेरी नजर में एक मात्र बहू के पिता पर ही है। वास्तव में दोषी वह था जो उसने मंगलू की माँ को धोखा दिया।

मंगलू की माँ के दिल में इस धोखा खा जाने की जलन थी। वह जलन धीरे-धीरे दहकते अंगारों में परिणत हो गई। और उस ज्वाला को भभकाने में उस कर्ज का योगदान मिला जो उसने अपनी शान के चक्कर में आकर लड़की की शादी में अपने सिर पर लाद लिया था।

इस सब में मंगलू और मंगलू की बहू का भी कोई दोष नहीं था। ये दोनों तो घटना चक्र के शिकार बन गये और भुगती जो इनके सिरों पर आकर पड़ी।

मंगलू की बहू का कोई दोष नहीं था परन्तु तूफान की झपेट में आ जाने पर आपत्ति का सामना उसे भी करना पड़ा। जब तूफान उठ रहा था मंगलू की माँ के दिल और दिमाग में तो उसकी झपेट में जो आता वह भुगतता।

मंगलू ने साहस, न्याय और कर्त्तव्य का परिचय दिया। खाली हाथ अपनी बहू को लेकर घर से निकल पड़ा।

लेकिन लौट कर नहीं देखा फिर अपने घर को, अपनी माँ को, यह कमी रही उसकी। शायद भयभीत हो उठा था वह अपनी माँ से। उस माँ से जिसने खाली हाथ और बेसहारा उसे घर से निकाल दिया था। माँ के आज तक के उपकारों को उसने तिनके की तरह तोड़ दिया। अपनी माँ की मनोदशा को उसने समझने और परखने का प्रयत्न ही नहीं किया।

हो सकता है इतनी गहराई तक जाने की मंगलू में सामर्थ्य ही न हो। वह भी गाँव वाले अन्य लोगों की तरह यही समझता रहा हो कि उसकी माँ के पास कुबेर का खजाना दबा पड़ा है।"

मेरी बात का दुलारी भाभी ने कोई जवाब नहीं दिया। मंगलू की माँ की समस्या को इतनी गहराई के साथ सोचा भी नहीं था कभी उन्होंने।

दूसरे दिन हमारी श्रीमती जी ने भाभी को दिल्ली की सैर कराई। बिड़ला मंदिर दिखाने के लिये उन्होंने कई बार मुझ से कहा था, वह भी दिखलाया उन्हें और राजघाट पर गाँधी जी की समाधि दिखलाने भी ले गये।

: २७ :

तीसरे दिन सुबह रहीम और लतीफ़न का निकाह पढ़ा गया बल्लीमारान की एक मस्जिद में।

श्रीमती जी ने लतीफ़न को अपनी एक बढ़िया साड़ी और ब्लाउज निकाल कर दिये। मेरा दिल खुश हो गया यह देख कर।

मैं निकाह के समय बोला, "लतीफ़न! अब खानाबदोश बनने की बात न सोच बैठना कहीं। रहीम बहुत अच्छा खाविंद मिल गया है तुम्हें। दोनों हँसी खुशी से जिन्दगी गुजारना।" मंगलू और मंगलू की बहू भी आज सवेरे ही आ गये थे हमारे घर पर और इस समय भी हमारे साथ थे।

हम सब रहीम और लतीफ़न का निकाह पढ़वाकर घर लौटे तो देखते ही रह गये सब। बच्चों को हम घर पर ही छोड़ गये थे इसीलिए घर का ताला लगाकर जाने की आवश्यकता नहीं थी।

हमने लौटकर देखा कि घर पर माता जी और मंगलू की माँ मौजूद थीं। दोनों को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैंने अपने मन-ही-मन सोचा कि जो काम करने में मैं अपने को असमर्थ देख रहा था वह माता जी ने पूरा कर दिया।

मंगलू अपनी माँ को देखकर हक्का-बक्का रह गया। मंगलू की बहू आगे बढ़कर उसके पैर लगी और मंगलू की माँ ने उसे आशीश दिया।

दुलारी भाभी मुस्कराकर बोलीं, "रहीम का निकाह पढ़वा दिया चाची जी। यह देखो कैं बने ठने आ रहे हैं।"

तब तक वे दोनों भी जीने पर चढ़ आए।

मैं हँसकर माता जी से बोला, "तुम्हें याद है माता जी हमारे राजधानी प्रेस में एक लतीफ नाम का मशीनमैन होता था। यह तो उसीकी लड़की निकली। सन् सैंतालीस की मारकाट में बेचारी के माँ-बाप मर गए थे।

रहीम और लतीफ़न थोड़ी देर बैठकर बिदा हो गए।

मंगलू की माँ की बगल में एक पोटली-सी बँधी थी। वह उसे मेरे हाथों में देकर बोली, "भय्या ले ये मंगलू की बहू की सब चीजें। छल्ला-छल्ला यह देख ले अपना। और तू भी देख ले दुलारी! मंगलू का बाप जो दो हजार रुपये मुझे देकर मरा था उनकी मैंने मंगलू को जमीन खरीद दी और ये बहू की चीजें बहू को सुपुर्द कर रही हूँ।

लड़की की शादी में दो हजार रुपये कलवा कसाई से उधार लेने पड़ गये थे वे भी मैंने कल चुकता कर दिये। अपने दोनों खेत रामदीन को दे दिये और उससे बाकी बचे एक हजार रुपये कलवा को देकर बे बेबाकी की रसीद लिखा ली।"

इतना कहकर वह रसीद भी उसने मेरे हाथ में देदी।

वह फिर बोली, "अब कोई कर्ज नहीं है मुझ पर जिसकी देनदारी मंगलू या इसके बाल-बच्चों पर आये। आगे ये जाने और इनका काम जाने।"

फिर अपने हाथ और कपड़े झाड़कर बोली, "अब मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। मंगलू अपने बाल-बच्चों के साथ सुखी रहे यही भगवान् से मनाकर मैं अब हरिद्वार जा रही हूँ।

सोचा चलते समय एक बार बहू से मैं माफी और माँग लूं अपने उस अत्याचार के लिए जो मैंने इस पर किया था, लेकिन मैं लाचार थी उस समय। मेरा दिमाग ठिकाने नहीं था और इसके बाद के व्यवहार से मेरे दिल को बहुत गहरी ठेस लगी थी।"

मंगलू की माँ के जीवन में यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर मैं सोचता रहा बहुत देर तक और सोचता-सोचता उसी नतीजे पर पहुँचा जो मैंने उस विषय में विचार किया था। मेरा अन्दाज़ सही था।

मंगलू की बहू को मैंने देखा कि वह अपनी सास के पैरों में गिर पड़ी थी और मंगलू की माँ उसे प्यार से सँभाल रही थी।

मंगलू भी खड़ा होकर अपनी माँ से लिपट गया।

मैं बोला, "मंगलू की माँ ! तुम अब अपने बच्चों के पास रहो। मैंने गाँव से चलते समय ही तुमसे कहा था कि अपनी परेशानी को तुम स्वयं ही हल कर सकती हो। तुमने स्वयं ही उसको हल कर लिया, यह देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है आज । इसका हल और कोई कर ही नहीं सकता था तुम्हारे अलावा और जो तुम्हारी वास्तविक परेशानी थी, उसे कोई जानता भी नहीं था।"

मंगलू की माँ मुस्कराकर बोली, "किसी को जताना भी नहीं चाहती थी मैं भय्या ! मेरे काम तो कोई आता नहीं, उल्टी बदनामी करता फिरता मेरी। गाँव में मजाक उड़ाने वालों की कमी नहीं है पर सही हमदर्द बिरला ही कोई हो तो हो।

पीठ पीछा है बेचारे रामदीन का कि उसने मेरा जितना साथ दिया उतना यह सामने खड़ा है मंगलू, यह भी नहीं दे सकता। यह रूठ कर चला आया मुझसे कि मैंने इसकी बहू को पीटा, गाँव से बटोर-बटोर कर काम कराया इससे और उसी दौरान में मेरा पोता भी मेरे हाथों से जाता रहा, लेकिन इन्हें क्या पता कि उस समय मेरी वह आबरू जिसे मंगलू के बाप के मरने के बाद मैं अपने खून पसीने से सींचकर सँवारती चली आ रही थी मिट्टी में मिलने जा रही थी।"

कहते-कहते क्रोध आ गया मंगलू की माँ को। वह बोली, "मर तो गया वह ताऊ लेकिन था बड़ा हरामजादा ! उसने एक दिन भी चैन से

नहीं बैठने दिया मुझे जिन्दगी में। वह तो मैं ही थी कि हमेशा उसकी छाती पर मूँग दलती रही और टली नहीं गाँव से। हल्की मोटी औरत होती तो कभी का निगल गया होता वह कुत्ता।"

दुलारी भाभी ने मुस्कराकर पूछा, "तो क्या ताऊ भी चलते बने?"

मंगलू की माँ बोली, "मर गया मरा! और मरा भी ऐसा कि अरथी भी औरों ने ही उठाई। मरे की चिता की लकड़ियों के दाम भी मुझे ही देने पड़े। मैंने दे दिये दुलारी! इसलिए कि खान्दान का बूढ़ा था और ताई गिड़गिड़ाई थी आकर वरना जी तो नहीं करता था मेरा।"

संध्या को मंगलू की बहू और मंगलू अपनी माँ को आदर के साथ अपने घर ले गये।

उनके चले जाने के बाद दुलारी भाभी बोलीं, "लाला जी! यह तो तुम्हारा ही अन्दाज सही निकला। मंगलू की माँ उतनी बुरी नहीं हैं जितनी बुरी इसे मैं समझती आ रही थी। मैं तो सचमुच ही इसे डायन समझती थी और यह बेचारी कभी मेरे कहने का बुरा भी नहीं मानती थी।"

मैं हंसकर बोला, "बड़ी समझदार औरत है मंगलू की माँ। बुरा यह इसलिये नहीं मानती क्योंकि जानती है कि तुम जो कुछ कहती हो वह उसके प्रति द्वेष रखकर नहीं कहतीं।"

मैंने माता जी से पूछा, "आखिर हुआ यह सब कैसे?"

माता जी बोलीं, "मैं तो खुद नहीं समझ सकी बेटा। कल यह चीजों की पोटली बांधे संध्या को मेरे पास आई और बोली, "बीबी दिल्ली चलना पड़ेगा तुम्हें मेरे साथ।"

मैंने हँसकर पूछा, "किस लिये?"

यह बोली, "मैंने भय्या की बात मान ली! मैं रात भर सोचती रही और सुबह उटते ही मैंने सब ठीक-ठाक कर लिया।"

मैंने पूछा, "क्या ठीक-ठाक कर लिया तूने मंगलू की माँ?"

वह बोली, "थोड़ा कर्जा चुकाना था मुझे कलवा कसाई का। सो मैंने उसका इन्तजाम कर लिया। अपने दोनों खेत रामदीन को बेच दिये और उससे एक हजार रुपया लेकर उसे दे दिया।"

मैं देखती रही इसके चेहरे पर।

वह फिर बोली, "अब ये चीज़ रह गई है मेरे पास मंगलू की बहू की। इन्हें उसे देकर सीधी हरिद्वार चली जाऊँगी।"

मैं बोली, "पगली तो नहीं हो गई है मंगलू की माँ।"

वह बोली, "पगली हो जाती मैं चाची अगर भय्या न आते। वह मुझसे कह गये थे कि मंगलू की माँ अपनी परेशानी तू खुद ही हल कर सकती है। तो अब खुद ही हल कर ली अपनी सब परेशानियां।

मंगलू गाँव में आयेगा नहीं। उसके लिये ज़मीन बेकार है। वह मैंने रामदीन को दे दी। रामदीन मेरे बेटे मंगलू से कुछ कम तो नहीं हैं मेरे लिये।

दो हजार रुपये जो मेरे पास थे उनसे मकान के लिए जमीन खरीद दी मंगलू को। अब ये बहू की चीजें रह गई हैं सो उसके सुपुर्द कर दूंगी। फिर भगवान का भजन करूंगी आराम से गंगा किनारे बैठकर। जो दिन जिन्दगी के बचे हैं उन्हें वहीं गुजार दूंगी।

मुझसे मना नहीं हुई बेटा इसके साथ आने को। मैं चली आई कि कहीं खोज-खबर निकाल कर तू मंगलू को बुलवा ही लेगा।

सो वह ऐसा भाग्य निकला इस रंडो का कि वे दोनों यहीं मिल गये इसे। चलो अच्छा ही हुआ। सद्‌बुद्धि जब भी आ जाय किसी को तभी ठीक है।" संतोष का सांस लेकर माता जी ने कहा।

माता जी और दुलारी भाभी दूसरे दिन गाँव चली गईं।

तीसरे दिन मंगलू ने आकर सूचना दी कि उसकी माँ ने हमेशा के लिए हरिद्वार में रहने का निश्चय बहू के आग्रह पर बदल दिया है लेकिन वह हरिद्वार चली अवश्य गईं हैं इस समय। दस-पंद्रह दिन में लौटने को कह गईं हैं।

श्रीमती जी मुस्कराकर बोलीं, "जब लौट आयें तो किसी दिन मिलाने को लाना मंगलू!"

मंगलू बोला, "जरूर लाऊंगा चाची!"